आयलैंण्डका इतिहास ।

हिन्दी-ग्रन्थरत्नाकर-सीरीजका ३१ वाँ ग्रन्थ ।

आयर्लैण्डका इतिहास ।



अँगरेजी 'मराठा' और मराठी 'केसरी' के सुप्रसिद्ध सम्पादक
श्रीयुक्त **नरसिंह चिन्तामणि केळकर** बी. ए. एल एल. बी. के
मराठी ग्रन्थका अनुवाद ।



अनुवादकर्त्ता,
श्रीयुत बाबू रामचन्द्र वर्मा ।



प्रकाशक,
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर-कार्यालय, बम्बई ।

ज्येष्ठ १९७५ विक्रम ।

प्रथमावृत्ति] जून १९१८ । [मूल्य १।।=)

कपड़ेकी जिल्दसहितका मूल्य सवा दो रुपये ।

प्रकाशक—
नाथूराम प्रेमी, मालिक
हिन्दी-ग्रन्थरत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, गिरगांव-बम्बई ।



मुद्रक—
चिंतामणि सखाराम देवळे,
बम्बईवैभव प्रेस, सँढहर्स्ट रोड,
बम्बई ।

निवेदन ।

आयर्लैण्डका इतिहास डेढ़ दो हजार वर्षका है; परन्तु भारतवासियोंके लिए अधिक शिक्षाप्रद उसका बारहवीं शताब्दीसे इधरका इतिहास ही है । क्यों कि उसी समय उस पर इंग्लैण्डका अधिकार हुआ था । लेकिन अठारहवीं शताब्दीसे पहलेका आयर्लैण्डका पूरा और ठीक इतिहास मिलता ही नहीं । पहले पहल अठारहवीं शताब्दीमें ही आयरिश लोगोंमें राष्ट्रीयताकी कल्पनाका उदय हुआ था और तभीसे लेखकोंने उसका ठीक ठीक इतिहास लिखा है । इस पुस्तकमें बही संक्षिप्त राजकीय इतिहास, आयरिश लोगोंके स्वतंत्रता-सम्बन्धी आन्दोलनोंका वर्णन और उनके सम्बन्धमें तात्त्विक विवेचन किया गया है और राजनीतिक दृष्टि-से आयर्लैण्ड और हिन्दुस्तानकी तुलना की गई है । आयरिश लोगोंका इतिहास कुछ विषयोंमें भारतवासियोंके लिए उपमान-स्वरूप हो सकता है । इसी लिए सन् १९०९ में सुप्रसिद्ध देशभक्त और सुलेखक श्रीयुक्त नरसिंह चिन्तामणि केलकरने अपने पत्र मराठी केसरीमें इस सम्बन्धमें पहले कुछ लेख चौदह अंकोंमें प्रकाशित किये थे और उसीमें कुछ परिवर्त्तन करके तथा लेखोंका क्रम सुभीतेके अनुसार बदल कर पीछे उन्हें पुस्तकाकार छपवाया था । प्रस्तुत पुस्तक उसीका अनुवाद है ।

देशभक्त केलकरका यह ग्रन्थ किसी आयरिश या अँगरेज लेखकके विचारोंका अनुवाद नहीं है; किन्तु अँगरेजीके विविध लेखकोंके लिखे हुए लगभग ४० ग्रन्थोंका गहरा अध्ययन तथा मनन करके और हिन्दुस्तानकी परिस्थितियोंको हृदयस्थ करके बिलकुल स्वतंत्र रीतिसे लिखा हुआ प्रकृत इतिहास है और इस लिए यह भारतवासियोंके लिए बहुत ही महत्त्वकी चीज है ।

मूल पुस्तक ठीक आठ वर्ष पहले लिखी गई थी । इधर आठ वर्षोंमें संसार-में बहुत कुछ परिवर्त्तन और उन्नति हुई है; और फलतः आयर्लैण्ड तथा भारत-वर्षने भी बहुत कुछ आगे पैर बढ़ाये हैं । दोनों देशोंमें इधर जो कुछ नई उल्लेख-योग्य बातें हुई हैं, उन सबको भी मैंने इस अनुवादमें समाविष्ट करनेका प्रयत्न किया है । इस प्रयत्नमें मुझे कहाँतक सफलता हुई है इसका निर्णय विज्ञ पाठक ही कर सकते हैं ।

आयर्लैण्डके अपने उद्दिष्ट स्थान तक पहुँचनेमें अब बहुत ही थोड़ी कसर जान पड़ती है। भारतवर्ष भी वहाँतक पहुँचनेके लिए जोर मार रहा है और आशा की जाती है कि थोड़े दिनोंके अन्दर ही भारतवासियोंकी भी बहुत कुछ कामनायें पूर्ण हो जायँगी। लेकिन इन थोड़े दिनोंमें ही उन्हें बहुत कुछ प्रयत्न करनेकी भी आवश्यकता होगी। यह प्रयत्न जितना ही वैध और अधिक होगा, सफलताकी मात्रा भी उतनी ही अधिक होगी। ऐसी दशामें बहुत सम्भव है कि इस अनुवादसे लोगोंको अपने प्रयत्नमें भी थोड़ी बहुत सहायता मिले और उनके लिए यह उपयोगी हो। इसी विचारसे इस समय यह अनुवाद प्रकाशित किया जाता है। ईश्वर करे, भारतवासियोंका अभीष्ट शीघ्र ही सिद्ध हो और उनके प्रयत्नोंमें शीघ्र ही सफलता हो। तथास्तु।

काशी,
दीपमालिका १९७४।

निवेदक—
रामचन्द्र वर्म्मा।

कृतज्ञता-प्रकाश।

हम इस अपूर्व ग्रन्थके मूल लेखक श्रीयुक्त केलकर महाशयके बहुत ही कृतज्ञ हैं जिन्होंने बड़ी ही प्रसन्नता और उदारतासे हमें इस अनुवादग्रन्थको प्रकाशित करनेकी आज्ञा दी है।

—प्रकाशक।

विषय-सूची।

इतिहास।

चरित्रमाला।

आयलैंण्डका इतिहास ।



१ विषयोपन्यास ।



सन् १९०७ के नवम्बर मासमें, शिमलेमें, भारतीय व्यवस्थापक सभामें राजद्रोहीसभासम्बन्धी एक कानून पास हुआ था। उस अवसर पर जो वादविवाद हुआ था उसमें माननीय डा० रासविहारी घोषने स्वयं वाइसराय साहबके सामने स्पष्ट रूपसे कह दिया था कि—" भारतवर्ष दूसरा आयलैंण्ड हुआ जाता है, सँभल जाइए, आयलैंण्डकी तरह यहाँ भी दमनशील नियमोंके बल पर राज्य करनेका सरकारका इरादा दिखाई देता है। लेकिन उसे अच्छी तरह समझ रखना चाहिए कि आयलैंण्ड पर सुखसे राज्य करनेके प्रश्नको अँगरेज लोग केवल निग्रहकारक नियमोंकी सहायतासे आज तक हल नहीं कर सके हैं और उस उपायसे भारतवर्षमें भी इस प्रश्नका समाधान नहीं हो सकता।" दिसम्बर सन् १९०८ में बंगालमें कुछ लोगोंको द्वीपांतरवासका दंड दिया गया था और विशिष्ट अपराधोंकी जाँच विशिष्ट रीतिसे करनेके संबंधमें जो नया कानून बनाया गया था; उस प्रसंग पर मराठी केसरीमें " हिन्दुस्तान आयर्लैण्ड झालें " (हिन्दुस्तान आयलैंण्ड हो गया) शीर्षक एक लेख निकला था।

हमारा विश्वास है कि, इसी प्रकार ऐसे विचारशील इतिहासज्ञोंके मनमें भी जो बोलकर अथवा लिखकर अपने विचार प्रकट नहीं करते सन् १९०७-८ में होनेवाली अघटित घटनायें देखकर समय समय पर आयर्लैण्डका ध्यान आया होगा। इस देशमें इस प्रकार आयर्लैण्डका स्मरण होनेका मुख्य कारण यह है कि सन् १८८० से भारतवासियोंका राजनीतिक विषयोंसे विशेष अनुराग हुआ और सन् १८८० के लगभग ही आयर्लैंडके राजनीतिक प्रश्नों और कार्य्योंमें पार्नेलके कामोंके कारण जोर आया। तबसे भारतीय राजनीतिप्रेमी पुरुषोंको सूक्ष्म निरीक्षणसे आयर्लैंड और भारतके आन्दोलनमें एक प्रकारका साधर्म्य दिखाई देने लगा, और यह बिंबप्रतिबिंबभाव अबतकके अनुभवसे बराबर दृढ होता गया है। आगे चलकर भारतीय समाचार पढ़कर आयरिश लोगोंका लक्ष भी भारतवर्षकी ओर हुआ। सन् १८९४ में मदरासमें जो दसवीं राष्ट्रीय सभा हुई थी, उसके सभापति श्रीयुक्त आलफ्रेड वेब बनाये गये थे, जो एक आयरिश सज्जन थे। उस अवसर पर उन्होंने जो व्याख्यान दिया था, उससे यह बात अच्छी तरह व्यक्त हुई थी कि आयरिश लोगोंको भारतीय प्रजाके विषयमें एक प्रकारका ममत्व जान पड़ने लगा है। प्रायः बीस वर्ष पहले जब (स्वर्गीय) मि० गोखले आयर्लैंड गये थे, तब आयरिश लोगोंने उनकी बातें बड़े ध्यानसे सुनीं थीं; और यह बात प्रायः सभी लोग जानते हैं कि माईकेल डेविट और डिलन आदि लोगोंके साथ उनकी जो भेट हुई थी, उससे यह बात अच्छी तरह प्रगट हुई थी, कि आयरिश लोग बड़े चावसे हमारे सुख-दुःखकी बातें सुनते हैं। लोकमान्य तिलकके राजद्रोहसम्बन्धी दोनों मुकद्दमोंके अवसर पर आयरिश समाचारपत्रोंमें जो लेख छपे थे, उनसे भी यही प्रकट हुआ था कि, भारतीय राजनीतिक झगड़ोंमें जिन लोगोंको दुःख भोगने पड़ते हैं, उनके साथ आयरिश लोगोंकी सहानुभूति है और उनके उद्योगकी सराहना करनेकी

ओर उनकी प्रवृत्ति है। इस प्रकार इन दोनों राष्ट्रोंका संबंध दिन पर दिन बढ़ता जा रहा है।

वास्तवमें आयर्लैण्ड और भारतवर्षमें कोई संबंध नहीं है। दोनोंमें तीन चार हजार कोसका अंतर है, दोनोंके धर्म्म अलग अलग हैं और यदि ऐहिक दृष्टिसे देखा जाय तो ऐसी कोई बात नहीं मिलती, जिसके कारण दोनोंमेंसे कोई एक दूसरे पर अवलंबित हो। तब केवल विश्वकुटुंबके अवयवके नातेसे उत्पन्न होनेवाला दूरान्वय भला सदा कैसे मनमें रह सकता है? अर्थात् यदि ये दोनों राष्ट्र इंग्लैंडके आधीन न होते तो दोनों राष्ट्रोंके लोगोंको एक दूसरेके संबंधमें कभी कुछ भी ध्यान न होता। जिस बातसे हमारा कोई संबंध नहीं होता, उसे सुनते ही हम तुरंत भूल जाते हैं; अथवा यदि बहुत हुआ तो केवल इतिहासकी दृष्टिसे हम उसे अपने ध्यानमें रखते हैं। लेकिन इंग्लैण्डका सम्राज्य आयर्लैंड और भारतवर्ष इन दोनों राष्ट्रोंके सुखदुखका एक साधारण अधिष्ठान अथवा उत्पत्तिकारण बन गया है; इसलिए यह बात बहुत ही स्वाभाविक है कि उनमेंसे एक राष्ट्रमें होनेवाली बातें दूसरे राष्ट्रके लोगोंको केवल इतिहासकी अपेक्षा कुछ अधिक चित्ताकर्षक जान पड़ें। सन् १९०८ में पार्लमेंटमें एक वादविवादके समय सर हार्डविन्सेण्ट नामक एक सभासदने बड़ी ही निर्लज्जतासे और ढीठतासे कहा था—“लाला लाजपतरायको द्वीपान्तरित करनेके बदले गोली ही क्यों न मार दी गई?” उस समय रेडमंड आदि आयरिश नेता उस पर क्रुद्ध होकर टूट पड़े थे और उन लोगोंने उसे अपनी बात लौटा लेनेके लिए विवश किया था। दूसरी ओर इस बातका अनुभव सभी लोगोंको है कि, पार्लमेण्टमें जब आयरिश होमरूल (स्वराज्य) का प्रश्न उठता है तब भारतवासियोंके कान तुरंत ही कैसे तीव्र हो जाते हैं, किंवा आयरिश लोगोंका दुःख निवारण करनेवाला अथवा उन्हें नवीन अधिकार देने-

वाला कोई नया कानून जब पास होता है तब भारतवासियोंको स्वभावतः कैसा आनन्द होता है। स्वराज्य, अर्थात् अपने तंत्रसे चलनेवाली पार्लमेण्ट मिलना कई स्वाधीन तथा कई पराधीन बातोंकी सिद्धि पर अवलंबित रहता है। इस कारण जब हम सुनते हैं कि, तुर्को ईरानियों या चीनियोंको पार्लमेंट मिली अथवा मिलनेवाली है तब हमें ज्ञान होता है कि, हमें किस प्रकार कार्य्य करना चाहिए। इसी प्रकार आयर्लैण्डके स्वराज्यकी प्रगति अथवा प्रतिगतिके संबंधमें जब कोई बात हमें सुनाई पड़ती है, तब भारतवर्षके राजकीय नेताओं-को यह अनुमान करनेका अवसर मिलता है कि, इस समय ब्रिटिश सर-कारकी प्रवृत्ति कैसी और किस ओर है। "कुटुम्बके सभी लोग अपना अपना भाग्य साथ लेकर उत्पन्न होते हैं; पर तो भी कुटुंबका भवितव्य कुछ निराला ही होता है और उसीके जालमें सब लोगोंके फँसे होनेके कारण घरके सब लोगोंको परस्पर एक दूसरेके लिए अभिमानसा होने लगता है।" कुछ कुछ ऐसी ही दशा आयर्लैंड और भारतवर्षकी भी दिखाई पड़ती है। समसुखी जीव चाहे एक दूसरेसे प्रेमभाव न रक्खें, पर इसमें संदेह नहीं कि समदुःखी जीव आपसमें एक दूसरेके साथ प्रेम-भाव अवश्य रखते हैं। और इस नातेसे आयर्लैंड और भारतवर्ष ये दोनों परावलंबी राष्ट्र जिस प्रकार एक दूसरेका वृत्तान्त सुनकर अपना दुःख थोड़ा बहुत भूल जायँगे उसी प्रकार एक दूसरेके चरित्रसे ज्ञान प्राप्त करके उन्हें नये नये विचार भी सूझेंगे। लेकिन इतना होने पर भी इन दोनों राष्ट्रोंको एक दूसरेका पूर्व वृत्तान्त उतना अधिक मालूम नहीं है जितना वास्तवमें होना चाहिए। तिस पर आयर्लैंडकी स्थिति भारतवर्षकी अपेक्षा कुछ अच्छी है, अर्थात् राजकीय बातोंमें आयर्लैंड-का कदम भारतकी अपेक्षा कुछ अधिक आगे है, इस लिए हम लोगोंका सविस्तर वृत्तान्त जाननेकी कदाचित् आयरिश लोगोंको उतनी

गरज न होगी। लेकिन आयर्लैंड राष्ट्र जिन कई राजकीय स्थितियोंसे होकर वर्तमान स्थितिमें पहुँचा है, उनमेंसे कई स्थितियोंमें हमें अभी जाना है; अतः आयर्लैंडका वृत्तान्त जान लेना हमारे लिए अधिक आवश्यक है।

यह बात आरंभमें विषयोपन्यासमें ही बतला देना अधिक उत्तम होगा कि, पाठकोंके सामने उक्त वृत्तान्त उपस्थित करनेमें हमारा मुख्य हेतु क्या है। हमारा हेतु यह है कि हम अपने देशके लोगोंको इस बातका ज्ञान करा दें कि कुछ विषयोंमें हमारी ही जैसी स्थितिके एक युरोपियन राष्ट्रके पाँच सौ वर्षोंके इतिहाससे हम भारतवासियोंको क्या सीखना चाहिए अथवा हम लोग क्या सीख सकते हैं। भारतवर्षकी स्थितिके समान यदि किसीकी स्थिति है तो वह केवल आयर्लैंडकी ही है। इन दोनों राष्ट्रोंमें वैधर्म्य कुछ कम नहीं है; पर वैधर्म्यकी तरह साधर्म्य भी बहुत है; आगेके विवेचनसे यह बात सिद्ध हो जायगी। यदि ऐसे राष्ट्रका चार पाँच सौ वर्षोंका इतिहास देखा जाय तो उससे अनेक उपयुक्त और व्यापक सिद्धान्त निकाले जा सकते हैं। नवीन परिस्थितिमें भारतवर्षका इतिहास अभी हालमें ही आरम्भ हुआ है । इस इतिहासका वास्तविक प्रारंभ केवल ७०–८० वर्षोंसे ही है। केवल इतनेसे ही उसकी भावी स्थितिके संबंधमें जो अनुमान किया जायगा वह भ्रमपूर्ण होगा। इतिहासका मुख्य उपयोग भविष्यकथन है और उस भविष्यको सत्य ठहरानेके लिए जितने ही अधिक दिनोंके इतिहासको आधार बनाया जाय उतना ही अच्छा है। आयर्लैंडके इतिहासमें जितने वादग्रस्त प्रश्न हैं, उनमेंसे प्रत्येकका इतिहास कमसे कम १००–१५० वर्षोंका है। दूसरी बात यह है कि, जहाँ गहरे और शान्त विचारोंका प्रश्न आता है वहाँ ऐसी ही विचार-सामग्रीका ग्रहण अधिक उत्तम होता है, जिसके साथ अपना संबंध यथासाध्य कम हो । यह बात सभी विद्यार्थी जानते हैं कि

पाठशालामें विद्यार्थियोंकी स्लेटोंकी जाँच एक दूसरेसे कराई जाती है। यह भी कहा जाता है कि, खेलनेवालोंकी अपेक्षा देखनेवालोंको खेल अधिक अच्छा दिखाई देता है। मनुष्य दूसरोंका न्याय जैसा कर सकता है वैसा अपना नहीं कर सकता। यदि किसी वकीलका अपने हितके संबंधका कोई मुकद्मा हो तो उसके लिए वह एक दूसरा वकील खड़ा करता है। यदि किसी डाक्टरके घरका कोई आदमी बीमार-पड़ता है तो वह प्रायः दूसरे डाक्टरको बुलाता है। इसी प्रकार अपने देशके संबंधमें सम्मति देनेके लिए कभी कभी दूसरे लोग भी अधिक योग्य ठहरते हैं। इन सब बातोंका मर्म यह है कि अहंकार और मम-त्वके धूएँसे हमारी आँखें एक प्रकारसे अंधी हो जाती हैं। इसी प्रकार यदि किसी चीजको अच्छी तरह देख कर उसकी परीक्षा करनेकी आवश्यकता हो तो उसे आँखोंके बिलकुल पास रखनेसे काम नहीं चल सकता, उसे थोड़े अंतर पर रखना पड़ता है। चितेरा चित्र बनानेके समय बीच बीचमें दूर जाकर उसे देखता है। इसी प्रकार अपने राष्ट्रपट पर इतिहास-चित्र बनाते समय यदि मनको थोड़ी दूर ले जाकर, उस चित्रका प्रतिबिंब उपमानभूत हो सकने योग्य किसी दूसरे राष्ट्रके इतिहासके शीशेमें देखा जाय तो अधिक उत्तम होता है। और हमारा खयाल है कि, भारतवर्षके लोगोंके लिए आयर्लैण्डका इतिहास शीशेका काम देगा। माननीय रासबिहारी घोषके कथनसे ऊपर यह दिखलाया जा चुका है कि दमनशील नियमोंकी दृष्टिसे देखते हुए आयर्लैण्डका किस प्रकार स्मरण हो आता है। लेकिन यह बिंबप्रतिबिंब भाव राष्ट्रके इतिहासके केवल इसी एक अंशसे पूरा नहीं हो जाता, बल्कि ऐतिहासिक परम्परा, लोकस्वभाव और चारित्र, धर्म्म, समाज-रचना, सुखदुःखके कारण, राष्ट्रकी माँग और आकांक्षा, राजकर्म्मचारियोंकी नीति और सिद्धांत, प्रजाके आन्दोलन और उद्योग

आदि अनेक अंगोंसे भारतवर्षमें आयर्लैण्डका उदाहरण दिया जा सकता है और दोनोंका साधर्म्य-भाव ठीक और पूरा उतर सकता है।

आयर्लैण्ड एक टापू है। वह इंग्लैंडसे पश्चिमकी ओर प्रायः सत्तर मील दूर है और उन दोनोंके बीच समुद्र है, 'जिसे आयरिश चेनल' या आयरिश समुद्र कहते हैं। यहाँ सरोवर, झील और दलदल आदि अधिक हैं और स्थान स्थान पर पहाड़ी, वनश्रीयुक्त और हराभरा होनेके कारण यह बहुत ही मनोहर है। आयर्लैण्डको लोग 'पन्नेका टापू' कहते हैं, इसका कारण यही है। इस द्वीपकी लंबाई तीन सौ मील, चौड़ाई पौने दो सौ मील और क्षेत्रफल प्रायः बत्तीस हजार वर्गमील है। अर्थात् यदि विस्तारके ध्यानसे देखा जाय तो आयर्लैण्ड द्वीप भारतवर्षके बरार प्रांतसे प्रायः दूना होगा। आयर्लैण्डकी जनसंख्या सन् १९११ की मनुष्यगणनाके अनुसार ४३,९०,२१९, और सन् १९०१ की मनुष्यगणनाके अनुसार ४४,५८,७७५ थी। सन् १८६१ ई० में यह जनसंख्या प्रायः अट्ठावन लाख थी और सन् १९५१ से लेकर १९६१ तक दश वर्षके बीचमें आयर्लैण्डकी जनसंख्या ग्यारह प्रति सैकड़ेके भयंकर प्रमाणसे घटी थी! सन् १८४१ में जनसंख्या ८१ लाख थी। अर्थात् इधर सत्तर वर्षमें आयर्लैण्डकी जनसंख्या प्रायः आधी रह गई और इस कमीका कारण अकाल तथा असंतुष्ट आयरिश लोगोंका देश-त्याग है। अब भी हरसाल बहुतसे लोग आयर्लैण्ड छोड़ कर अमेरिका जाते हैं, क्योंकि स्वदेशकी अपेक्षा वहाँ वे अच्छी तरह रहते हैं। सन् १९११ की मनुष्यगणनाके अनुसार आयर्लैण्डके ४४ लाख आदमियोंमेंसे ७,८०,८६७ खेती करनेवाले; ६,१३,३९७ श्रमजीवी; १,११,१४३ व्यापारी १,४१,१३४ पेशेवर (डाक्टर वकील आदि); १,७०,७४९ आदमी गृहस्थीसम्बंधी काम करनेवाले और २५,७२,९२९ आदमी फुटकर काम करनेवाले हैं। धर्मकी दृष्टिसे देखते हुए इन ४४ लाख आदमि-

योंमेंसे ३२½ लाख कैथोलिक, ५¾ लाख प्रोटेस्टेण्ट, ४½ लाख प्रेसबि-टरेनियन्स, ६२ हजार मेथोडिस्ट और बाकी फुटकर धर्म्मपन्थोंके हैं। लोकसंख्याकी दृष्टिसे देखते हुए आयर्लैण्डके समान छोटा प्रान्त भारतमें मिलना कठिन है। क्योंकि छोटा नागपुर या उड़ीसा प्रान्तकी जनसंख्या भी आयर्लैण्डकी संख्यासे चार पाँच लाख अधिक होगी। गुजरात प्रान्तसे कुछ अधिक और मध्यप्रान्तके छः जिलोंसे कुछ कम आयर्लैण्डकी जन-संख्या होगी। ऐसे इस छोटेसे देशके संबंधमें एक दो बातें विशेष उल्लेखयोग्य और महत्त्वपूर्ण हैं। एक तो आयर्लैण्डमें शिक्षाका प्रचार हिन्दुस्तानको देखते हुए बहुत अधिक है। क्योंकि वहाँ १६ कालेज हैं; जिनमें साढ़े चार हजारसे अधिक विद्यार्थी पढ़ते हैं। और सारे समाजमेंसे लगभग ७० प्रति सैकड़ा लोग लिख पढ़ सकते हैं। राजनीतिमें भी आयरिश लोगोंका प्रवेश इसी हिसाबसे है। भारतके किसी प्रदेशकी व्यवस्थापक सभामें जितने बड़े प्रान्तसे केवल दो सभासद चुने हुए रहते हैं, उतने ही विस्तारके आयर्लैण्डसे ब्रिटिश पार्लमेण्टमें प्रायः सौ सभासद चुने हुए रहते हैं। इससे पता लग जायगा कि राजनीतिमें वहाँवाले हम लोगोंसे कितने आगे हैं। अब हम यह दिखलायेंगे कि, इस देशका पूर्वेतिहास क्या है, इस समय इंग्लैण्डके साथ उसका कैसा सम्बन्ध है, उसने अपने सामने कौनसा ध्येय रक्खा है, उसे प्राप्त करनेके लिए उसने कौनसे उपाय किये हैं और कहाँ तक उसे प्राप्त किया है।

२ आयर्लैण्डका प्राचीन इतिहास।



पश्चिमी युरोपके निवासी समुद्रयात्रा करनेमें बड़े कुशल और साहसी थे; इस लिए ग्यारहवीं शताब्दीके अंततक चारों ओरसे समुद्री डाकुओंके झुंडके झुंड आकर इस टापू पर उतरा करते थे। और इस प्रकार बहुत प्राचीन कालसे आयर्लैण्ड अनेक जातियोंके लोगोंका निवास हो रहा है। प्राचीन दंतकथायें और भाटोंके पँवारे यदि देखे जायँ तो उनमें आयर्लैण्डका इतिहास ठेठ आद्य जलप्रलयतक ले जाकर भिड़ाया हुआ मिलता है। ईसाईयोंके पुराणोंमें वर्णित जलप्रलयमें हजरत नूहकी 'तुआथ यानान' नामकी जो भतीजी बचगई थी और जिसने सारे संसारमें घूमकर सब प्रकारके प्राणियोंको बसाया था, वह पहले पहल आयर्लैण्डके किनारे पर ही उतरी थी और इस प्रकार वहींसे मनुष्योंकी आबादी शुरू हुई। इससे पहले पौराणिक कालमें, उन्हीं कथाओंके वर्णनके अनुसार, इस उजाड़ टापूमें अमानुष योद्धा, राक्षस, तांत्रिक और जादूगर आदि बसते थे। मनुष्योंकी बस्तीके समय पहले यहाँ अग्नि और सूर्यकी उपासना और नरयज्ञ आदि अघोरपंथी कर्म्म हुआ करते थे।

ईसवी सन्के आरंभसे चौदहवीं शताब्दी तक 'मारलेशियस' नामके एक पौराणिक योद्धाने आयर्लैण्ड पर अधिकार करके उसमें अपने अनुयायियोंको बसाया था और उनके लिए उसे उपनिवेश बनाया था। अब भी आयरिश लोगोंके काव्योंमें यह 'मारलेशियस' नाम लगा हुआ मिलता है। मारलेशियसके लड़के हेबरके नाम पर ही आयर्लैण्डको 'अयवेरियन' टापू कहते हैं। आगे चलकर मारलेशियसके हेबर और हेरियन नामक दोनों लड़कोंने आयर्लैण्डको दो भागोंमें विभक्त

करके आपसमें बाँट लिया था। प्रायः ईसवी शताब्दीके आरंभके समय रोमन लोगोंने पश्चिम युरोपके बहुतसे अंशोंको दबा कर उनमें अपनी फौजी चौकियाँ बैठाई थीं। लेकिन आयर्लैण्डमें उनका कुछ अधिक प्रवेश नहीं हुआ था। यह द्वीप युरोपके बिलकुल सिरे पर था, इसलिए रोमन लोगोंसे दब कर पीछे हटनेवाली अनेक जातियोंके लोग आयर्लैंडमें ही आश्रय लेकर रहते थे। इन लोगोंमें गाल्स, सेल्टस, पिक्स, स्काट्स आदि प्रधान थे। कुछ दिनों बाद इन्हीं लोगोंको आयर्लैण्ड स्वदेशसा जान पडने लगा और आगे चलकर मध्य युगतक आयर्लैण्डमें जो अनेक लड़ाइयाँ हुईं उनमें बीचबीचमें स्वदेश-भक्ति और स्वराज्यसंस्थापनाके हेतुकी झलक दिखाई पड़ती है। सभ्य युगके आरंभमें एक ऐसा समय भी हो गया है जिसमें इंग्लैण्डके निवासियोंकी अपेक्षा आयर्लैण्डके निवासी ही अधिक सभ्य और लड़ाके होते थे और जिस समयमें उन्होंने बीचबीचमें इंग्लैण्ड पर आक्रमण भी किये थे। चौथी और पाँचवीं शताब्दीमें फिडक और नियाल नामक आयरिश राजाओंने इंग्लैण्ड पर अपनी फौजें उतारी थीं, और इन बातोंका प्रमाण इंग्लैण्डके पश्चिमी समुद्रतटके कुछ स्थानोंके नामोंसे मिलता है। लेकिन आयरिश लोग स्थिर होकर सदाके लिए कभी इंग्लैण्डमें नहीं रहे। प्राचीनकालके आयरिश राजकुलोंमें अनेक वीरपुरुष होगये हैं और आजकल भी आयरिश लोग उन पूर्वकालीन वीरपुरुषोंके पँवारे बड़े प्रेमसे गाते हैं। जैसे मराठोंमें शिवाजी, बंगालियोंमें प्रतापादित्य अथवा अँगरेजोंमें अल्फ्रेड दि ग्रेट हो गये हैं वैसे ही आयरिश लोगोंमें कारमक और ब्रायन नामक वीर होगये हैं। कारमक जैसा वीर था वैसा ही भारी राजनीतिज्ञ भी था। उसने सैनिक शिक्षाके लिए तीन महाविद्यालय स्थापित किये थे और उसके बनाये हुए कायदे कानून आगे सैकड़ों वर्षों तक अमलमें आते रहे थे। हिंदुस्तानमें जिस प्रकार पाण्ड-

वोंका वीरकुल प्रसिद्ध है उसी प्रकार आयर्लैंडमें ओनील नाम वीरकुल प्रसिद्ध है। इस कुलकी हर पीढ़ीमें एकसे एक पराक्रमी पुरुषोंने जन्म लिया था। लेकिन उनकी सारी शूरता अपने देशके अन्दर ही अनेक शत्रुओंके साथ लड़नेमें खतम हुई थी, उसका और कोई विशेष उपयोग नहीं हुआ। मराठोंके लिए जिस प्रकार रायगढ़ और मुसलमानोंके लिए दिल्ली है उसी प्रकार आयरिश लोगोंके लिए 'तारागढ़' ऐतिहासिक दृष्टिसे बहुत महत्त्वका स्थान है। पहले पहल इसी 'तारागढ़' पर आयरिश लोगोंका स्वराज्यका झंडा खड़ा किया गया था और बहुत दिनों तक वह यहाँ फहराता भी रहा था। इसी तारागढ़में स्वदेशी राजाओंके राज्यारोहणका समारंभ बड़े ठाठसे होता था। छठी शताब्दीमें तारागढ़का महत्त्व सदाके लिए नष्ट हो गया; और तबसे अब तक वह स्थान बराबर उजाड़ पड़ा है। लेकिन अब भी जब जब आयरिश कवियों या देश-भक्तोंके मुखसे भावी स्वराज्यके संबंधमें उज्वल भक्तिसे प्रेरित उद्गार निकलते हैं तब तब उनमें किसी न किसी प्रकार 'तारागढ़' का प्रेमपूर्वक उल्लेख अवश्य होता है। तो भी यह बात ध्यानमें रखने योग्य है कि आयर्लैंडके बहुत ही छोटे टापू होने पर भी, विदेशी शासकोंके अधिकारमें आनेके समय तक, उसमें कभी किसीका एकच्छत्र राज्य नहीं हुआ। जान पड़ता है कि आयर्लैंडको अंतःकलहका कुछ शाप ही है। क्योंकि स्वदेशियों अथवा विदेशियोंके राजकालमें आयर्लैंडमें कभी शांति या एकता नहीं हुई।

पाँचवीं शताब्दीके लगभग आयर्लैंडमें ईसाई धर्मका प्रचार प्रारंभ होने लगा। पेलेडिअस, पेट्रिक, कोलंबा आदि अनेक ईसाई साधु और धर्मोपदेशक आयर्लैंडमें हो गये हैं। उनके परिश्रमसे आयरिश लोग ईसाई अर्थात् पोपके अनुयायी बने और तबसे रोमन कैथोलिक पंथका आयरिश लोगों पर इतना दृढ अधिकार जम गया है कि प्रोटेस्टेंट

पंथको आयर्लैण्डमें कभी जगह ही नहीं मिली । आयर्लैण्डके उत्तरी भागमें अँगरेज राजाओंने प्रोटेस्टेंट बस्तियाँ बसानेके लिए सब प्रकारके प्रयत्न किये थे; लेकिन इतना होने पर भी आज वहाँके निवासियोंमेंसे प्रति सैकड़ा ७५ और दक्षिणी भागमें प्रति सैकड़ा ८० आदमी रोमन कैथोलिक ही हैं । स्काटलैंड इंग्लैंड आदि आसपासके देशोंमें धर्म्म परिवर्तन हो गया, वहाँ प्रोटेस्टेंट पंथकी सदाके लिए स्थापना हो गई; परंतु आयरिश लोगोंने कभी पोपका स्वामित्व नहीं छोड़ा । इतना ही नहीं बल्कि जिस धर्म्मको उन्होंने एकबार हृदयसे मान लिया उसके लिए उन्होंने आजतक अनेक प्रकारकी कठिनाइयाँ और राजकीय दण्ड भी सहे हैं। सेण्ट पेट्रिक नामक एक विख्यात सिद्ध पुरुष हो गये हैं । आयरिश राजा नियालने जिस समय फ्रांस पर आक्रमण किया था उस समय बोलोन नगरमें पेट्रिक (बेट्रिशियस) नामक एक लड़का आयरिश सिपाहियोंके हाथ लगा था । वह आयर्लैण्डमें लाया गया और वहाँ गुलाम बनाकर बेचा गया। वहाँ वह २२ वर्षकी अवस्था तक अपने स्वामीके गोरू चरानेका काम करता रहा। इसके उपरांत एक दिन भागकर उसने अपना छुटकारा करा लिया। वह चारों तरफ यह कहता हुआ फिरने लगा कि मुझे ईश्वरके दर्शन हुए हैं और आज्ञा हुई है कि मैं ईसाई धर्मका प्रचार करूँ। शीघ्र ही बहुतसे लोग उसके शिष्य हो गये और जिस आयर्लैण्डमें उसने पहले गुलामीमें अपने दिन बिताये थे, उसी आयर्लैण्डमें जाकर उसने धर्म्मोपदेश करनेका साहस किया। सन् ४४५ ई० में वह आयर्लैण्डके किनारे जा उतरा । उन दिनों ड्रुइड लोग वहाँके धर्म्माध्यक्ष थे । उन लोगोंको चमत्कार दिखलाकर अंतमें नियाल राजाके लड़के थियोडोरको उसने ईसाई धर्म्मकी दीक्षा दी । धीरे धीरे और भी बहुतसी मंडलियोंके नेताओंने उसका शिष्यत्व स्वीकार किया और इस प्रकार

थोड़े ही समयमें वह सारे आयर्लैण्डका धर्म्मगुरु बन गया। पुराने जंगली ड्रुइड लोगोंका अधिकार उठ गया और उसके स्थानपर सुसंस्कृत ईसाई धर्म्ममण्डल स्थापित हुए। इन मण्डलोंको धीरे धीरे अच्छी आमदनीकी जमीनें मिलीं। उस आमदनीसे पलनेवाले धर्मोपदेशकोंने पाठशालायें खोलीं और थोड़े ही समयमें शिक्षाके प्रचारके साथ साथ देशमें धार्मिक जागृति भी इतनी अधिक हो गई कि आसपासके राष्ट्रोंमें धर्म्मोपदेशक भेजकर और धर्म्मदीक्षा देकर पावन करनेका काम आयर्लैण्ड करने लगा। उन दिनों जहाँ जहाँ ईसाई धर्म्मका प्रचार होता था वहाँ वहाँ रोमके धर्म्मगुरु (पोप) का स्वामित्व स्वीकृत होता था। लेकिन आयर्लैण्डमें पोपका प्रत्यक्ष अधिकार आगे कई शताब्दियों तक नहीं हुआ। स्थानिक धर्म्मगुरुने ही एक प्रकारसे स्थानिक स्वराज्यका भोग किया।

आठवीं और नवीं शताब्दीमें आयरिश लोगोंके धार्मिक चरित्रने बहुत ही उज्वल स्वरूप प्राप्त किया। यहाँ तक कि आयरिश धर्म्मगुरु और उपदेशक दूसरे देशोंमें जा-जाकर भी उस ओर कीर्ति प्राप्त करने लगे। धर्म्म और विद्याकी जोड़ी प्रायः सब देशोंमें अखण्ड दिखाई देती है। जिस प्रकार भारतवर्षमें ऋषि थे उसी प्रकार ईसाई देशोंमें धर्म्मगुरु थे। प्राचीन और मध्ययुगमें दोनोंने ही धर्म्मकी रक्षा और विद्याका प्रचार समान उत्साहसे किया था। इन दो शताब्दियोंमें आयर्लैण्डमें मठधारी धर्मोपदेशकोंका वर्ग बहुत बढ़ा। प्राचीन कालमें बौद्ध धर्म्मके प्रचारके समय भारतवर्षमें गृहस्थाश्रम पिछड़ गया था और स्त्रियाँ और पुरुष जोगिन और जोगी बनकर धर्म्मका प्रचार करनेके लिए स्वदेश और विदेशमें घूमने लगे थे। उन दिनों आयर्लैंडकी भी ठीक यही दशा थी। प्रायः उन्हीं दिनों आयर्लैण्डके 'डरो' और 'आरमा' के विश्वविद्यालयोंकी कीर्त्ति बहुत दूर दूर तक फैली थी, और युरोपके

विद्यार्थी और स्वातंत्र्यप्रेमी लोग विद्या पढ़नेके लिए वहाँ आ-आकर रहने लगे थे। जंगली युरोपियन लोगोंने अपने बाहुबलके पराक्रमसे आयरिश लोगों पर विजय तो अवश्य प्राप्त कर ली थी; लेकिन धर्म्मसुधार और विद्याके बलसे विजित आयरिश लोगोंने उलटे अपने जेताओं पर विजय प्राप्त करके उन्हें अपना दास बनाया था। लेकिन दुर्भाग्यवश यह स्थिति बहुत दिनों तक नहीं रही।

आठवीं शताब्दीतक आयर्लैण्डमें धर्म्मकी वृद्धिके साथ ही साथ अंत:कलहकी भी वृद्धि होती गई। आठवीं शताब्दीमें नार्थमेनोंके—जिन्हें डेन्स भी कहते हैं—आयर्लैण्ड पर आक्रमण होना आरंभ होगये। ये लोग ईसाई नहीं थे; और आयर्लैण्डमें उतरनेके साथ ही इन्होंने ईसाई धर्म्म-मण्डलों पर शस्त्रप्रहार करके लूटमार और अत्याचार आदिकी पराकाष्ठा कर दी थी। इस बाहरी संकटके कारण आयरिश लोगोंकी आँखें कुछ खुलीं और उन लोगोंने आपसका लड़ाई झगड़ा रोककर और एका करके डेन्स लोगोंके विरुद्ध बलवा किया और एक दो स्थानों पर उन्हें परास्त भी किया; लेकिन यह ऐक्य थोड़े ही समयतक टिका। इसके बाद फिर डेन्स लोगोंके जहाज आयर्लैण्ड पहुँचे और इन विदेशियोंने फिर चारों ओर अपना अधिकार जमा कर देशको मुट्ठीमें कर लिया। यह स्थिति सौ वर्षतक रही। इसके उपरांत ब्रायन और मेलेक्लिन नामक स्वदेशी शूरराजाओंने नेता बनकर डेन्स लोगोंको परास्त किया और उन्हें कतल करके सदाके लिए उनका उपद्रव शांत कर दिया। लेकिन शीघ्र ही ब्रायन और मेलेक्लिनमें झगड़ा खड़ा हो गया और फिर आपसमें ही खटपट होने लगी। अंतमें ब्रायनकी जीत हुई और सन् १००१ ई० में सारे आयर्लैण्डके राजाकी हैसियतसे तारागढ़में उनका राज्याभिषेक हुआ। डेन्स लोगोंने फिर एकबार उपद्रव खड़ा किया। सन् १०१४ ई०में क्लांटार्फमें भारी युद्ध हुआ जिसमें डेन्स लोग परास्त

हुए। वे समुद्र किनारेकी ओर भाग गये और आयरिश लोग विजयी हुए। लेकिन शूर राजा ब्रायन मारा गया, और इस कारण, उसके पीछे फिर आपसके झगड़े बखेड़े होने लगे। धीरे धीरे आयर्लैण्डके धर्म्मका स्वरूप भी मलीन हो चला। अंतःकलहरूपी दुष्ट पिशाच द्वारा पछाड़े हुए आयरिश लोगोंने आपस में खूब लड़ाई झगडे किये। उनके समस्त वैभव और सुखका लोप हो गया, और इस फूटसे लाभ उठाकर आयर्लैंड पर आक्रमण करनेवाले किसी नये शत्रुके लिए यशस्वी होनेमें शंका करनेका कोई कारण ही नहीं रह गया। ऐसी स्थितिमें बारहवीं शताब्दीमें इंग्लैण्ड और आयर्लैण्डका पहले पहल संबंध हुआ। और वह संबंध जो एकबार हुआ सो आठसौ वर्षपर्य्यन्त अर्थात् आज दिनतक आयर्लैण्डके सब कुछ करने पर भी नहीं टूटा।

बारहवीं शताब्दीके आरंभमें आयर्लैंडमें अलस्टर, लेनस्टर, मनस्टर और कनाट ये चार अलग अलग राज्य थे और उन सबमें अलस्टर राज्य प्रधान था। लेकिन इन चारों राज्योंके राजा सदा आपसमें लड़ा झगड़ा करते थे। इस खराबीमें ऊपरसे एक पाप कर्म्मका पुट दिया गया। देखा जाता है कि परस्त्रीकी अभिलाषा इतिहासमें अनेक अवसरों पर बड़े बड़े राष्ट्रीय उलटफेर कर देती है, और प्रायः ऐसा एक भी महाकाव्य न मिलेगा जिसमें मुख्य कथानकका सारा आधार परस्त्रीहरण-पाप और उसके प्रायश्चित्त पर न हो। लेनस्टर राज्यका राजा मेकडरमाट मेकमरो अत्यन्त कपटी और क्रूर था। सन् ११५२ ई० में वह एक रोरुर्क नामक सरदारकी स्त्रीको भगा ले गया। बेचारे रोरुर्कने थरलो ओकोनर नामक सामंताधिपका आश्रय लिया और उससे सहायता माँगी। दोनोंने मिलकर मेकडर माटको आयर्लैंडसे भगादिया। इस प्रकार अनीति-प्रवृत्त मेकडर माटको कहीं आश्रय मिलना न्याय्य नहीं था, लेकिन आयर-लडके दुर्भाग्यमें इंग्लैंडके लोभका जोड़ मिल गया। मेकडर माट भट्र-

कता भटकता इंग्लैण्ड पहुँचा (सन् ११६७ ई०) और वहाँके राजा द्वितीय हेनरीको नया देश दिलवा देनेका लालच देकर उसने उससे सहायताका वचन लिया। उस समय इंग्लैण्ड बहुत अच्छी दशामें था। देशमें शांति विराज रही थी। बहादुर सिपाहियों और नौजवानोंके *लिए तलवार चला कर कीर्ति प्राप्त करनेके लिए स्वदेश पूरा नहीं था।* नये मुल्क जीतने और इसी प्रकारके दूसरे साहसपूर्ण कृत्य करनेकी हवस अँगरेज सरदारोंको थी ही। अतः आयलैंड पर आक्रमण करनेके लिए राजा हेनरीको स्वतंत्र सेना भेजनेकी आवश्यकता नहीं पड़ी। उसने एक फरमान निकालकर लोगोंको सूचित कर दिया कि जो लोग चाहें वे अपने साथ सिपाही लेकर आयर्लैण्ड पर आक्रमण करके मेकमरोकी सहायता करें। जो लोग इस प्रकार आक्रमण करेंगे उनपर दरबारकी कृपा होगी और उन्हें सरदारी भी मिलेगी। इस फरमानसे लाभ उठाकर अनेक तरुण अँगरेज योद्धा फौज लेकर आयर्लैण्डके तटपर उतर पड़े। जिसके लिए इतने झगडे बखेड़े हुए थे उस पापी मेक-मरोका यद्यपि इस समय अंत भी हो गया था, तथापि अँगरेजोंका पैर आयर्लैण्ड पर जो पड़ा वह सदाके लिए ही पड़ा। हेनरी राजाको अपने लिए नया राज्य प्राप्त करनेकी हवस थी ही; इसके सिवा उसी समय रोमकी गद्दी पर चतुर्थ हेड्रियन नामक अँगरेज पोप होकर बैठा था; उसने रोमन कैथोलिक मतका प्रसार करने और खजाना भरनेके उद्देश्यसे आयर्लैण्डको अपने अधिकारमें लानेके लिए राजा हेनरीसे विशेष आग्रह किया था। पहले जो युवक अँगरेज सरदार आयर्लैण्ड गये थे उन्होंने जब आयरिश राजाको युद्धमें परास्त कर दिया तब स्वयं राजा हेनरी एक बड़ी भारी सेना लेकर आयर्लैण्ड पहुँचा। क्योंकि मांडलिक 'फ्यूडल' पद्धतिके अनुसार अधीनस्थ सरदारोंके जीते हुए देश पर राजाका स्वामित्व रहना आवश्यक था।

हिन्दुस्तानमें भी सिताराके अधीनस्थ पेशवा, सिंधिया और होलकर आदि सरदार लड़भिड़ कर जो देश जीतते थे, यद्यपि उनका सब काम-काज और सूबेदारी वे ही सरदार करते थे तो भी यह प्रसिद्ध ही है कि उसके मुख्य स्वामी सितारेवाले ही होते थे।

हेनरी राजाने आयर्लैण्डको नाम मात्रको जीता था; क्यों कि उसने किसी राजासे कर आदि नहीं उगाहा था। और इसी लिए उसका कोरा स्वामित्व स्वीकार करनेमें आयरिश राजमंडलने भी विशेष आपत्ति नहीं की। लेकिन हेनरीके स्वदेश लौटते ही उसके पीछे आयर्लैण्डमें केवल डबलिन नगर और उसके आसपासके थोड़ेसे प्रदेशको छोड़कर बाकी और किसी भी स्थान पर अँगरेजोंका वास्तविक स्वामित्व नहीं रह गया। बीचमें छोटेसे टप्पेमें अँगरेजी अमलदारी थी और उसके चारों ओर समस्त देशमें स्वदेशी राजाओंका अधिकार था। यह स्थिति बराबर कई वर्षोंतक बनी रही, और अलस्टरके राजाने तो बहुत दिनोंतक पहलेकी ही तरह अन्य राजाओं पर अपना स्वामित्व चलाया। डबलिनका 'लार्ड-डिपुटी' अथवा सूबेदार जैसा होता, अथवा स्वयं इंग्लैण्डकी जैसी राजकीय स्थिति होती, आयर्लैण्डमें भी अँगरेजोंका प्रभुत्व उतना ही कम या अधिक होता। यदि कोई सूबेदार बहादुर और पराक्रमी होता तो वह आसपासके प्रदेशों पर आक्रमण करके अपना अधिकार जमा लेता और कर वसूल करता, और नहीं तो फिर आयरिश लोग ही अँगरेजोंकी बस्तीकी ठेठ सीमातक पहुँचकर उन्हें दिक करते। यही दशा बहुत दिनोंतक बनी रही। इस बीचमें आयरिश लोगोंमें यदि कभी एकता हुई होती तो वे अँगरेज सूबेदारोंको कभीका इंग्लैण्ड लौटा दिये होते; लेकिन उन लोगोंको कभी इस बातकी कल्पना भी नहीं हुई कि, आयर्लैण्ड हमारा देश है और उसके हितके लिए हम लोगोंको आपसका वैमनस्य भूल जाना चाहिए।

आयरिश लोग व्यक्तिशः ईमानदार होते हैं। लेकिन जिसका वे नमक खाते हैं, उसी साढ़े तीन हाथके देहधारी मूर्त व्यक्ति तक ही उनकी ईमानदारी, निष्ठा और तलवार काम करती है। यदि बहुत हुआ तो वह ईमानदारी उस व्यक्तिके घरानेतक पहुँच जाती है; और वे लोग इसी प्रकार कई पीढ़ियोंतक एक ही घरानेके ऋणानुबंधी मित्र अथवा गुलाम बनकर रहते हुए दिखाई देते हैं। इसलिए केवल धन देनेसे विदेशियोंके लिए स्वदेशियोंके साथ लड़नेवाले ऐसे बहुतसे आयरिश योद्धा मिल जाते थे, जो पहलेसे किसी घरानेके बंधनमें नहीं होते थे। और आजतक आयर्लैण्ड पर अँगरेज राजाओंका अधिकार बहुतसे अंशोंमें इसी प्रकारके आयरिश सिपाहियोंकी तलवारके बल पर रहा है; लेकिन हिंदुस्तानके लोगोंको इस बात पर आश्चर्य्य न करना चाहिए कि आयर्लैण्डमें ऐसा क्यों होता था। इसके अतिरिक्त यह बात भी नहीं थी कि उस समय यह स्थिति केवल आयर्लैण्डकी ही रही हो। स्काटलैण्डमें स्काच् लोग अँगरेजोंके लिए लड़े थे, इँग्लैण्डमें कुछ सेक्सन लोगोंने प्लांटेजनेट राजाओंकी ओरसे हथियार उठाये थे; फ्रांसमें जूलियस सीजरने बहुतसे फ्रेंच सरदारोंकी सहायतासे पहले पहल रोमकी अमलदारी जमाई थी और स्पेनमें मूर लोगोंके झण्डेके नीचे बहुतसे 'सिड' लोगोंने लडकर स्वदेशको विदेशियोंके अधिकारमें भेजनेमें सहायता दी थी।

३ आयर्लैण्डका अर्वाचीन इतिहास ।

आयर्लैण्ड पर अँगरेजोंका अधिकार हो जानेके उपरान्त यदि नारमन लोगोंकी उदार राजपद्धतिके अनुसार राजकार्य्य आरंभ हुआ होता, तो आयर्लैंडकी भारी विपत्ति टल जाती। लेकिन आयर्लैंडमें रहनेवाले अँगरेज अधिकारियोंने इंग्लैण्डके अधिकारियोंको बराबर यही जतलानेका प्रयत्न किया कि यदि नारमन शासकोंकी सदाकी पद्धतिके अनुसार आयरिश लोगोंके साथ रिआयतें की जायँगी और दोनोंमें मेल होने दिया जायगा तो अँगरेजोंके लिए यह संबंध बहुत ही अहितकारक होगा। इस कारण अँगरेजोंकी खास अमलदारीमें रहनेवाले आयरिश लोगोंके साथ बहिष्कृत लोगोंकी तरह वर्तावं करनेकी प्रथा चल पड़ी। अँगरेज सरदारोंने नियमसा कर लिया कि हम केवल जमीन या धन प्राप्त करनेके लिए ही आयर्लैंड जायँगे; स्थायी रूपसे रहनेके लिए वहाँ नहीं जायँगे। शायद उन्हें इस बातका डरसा हो गया था कि आयर्लैंडमें रहकर वहाँके लोगोंके साथ संसर्ग रखनेसे हमारी श्रेष्ठ रीति-नीतिमें बट्टा लगेगा और कुछ दिनों बाद हमारा शुद्ध बीज नष्ट हो जायगा ! इसी लिए वे नकद माल लेकर स्वदेश लौट आया करते थे और जो कुछ जमीन जायदाद उन्हें मिलती थी, उसकी देखरेखके लिए अपनी ही जातिका एक कारिन्दा नियत कर आते थे और जो कुछ उसके द्वारा वसूल हो सकता था उसीको लेकर अपने देशमें आनन्द करते थे। अंतमें यह पद्धति आयर्लैण्डके लिए बहुत ही घातक सिद्ध हुई। क्योंकि इसके कारण देशका धन घटने लगा और समस्त धन संपत्तिका मूल-स्थान भूमि-धन धीरे धीरे दूसरोंके हाथोंमें चला गया, जिसके कारण उस जमीनका सुधार तो नहीं होता था, केवल ऊपरी लोगोंके द्वारा वह जोती-बोई भर जाती थी।

जो अँगरेज स्थायी रूपसे आयर्लैण्डमें रह गये उनके लिए सदा आयरिश लोगोंके साथ कठोर और अनुचित व्यवहार करके रहना प्रायः कठिन ही था। लेकिन आयर्लैण्डका राजकीय सूत्र इँग्लैण्डके हाथमें था और स्वयं इंग्लैण्डमें आयरिश लोगोंका अनादर था, इस लिए स्थायी रूपसे आयर्लैण्डमें बसकर रहनेवाले उन अँगरेजोंकी कुछ चलती न थी। कभी कभी उनमेंसे किसीके मनमें ये विचार भी आते थे कि आयरिश लोगोंके साथ स्नेह रक्खा जाय, उनसे ममता की जाय, संकटके समय उनकी सहायता की जाय, अपनी अच्छी अच्छी बातें उन्हें सिखाई जाँय और उनकी अच्छी अच्छी बातें स्वयं ग्रहण की जायँ। लेकिन उधर इस प्रकारके काम करनेवालोंको दण्ड देनेके लिए कायदे भी बनाये जाते थे। उदाहरणार्थ, सन् १३६३ ई० में महाराज तृतीय एडवर्डके राजत्वकालमें एक नियम बना था कि जो अँगरेज आयरिश भाषा सीखकर बोलेगा, अपने लड़कोंके आयरिश नाम रक्खेगा, आयरिश स्त्रियोंके साथ विवाह करेगा, आयरिश दाइयोंसे अपने छोटे बच्चोंको दूध पिलवाएगा, आयरिश कपड़ोंकी या आयरिश रंगकी पोशाक पहनेगा, अथवा आयरिश रीति-नीति अंगीकार करेगा उसको फाँसीकी सजा दी जायगी और उसकी सारी जमीन-जायदाद जब्त कर ली जायगी। स्वयं आयरिश लोगोंके व्यवहारके संबंधमें भी इसी प्रकारके अन्यायपूर्ण नियम बनाये गये थे। आयरिश लोगोंको किलेबंदीवाले नगरोंमें रहनेका अधिकार नहीं था। आयरिश लोग यदि अँगरेज निवासियोंका कोई अपराध करते तो उन्हें फाँसीकी सजा दी जाती; लेकिन कोई अँगरेज यदि किसी आयरिशको मार भी डालता तो उस अँगरेजको फाँसी नहीं हो सकती थी। क्योंकि आखिर वे लोग थे तो 'आयरिश' ही! यदि कोई अँगरेज किसी आयरिशकी मिलिकियत दबा बैठता, या किसी आयरिश खेतिहरके खेतमें अँगरेजी फौजका पड़ाव पड़नेके

कारण उसकी फसल चौपट हो जाती और सालभरकी सारी मेहनत एकही रातमें अकारथ हो जाती, तो अदालतमें उसका दावा नहीं हो सकता था। इन सबका कारण यही था कि अँगरेजोंके मनमें यह बात अच्छी तरह जम गई थी कि आयरिश लोग जंगली हैं। अँगरेज़ लोग अभी विदेशी थे, और आयरिश लोगोंको जंगली समझनेके कारण उनके साथ किसी प्रकारका सम्बंध नहीं रखते थे। अँगरेज लोग यही सोचते थे कि कुछ दिनोंमें आयरिश लोगोंको नष्ट करके हम ही लोग इस नई भूमिके मालिक बन जायँगे। इसके अतिरिक्त आयर्लैण्डमें जिन विदेशियोंका राज्य था उनका राजा इंग्लैण्डमें रहता था; आयर्लैण्डमें कोई राजा ही नहीं था, इस लिए इन दोनोंका वैमनस्य बढ़ता जाता था और उसे रोकनेवाला कोई नहीं था। अर्थात् यदि एक वार लड़ाई शुरू हो जाती तो उसके खतम होने तक और खतम होनेके बाद भी झगड़ोंकी बहुत सी बातें बराबर होती ही रह ती थीं। आयरिश पुरुषोंकी कौन कहे यदि अँगरेजोंके हाथ आयरिश स्त्रियाँ और बच्चे भी लग जाते तो उन्हें भी वे झट काट डालते थे! लड़ाईके उपरांत जब अँगरेजी सिपाहियोंकी टोलियाँ 'बिजन' करने निकलती थीं, तब कोसों तक उन्हें जो जीता प्राणी मिलता था उसे वे मार डालती थीं। लेकिन एक ही हल्लेमें उनका काम पूरा नहीं होता था और लोग भाग भाग कर अपनी जान बचा लेते थे, इस लिए अँगरेजोंने बिजनकी दूसरी युक्ति यह निकाली थी कि प्रतिवर्ष अँगरेज सिपाही कुछ निश्चित प्रांतोंमें घुस जाते थे और अन्न, घास, चारा वगैरह जो कुछ उन्हें मिलता था, उसे जला देते थे। अर्थात् सिपाहियोंकी तलवारसे जो लोग किसी प्रकार अपना बचाव कर लेते थे, वे इस प्रकार अन्न आदिके अभावके कारण कुछ दिनोंमें धीरे धीरे भूखों मर जाते थे। प्रसिद्ध अँगरेज कवि स्पेन्सरने आयर्लैण्डमें रह कर जो बातें

आँखों देखी थीं उसने उनका बहुत ही भयंकर और हृदयद्रावक वर्णन किया है। वह कहता है—" जिधर जाओ उधर जंगलों और झाड़ियोंमेंसे हाथों पैरोंके बल रेंगते हुए लोग बाहर निकलते हुए दिखाई देते थे। उनमें खड़े होने तक की शक्ति नहीं होती थी। वे लोग यमराजके दरबारसे लौटे हुए जान पड़ते थे और जिस तरह कबरोंमेंसे भूत बोलते हैं उसी तरह वे लोग बोलते थे। कहीं थोड़ेसे कच्चे मांसके दिखाई पड़ते ही वे झपटकर उसपर टूट पड़ते थे और चटपट दाँतोंसे चींथकर खा जाते थे; और अंतमें भूखके कारण एक दूसरेके अंगों पर दाँत लगाते थे। " होलिन शेडने लिखा है–" हालकी लड़ाईके बाद प्रायः सौ मील तक बड़े बड़े गाँवोंको छोड़कर और स्थानोंमें मनुष्योंकी कौन कहे मुझे जानवर तक नहीं दिखाई दिये। बहुतसे यात्रियोंने यहाँ तक देखा है कि स्त्रियाँ भूखके कारण अधमरी होकर पड़ी हुई हैं और उनके बच्चे उनके शरीरका मांस नोच रहे हैं। "

राजकुमार जानके राजत्व कालमें आयरिश राजे-रजवाड़े और भी अच्छी तरह यह बात समझने लगे थे कि अब अँगरेजोंने हम लोगोंको पूरी तरहसे जीत लिया। जान पागल और दुष्ट था, क्योंकि उसने आयरिश राजे-रजवाड़ोंकी दाढ़ियाँ नोचवा ली थीं और उनके स्वाँग निकलवाकर उनकी हँसी उड़वाना शुरू कर दिया था। इसके उपरांत राजा द्वितीय रिचर्डके राज्यासन पर बैठनेके समयतक आयर्लैण्डकी ओर अँगरेजोंका उतना ध्यान नहीं था। उन्हीं दिनोंमें स्वामी रूपसे बसे हुए अँगरेजोंका आयर्लैण्डमें अच्छा चक जम गया। ऊपर जिन कायदोंका जिक्र किया गया है वे आयर्लैण्डमें रहनेवाले अँगरेजोंको पसंद नहीं थे और जहाँतक हो सकता था वे उनका उल्लंघन ही करते थे। इसलिए राजा रिचर्डने एक बार फिर (१३९४ ई० में) कुछ बंधेज लगानेका प्रयत्न किया; लेकिन उसकी कुछ भी न चली। इसके बाद सातवें

हेनरीने इस कामकी ओर विशेष ध्यान दिया । आयर्लैण्डमें रहनेवाले अँगरेजोंने इससे पहले अपनी एक स्वतंत्र पार्लमेंट बनाई थी। इस पार्लमेण्टका प्रारम्भ तेरहवीं शताब्दीमें ही हुआ था और चौदहवीं शताब्दीके मध्यमें उसे एक अच्छा स्वरूप प्राप्त हो गया था– उसकी खुब उन्नति हुई थी । यद्यपि वहाँ अँगरेजोंकी आबादी थोड़ी ही थी; लेकिन पार्लमेण्ट एक प्रकारसे अँगरेजोंकी घुट्टीमें पड़ी है इस लिए अपने छोटेसे क्षेत्रमें ही उन लोगोंने अपनी सभाकी अच्छी व्यवस्था कर ली थी; और उस क्षेत्रमें उसी सभाके पास किये हुए नियमोंका पालन होता था । लेकिन यह पार्लमेण्ट लैम्बर्ट सिमनेल (सन् १४८७ ई०) और पर्किन वारबेक (सन् १४९२ ई०) सरीखे धूर्तोंको खुब चिथाड़ती थी और इंग्लैंडके राजाओंको इससे बुरा मालूम होता था । अतः इस छोटीसी पार्लमेण्टके कायदे कानून बनानेके अधिकारको परिमित करके उस सभाका महत्त्व घटानेके लिए अँगरेज सूबेदार सर एडवर्ड पाइनिंगने ‘ पाइनिंगस एक्ट ’ नामक एक एक्ट पार्लमेण्टसे पास करा लिया (सन् १४९४ ई०)। इस एक्टसे यह निश्चित हुआ कि इंग्लैण्डके राजा और उसके मंत्रि-मंडलकी पहलेसे सम्मति लिये बिना आयरिश पार्लमेण्टके सामने कोई बिल उपस्थित न हो सकेगा । इस पार्लमेण्टका अधिवेशन भी राजाकी आज्ञाके बिना न हो सकेगा। यह पार्लमेण्ट जो कायदे बनायेगी वे बिना अँगरेज राजाकी स्वीकृतिके ठीक नहीं समझे जायँगे और उसके अनुसार कार्य्य न हो सकेगा। तो भी इस एक्टसे आयलैंडवाले अँगरेजोंकी व्यावहारिक स्वतंत्रतामें विशेष बाधा नहीं पड़ी। जो थोड़ेसे अमीर उमरा वहाँ स्थायी रूपसे बस गये थे उन्हें आयलैंड स्वदेशकी तरह मालूम होने लगा था और उनकी स्वामिभक्तिके बंधन ढीले पड़ गये थे। आयरिश लोगोंके साथ उनका व्यावहारिक सम्बन्ध भी दिन-

पर दिन दृढ होता जाता था। इतने छोटेसे आयर्लैण्डमें उस समय कमसे कम साठ आयरिश राजा थे और वे अपने युद्ध और संधियाँ आदि अपनी ही जिम्मेदारी पर स्वतंत्र रूपसे करते थे। उधर अँगरेजी आबादीमें भी तीस अँगरेज सरदार थे और उनमें स्वातंत्र्यप्रेम अच्छी-तरह भर रहा था। ये सब लोग यद्यपि आपसमें लड़ते झगड़ते रहते थे, पर तो भी उनमेंसे कोई अपनी खुशीसे और स्थायी रूपसे अँगरेज राजाका सार्वभौमत्व स्वीकार करनेके लिए तैयार नहीं था। इस लिए उन दिनों आयर्लैण्ड पर अँगरेजी सार्वभौमकी प्रधानता निकृष्ट दशामें आ गई थी। अँगरेजी आबादियों पर आयरिश लोग बराबर आक्रमण किया करते थे और जिसने पहले पहल विदेशी सत्ताको आयर्लैण्डमें घुसाया था उस डरमाट मेकमरो राजाका ही एक वंशज संयोगसे इन आक्रमणोंका एक नेता था। लेकिन आठवें हेनरीके इंग्लैण्डके राज्यासन पर बैठनेके समयसे (सन् १५०० ई०) फिर रुख बदला। उसने आयर्लैण्ड-पर अपना बहुत कुछ अधिकार जमा लिया। इतना ही नहीं बल्कि रोमन कैथोलिक धर्मका उच्छेद और उसके स्थान पर प्रोटेस्टेंट धर्मकी स्थापना करनेका संकल्प करके उसने आयर्लैण्डमें प्रोटेस्टेंट अँगरेजोंको भरना और कैथोलिक लोगोंकी जमीनें छीनकर उन्हें देना शुरू किया। हेनरी हठी था, पर साथ ही कुछ समझदार भी था। उसने आयरिश राजाओंकी खुशामद करके और उन्हें अँगरेजी पदवियाँ तथा घूस आदि देकर अपनी ओर मिला लिया था। उन लोगोंसे उसने यह भी करार करा लिया था कि राज दरबारका बढ़िया रंग ढंग सीखने और अँगरेजी विश्वविद्यालयोंकी उच्च शिक्षाका लाभ उठानेके लिए आयरिश अमीर उमरा अपने लड़कोंको इंग्लैंड भेजेंगे, अँगरेजी भाषाका व्यव-हार करेंगे और अँगरेजी ढंगके कपड़े पहनेंगे।

इसी समय आयरिश लोगोंके धार्मिक कष्टोंका आरंभ हुआ। इस समय

तक रोमन कैथोलिक धर्मोपदेशकोंने विद्याकला आदिका जो पालन पोषण किया था, उसकी शामत आगई । कैथोलिक लोगोंके मठ उजाड़ जाने लगे; उनमेंके कीमती सामान लूटे जाने लगे; मठमें रहनेवालोंकी दुर्दशा होने लगी; जिन लोगोंने प्रतीकार किया उन्हें जेलखाने भेजा गया, कैथोलिक पंथकी मूर्तियाँ, प्रतिमायें और पवित्र वस्तुयें भरे चौरास्तों पर लाकर जलाई या बेची जाने लगीं । इन सब बातोंके कारण आयरिश लोगोंका जी अँगरेजी अमलदारीसे ऊब गया। लेकिन इन अत्याचारोंसे प्रोटेस्टेंट मतका प्रचार नहीं हुआ । रानी मेरीके राजत्वकालमें रोमन कैथोलिक पंथ कुछ चमक उठा था, पर शीघ्र ही उसकी वह चमक जाती रही । रानी एलिजबेथके समयसे इंग्लैण्डमें प्रोटेस्टेंट धर्मका प्रसार होने लगा, उसे स्थायीरूपसे आश्रय मिला; और तबसे राजनैतिक विषयोंके साथ धार्मिक पागलपन भी मिल गया जिससे अंगरेजों और आयरिश लोगोंका झगड़ा और भी दूना हो गया। स्काटलैण्डकी तरह आयर्लैण्डवालोंके मनमें भी यदि केवल राजनीतिक बातोंका ही खटका होता तो वह कुछ समयमें निकल गया होता। एक तो धार्मिक बातें सभी देशवालोंको ज्यादा खटकती हैं । और तिस पर आयरिश लोग धर्म्मके विषयमें बड़े ही निग्रही और हठी थे, इस लिए उन्हें वे और भी अधिक खटकीं ।

रानी एलिजबेथके राजत्व-कालमें (सन् १५५८ ई०) आगे कुछ दिनोंतक आयर्लैण्डमें अँगरेजी राजनीतिक बातोंको एक विशेष प्रकारका महत्त्व प्राप्त हुआ । इसका कारण यह था कि उस समय इंग्लैण्ड और युरोपके अन्य कई राष्ट्र युद्धमें लगे हुए थे। ये युद्ध प्रायः धर्ममूलक थे; इसलिए इंग्लैण्डके रोमन कैथोलिक शत्रुओंको आयरिश लोग मित्र से जान पड़ने लगे । आयर्लैण्ड और इंग्लैण्डमें केवल सत्तर मीलका अन्तर था, इसलिए इंग्लैण्ड पर आक्रमण करनेके समय शत्रुके जहाज़ोंको आय-

लैण्डके बंदरोंमें ठहरनेका अच्छा मौका था। यह देखकर फ्रान्स, स्पेन और हालैण्डका ध्यान स्वाभाविक रीतिसे आयर्लैण्डकी ओर गया और इंग्लैण्डके शत्रुत्वके समान-धर्म्मके कारण उन्हें वह देश प्रिय भी जान पड़ने लगा। तब इंग्लैण्डके मंत्रिमंडलको आयर्लैण्डकी चिंता पड़ी। उसने सन् १५६९ ई० से आगे कई वर्षोंतक आयरिश रोमन कैथोलिक लोगोंके साथ बहुत सख्ती की और आयर्लैण्डमें सैनिक प्रबंध भी अधिक किया। यहींसे आयर्लैण्डकी स्वतंत्रताकी प्राप्तिके लिए युद्ध आरंभ हुआ। आयर्लैण्डके आधुनिक इतिहासमें जिन लोगोंके नाम कीर्ति-तेजसे चमक रहे हैं वे इसी समयके बाद सुनाई पड़ने लगे थे। आयर्लैण्डमें आकर जो अँगरेज बस गये थे, उन्हींमेंसे एक अँगरेज सरदारने अपने धार्म्मिक अभिमानके कारण इस युद्धका आरंभ किया था (सन् १५५९ ई०)। उसका नाम जिराल्डिन था। उसने मनस्टर प्रांतमें विद्रोहका झंडा खड़ा किया था। यदि उस समय उत्तरी आयर्लैण्डके राजा-रजवाड़ोंने उसकी सहायता की होती तो इंग्लैण्डकी सत्ता आयर्लैण्डमें रहती या नहीं, इसमें सन्देह है। लेकिन जैसा कि पहले एक जगह कहा जा चुका है, आयरिश लोगोंको अन्तःकलहका वरदान बहुत पुराने जमानेसे मिला हुआ है। एलिजबेथको लोग बहुत अच्छी रानी कहते हैं, लेकिन उसके राजत्वकालमें, इस युद्धमें जितनी निरपराध आयरिश प्रजा मरी, उतनी उस मेरी रानीके राजत्वकालमें भी नहीं मरी थी जिसकी क्रूरता और दुष्टताका इतिहासमें ढिंढोरा पिटा हुआ है। इस प्राणहानिसे भी बढ़कर एक और घोर परिणाम हुआ, वह यह कि राजद्रोहके अभियोगमें मनस्टर प्रांतके कैथोलिक लोगोंकी कमसे कम पाँच लाख एकड़ जमीन सरकारमें जब्त हो गई और एलिजबेथ रानीके प्रोटेस्टेंट सिपाहियों और सरदारोंमें बाँट दी गई।

जिराल्डिनके विद्रोहके उपरांत शीघ्र ही एक और विद्रोह हुआ (सन् १५९८ ई०)। इस बार उत्तरके राजाओंके सिर उठानेकी पारी थी और उसमें अलस्टर प्रांतके ओनील और ओडानेगा आदि माण्डलिक राजा नेता थे। ह्यू ओनीलने दो लड़ाइयोंमें अँगरेजी सेनाको परास्त करके समस्त उत्तर भाग अपने अधिकारमें कर लिया था, और इसलिए जिराल्डिनके विद्रोहके बचे हुए लोग भी आकर उसके साथ मिल गये थे। लेकिन इस विद्रोहका दमन शांत उपायोंसे ही हुआ। विद्रोहियोंकी जमीन जब्त नहीं की गई, बल्कि उन्हें ऊँची ऊँची अँगरेजी पदवियाँ दी गईं। यह बात ठीक है कि जेम्सके राजत्वकाल (सन१६०३–२५) में आयरिश लोग पीड़ित नहीं हुए, तो भी आयरिश लोगोंको यह बात मालूम हो गई कि राष्ट्रोंकी राष्ट्रीयता और स्वातंत्र्य-प्रेम नष्ट करनेमें तलवारकी अपेक्षा राज-दरबारकी कलमका कितना अधिक उपयोग हो सकता है। जिस समय पानीदार तलवार नहीं चलती उस समय मौका मिलने पर मीठी लेकिन जहरीली जीभ (निब) बहुत ही घातक काम कर सकती है। यद्यपि खुली लड़ाई रुक गई और कतल करनेकी मनाही हो गई, तो भी बदमाश हत्यारोंको काम करनेका अवसर मिलता ही रहा और उनके द्वारा बहुतसे ऐसे आयरिश मांडलिक राजाओंका जो त्रासदायक और राजद्रोही समझे जाते थे, इसी बदमाशीसे वध किया गया। बहुतसे मित्रताके फेरमें पड़कर जन्मभरके लिए कैदी बन गये; कितनोंहीके प्राण विषप्रयोगसे लिये गये; और कितनेही अपने घर पर बुलाये हुए मेहमानोंके हाथसे मारे गये। ऊपर कहा जा चुका है कि ओनील और ओकानेलको बड़ी बड़ी पदवियाँ मिलीं और उनकी रियासतें जब्त नहीं हुईं। लेकिन यह वैभव सदा ठहरनेवाला नहीं था। डब्लिनके अधिकारियोंने उन पर षड्यंत्रका अभियोग लगाया और उनको राजद्रोही अपराधी प्रसिद्ध कर दिया

जिससे उन्हें देश-छोड़ देना पड़ा और परदेशमें जाकर आश्रय लेना पड़ा। अलस्टर प्रान्तमें उनकी तथा अन्य लोगोंकी जो बढ़िया और उपजाऊ भूमि थी वह सदाके लिए जब्त कर ली गई और उसे आबाद करनेके लिए इंग्लैण्डके तरुण सरदार और खेतिहार आदि भेजे गये। लार्ड बेकनने सम्मति दी थी कि जबतक आयर्लैण्डमें स्थायीरूपसे अँगरेजोंकी बस्ती न होगी वहाँके बलवाइयों पर दबाव सम्भव नहीं है; इस लिए अब वहाँ बस्ती बसानेका काम जोरोंसे होने लगा। कुल मिलाकर बीसलाख एकड़ भूमि जब्त की गई। उसमेंसे बहुत ही बढ़िया और उपजाऊ पाँच लाख एकड़ भूमि अँगरेजोंको दी गई; और बाकी बची हुई बलुई, पथरीली, और दलदली पंद्रह लाख एकड़ भूमि आयरिश लोगोंको लौटा दी गई। इसमें संदेह नहीं कि आयर्लैण्डमें इस बार जो लोग घुसे थे वे शूर साहसी और अच्छे बुद्धिमान थे। इसके अतिरिक्त उनके पास अच्छी सामग्री भी थी और उन्हें राजाश्रय भी मिला था। इस लिए थोड़े ही दिनोंमें उन लोगोंने उस जमीनको बहुत कुछ सुधार लिया। तालाब बनवाये, बाँध बाँधे, फलोंवाले पेड़ लगाये, और अपने लिए घर तथा गिरजे बनाये। एक ओर इन बगीचोंकी हरियालीमें सिर उठाये बड़े बड़े उज्ज्वल घर और गिरजोंके कंगूरे आँखोंको रम्य जान पड़ते थे; और दूसरी ओर इस सुख-पूर्णस्थानसे आधमीलकी दूरी पर ही किसी पहाड़ीके नीचे या दलदलके पास टूटी फूटी झोपड़ियाँ डाले, गोरुओंके झुंड पालकर केवल उनके दूध आदि पर उदर-निर्वाह करनेवाले और अपने देशमें ही पराये बने हुए जो आयरिश लोग किसी तरह अपने दिन बताते थे उन्हें देखकर दुःख होता था।

जेम्सके राजत्व-कालमें जिस प्रकार अलस्टर प्रांतमें बस्ती बसाई गई थी, उसी प्रकार उसके लड़के चार्ल्स (१६२५–१६४९) के राजत्व-कालमें कनाट प्रांतमें भी एक बस्ती बसाई गई थी। इस बस्तीके लिए

जमीन चाहिए थी; लेकिन उस समय लोगों पर राजद्रोहका अभियोग लगानेके कारण नहीं मिले थे इस लिए जाँच तहकीकात और न्यायका अभिनय करके (सन् १६३५ ई०) और लोगोंके हक मारके जमीन प्राप्त की गई। इस न्याय-विचारके काममें जिन जूरियोंनें सरकारको सहायता दी थी, उनका तो खूब कल्याण हुआ और जिन्होंनें विरुद्ध सम्मति दी थी उन्हें दण्ड दिया गया। यहाँ तक कि ऐसे अयोग्य जूरियोंको जूरी नियुक्त करनेके अपराधमें शेरीफ तकको आजन्म कारागारमें रहना पड़ा। लेकिन इसके थोड़े ही दिनों बाद त्रस्त आयरिश लोग हथियार लेकर उठ खड़े हुए और ओनीलके वीरवंशमेंके सर फेनीम ओनीलको नेता बनाकर उन्होंने बस्तियोंका विध्वंस करके अपनी जमीनें फिर अपने अधिकारमें कर लीं और प्रोटेस्टेंट लोगोंको कतल किया (सन् १६४१ ई०)। अँगरेजीमें इसका नाम पोपिश विद्रोह रक्खा गया है, लेकिन यह विद्रोह धार्मिक कारणसे नहीं हुआ था; बल्कि आयरिश लोगोंने अकारण और व्यर्थ जमीनें जब्त कर लेनेका बदला लिया था। उत्तम अवसर मिलने पर नारमन लोगोंके विरुद्ध सेक्सन लोगोंने, स्पेनिश लोगोंके विरुद्ध डच लोगोंने और फ्रेंच लोगोंके विरुद्ध सिसिलियन लोगोंने जो कुछ किया था वही इस समय आयरिश लोगोंने अँगरेजोंके विरुद्ध किया था। आयरिश लोगोंके हाथसे निकली हुई जमीन उन्हें फिर वापस मिल गई, यह न्यायकी बात हुई। लेकिन पहले विद्रोह, जब्ती, दूसरे विद्रोह और उसे शांत करनेके लिए किये हुए तीव्र उपाय आदि सब व्यवहारोंमें दोनों पक्षोंने जो अमानुषिक कृत्य किये थे वे ईश्वरके घरमें कभी अच्छे नहीं समझे जा सकते। एक आदमी पहले भूल करता है। उसके लिए जब एकबार रक्तस्राव होता है तब फिर उसका बदला चुकाया जाता है और फिर उसका बदला लिया जाता है; और इस प्रकार जो परम्परा आरंभ होती

है वह कभी रुकती नहीं। अस्तु। इंग्लैण्डमें राज्यक्रांति होने पर चार्ल्स राजाकी खबर लेकर ओलीवर क्रामवेल आयरिश विद्रोहियोंकी ओर झुका (सन् १६४८ ई०)। उसने ड्राबेडा, ट्रेक्सफर्ड आदि स्थानोंमें आयरिश लोगोंको मनमाना कतल किया; हजारों आदमियोंको गुलाम बना कर अमेरिका भेजा; और हजारों आदमी आप-ही-आप देश छोड़कर फ्रांस, स्पेन और अमेरिका चले गये और वहीं पराये राजाकी नौकरी करके रहने लगे। राजा द्वितीय चार्ल्सके राजत्व कालमें (सन् १६६०–८५) आयर्लैण्डके दिन कुछ शांतिसे बीते। लेकिन द्वितीय जेम्सके राजत्व कालमें (सन् १६८५–८८) फिर अशान्ति फैली। अँगरेजोंने विद्रोह करके जब जेम्सको राजच्युत कर दिया तब वह फ्रांस भाग गया और वहाँसे थोड़ी बहुत कुमक लेकर आयर्लैण्ड पहुँचा। उस समय आयर्लैण्डमें टिरकानेल नामक कैथोलिक गवर्नर था। उसने राजाका आदर सत्कार करके उसे डब्लिनमें गद्दी पर बैठा दिया, उसके राजा होनेकी घोषणा करा दी; और उसके द्वारा आयरिश पार्लमेण्टकी योजना कराई। क्रामवेलने जिन लोगोंकी जमीनें जब्त की थीं; उन्हें इस पार्लमेण्टमें वे जमीनें लौटा दीं। लेकिन शीघ्र ही (सन् १६९० ई०) जेम्सके पीछे पीछे विलियम तृतीय आयर्लैण्ड पहुँचा और उसने बाइनके युद्धमें आयरिश लोगोंको तथा जेम्सके पक्षवालोंको परास्त किया। उस समय लिमरिकके किलेदार सार्सफिल्डने राजासे यह वचन ले लिया कि "प्रोटेस्टेंण्ट लोगोंकी तरह कैथोलिक लोगोंके साथ भी मैं समबुद्धिसे व्यवहार करूँगा" और तब संधि होकर युद्ध बंद हुआ। इसके बाद सार्सफिल्ड अपने बहादुर सिपाहियोंको लेकर फ्रांस चला गया। उसके पीठ फेरते ही अँगरेजोंको जरा भी भय न रह गया। लिमरिककी संधिकी सब शर्तोंको ताकपर रखकर विलियमके मंत्रियों और अधिकारियोंने रोमन कैथोलिक लोगोंकी जमीनें छीनकर

फिर प्रोटेस्टेंट लोगोंको दे दीं; और कैथोलिक लोगोंका मत-स्वातंत्र्य छीनकर उनके विरुद्ध कानून बनाने आरम्भ कर दिये। कहा जाता है कि तृतीय विलियम स्वभावतः उदार और बुद्धिमान् था; लेकिन वह अँगरेज प्रोटेस्टेण्ट लोगोंकी सहायतासे राजा हुआ था; इसलिए उसे अपनी सदसद्विवेक बुद्धिको तह करके रख देना पड़ता था। लिमरिक नगरका नाम लेते ही अब भी आयरिश लोगोंको उस विश्वासघातका स्मरण हो आता है जो अँगरेजोंने उनके साथ किया था और वे क्रोधके आवेशमें आ जाते हैं। विलियमके हाथसे प्रायः दस लाख एकड़ जमीनका सफाया हुआ। उसने कैथोलिक लोगोंकी जमीनें अपनी रखनी औरतोंसे लेकर अमीर उमराओं तकमें बाँट दीं। खुशामद बरामदके लिए जिन लोगोंको उसने पेंशन या इनाम देना चाहा उन सबको उसने आयर्लैण्डमें वसूल होनेवाले करमेंसे देना आरम्भ कर दिया। यही नहीं बल्कि उड नामक एक मानसपुत्रको उसने नये सिक्के चलानेतक की सनद दे दी। इस सनदके अनुसार प्रायः दस लाख रुपयोंके हाफ पेन्स और फार्दिंग बनानेके थे, और इन सब कामोंमें जो चार लाख रुपयेका नफा होनेको था वह स्वयं उड तथा विलियम राजाकी डचेस आफ केंडाल नामक एक रखनीको मिलनेवाला था। इन सब पाजीपनेके कामों पर डीनस्वीफ्टने अपने 'ड्रेपियरके पुत्र' नामक लेखमें बड़ी कड़ी आलोचना की। इसलिए भंडा फूट गया और ये काम नहीं हो सके।

कैथोलिक लोगोंके भयंकर कष्टोंका वास्तविक आरंभ तीसरे विलियमके राजत्वकालसे हुआ। इधर हिन्दुस्तानमें धार्म्मिक विषयोंमें अँगरेजोंने जो कुछ किया उसे देखते हुए यह माननेके अनेक सबल कारण हैं कि इतिहासकार उनके सहिष्णु होनेकी जो कीर्ति गाते हैं वह वास्तवमें बहुत ठीक है। इस बातमें भी संदेह नहीं कि, इस देशमें

इससे पूर्व जो पोर्चुगीज और डच आदि लोग आये थे उनके धर्म्म-सम्बन्धी व्यवहार और अँगरेजोंके व्यवहारमें जमीन आसमानका फरक है। लेकिन उनकी यह कीर्त्ति बहुत ही हालकी और केवल हिन्दुस्तानभरके लिए है । हिंदुस्तानभरमें उन्होंने धर्म्मसंबंधी बातोंमें कभी विरोध नहीं किया । सरकारी खजानेसे प्रजाका थोड़ा बहुत धन यद्यपि आज भी ईसाईधर्म्ममण्डलोंके पालनमें खर्च होता है तो भी पुराने देशी राजाओंकी चलाई हुई वृत्तियाँ और देवस्थान वे अभी तक चला रहे हैं। इस लिए धार्म्मिक विषयोंमें आयरिश लोगोंके साथ उनके राजकर्म्मचारियोंने जो अत्याचार किये थे उनकी कल्पना हम हिन्दुस्तान-वालोंको होना कठिन है। आयर्लैण्डमें धार्म्मिक विषयोंमें राजकर्म्मचा-रियोंने जो व्यवहार किया था वह सर्वथा गर्हणीय था। यदि धर्म्मा-न्धताके कारण फिरे हुए दिमागवाला कोई आदमी कुछ अत्याचार करे, तो उसकी बात निराली है। लेकिन राजकर्मचारियोंका अत्याचार-पूर्ण नियम बनाकर और कड़ाईसे उनका पालन करके प्रजाकी धार्म्मिक बातोंमें व्यर्थ बलप्रयोग करना बड़े ही लाँछनकी बात है। आयरिश लोगोंने अपने धर्म्म-मतकी बाँह कभी नहीं छोड़ी, और यद्यपि यह बात ठीक है कि उन्होंने कभी पोपका पक्ष लेकर और कभी रोमन कैथोलिक पंथीय अँगरेज राजाओंका पक्ष लेकर विद्रोह किये थे तथापि उक्त विद्रोहोंके शान्त होने, अपराधियोंको कड़ा दंड मिलने और शांति स्थापित होने पर भी उनके साथ जो अत्याचार हुआ वह बिलकुल व्यर्थ था। धार्म्मिक विषयोंमें आयरिश लोगोंके साथ व्यवहार करनेका अँगरेज राजकर्म्मचारियोंका जो सिद्धांत था उसका मुख्य हेतु यह था कि हरएक उपायसे आयरिश रोमन कैथोलिक लोगोंका दमन हो और उनका कोई आधार न बच रहे; और सब ओरसे विवश होकर वे प्रोटे-स्टैंट धर्म्म स्वीकार कर लें! इस दृष्टिसे उनके विरुद्ध समय समय पर

(सन् १६९२–१७२७ ई०) जो अनेक कायदे बने उन्हें ‘ पोपरी लाज ’ कहते हैं। उन सबका अभिप्राय नीचे लिखे अनुसार था।

इंग्लैण्ड और आयलैंण्डमें सब जगह ‘ प्राइमोजोनिचर ’ नियमके तत्त्वका प्रसार था। इस नियमके अनुसार पिताकी संपत्तिका, विशेषतः स्थावर संपत्तिका, मालिक केवल उसका बड़ा लड़का होता था। हम लोगोंके यहाँ ताल्लुकों और जागीरोंके लिए भी यही कायदा है। समाजकी दृष्टिसे देखते हुए इस प्रकारका निर्बंध होनेमें एक प्रकारसे लाभ ही है। लेकिन रोमन कैथोलिक लोगोंके लिए यह कायदा बदलकर निश्चय किया गया था कि, पिताकी सम्पत्तिके सब लड़के बराबर बराबरके मालिक हों और हर एकका हिस्सा अलग अलग बँट जाय। इस कारण जो घराने पहले धनसम्पन्न और बलाढ्य थे, उनके बराबर हिस्से पर हिस्से होते जाते थे और इससे प्रत्येक कुटुंब और व्यक्ति बराबर निर्बल और कंगाल होता जाता था। इस प्रकार जो कुटुंब निर्बल और निःसत्व किये जाते थे, उनके प्रधान पुरुषोंको जब कोई नई सम्पत्ति मिलती थी तब वहाँ भी यह अँगरेजी कायदा उनके मार्गमें अड़चन डालता था। क्योंकि इस नियमके अनुसार यह निश्चित हुआ था कि रोमन कैथोलिक लोगोंको वसीयतनामेके अनुसार विवाहमें, दहेजमें, या और किसी प्रकारके दानके रूपमें कोई सम्पत्ति न मिल सके। यदि वे लोग किसीको कर्ज देते तो उसके बदलेमें उसकी सम्पत्ति खरीद या रेहन नहीं रख सकते थे। रोमन कैथोलिक पिताके लड़केको या उसकी स्त्रीको अपने धर्म्मको बदल डालनेकी आज्ञा थी; यही नहीं बल्कि उस नियममें ऐसी भी योजना कर दी गई थी कि जिससे धर्म्म-परिवर्तन करनेसे उसको प्रत्यक्षमें कुछ न कुछ ऐहिक लाभ भी हो। जिस प्रकार पिताको अपनी सम्पादित की हुई सम्पत्तिमेंसे अपने लड़केको कुछ भी नहीं देकर घरसे निकाल देनेका अधिकार

है, उसी प्रकार आयर्लैण्डके रोमन कैथोलिक लड़कोंको भी यह अधिकार था कि वे अपनी प्राप्त की हुई सम्पत्ति अपने पिताको न दें। लड़केके प्रतिकूल होनेकी दशामें बापको अपनी सम्पत्ति बेचने या उस पर कर्ज चढ़ानेका अधिकार नहीं था। इसी प्रकार समय समय पर न्यायालयमें अपने पिता पर नालिश करके उसकी सम्पत्ति लिखा लेनेका भी लड़केको अधिकार था। और इस प्रकार लड़का अपने बापसे बलपूर्वक अपना हिस्सा ले सकता था। न्यायालयको इस बातका भी अधिकार था कि, वह अकारण ही इस बातका संदेह करके कि पिता अपनी सारी सम्पत्ति नष्ट कर देगा, उस संपत्तिको जब्त करके अपने अधिकारमें रखनेकी आज्ञा दे दे। यदि किसी प्रकार पिताकी सम्पत्ति बढ़ जाती तो उस दशामें यह समझा जाता था कि दावेका नया कारण खड़ा हो गया है और इसलिए लड़का अपने बापको फिर अदालततक घसीट सकता था। बाप यदि रोमन कैथोलिक होता और माँ अपना धर्म्म बदलती तो माँको इस बातका अधिकार होता था कि वह अपने लड़कोंको अपने पतिसे लेकर अपने पास रक्खे; और उन लड़कोंकी शिक्षा और पालन पोषण आदिके लिए बापकी सम्पत्तिमेंसे उसे मनमानी रकम मिलती थी। अपना धर्म्म परिवर्तित करनेके कारण स्त्री अपने पतिसे भरपूर खर्च माँगती और पाती थी। स्त्री चाहे कितने ही अपराध क्यों न करती, पर यदि वह पतिके असद्व्यवहारके कारण अलग रहना चाहती तो न्यायालयसे (पतिके नाम) उसे रोटी-कपड़ेका भरपूर खर्च देनेकी आज्ञा होती थी। इन सबसे मुख्य और मुद्देकी बात यह थी कि रोमन कैथोलिक लोगोंका न्याय प्रोटेस्टेंट लोगोंके द्वारा ही होता था !

इस कायदेके कारण रोमन कैथोलिक लोगोंको दूसरी जगहसे सम्पत्ति मिलनेकी तो आशा ही नहीं थी। रहा कामधंधा या रोजगार, सो उससे भी

धन प्राप्त करना उनके लिए कठिन था। क्योंकि उन्हें सरकारी नौकरी मिलनी तो एक प्रकारसे असंभव ही थी। सभी महकमोंमें उनके लिए रुकावट थी। यहाँतक कि वकालतसरीखे न्यायानुमोदित काम करनेकी भी उनके लिए आज्ञा नहीं थी। प्रोटेस्टेण्ट वकील और बैरिस्टरको इस बातकी शपथ खानी पड़ती थी कि मैं अपने पास रोमन कैथोलिक पंथका मुहर्रिर तक न रक्खूँगा। इस कायदेके मुताबिक रोमन कैथोलिक लोगोंके लिए निजकी पाठशालायें खोलकर शिक्षकका काम करनेकी भी मनाही थी; यहाँतक कि अपने तौर पर घरमें रोमन कैथोलिक शिक्षक रखना भी अपराध माना जाता था! और अगर रोमन कैथो-लिक लोग विदेश जाकर शिक्षा प्राप्त करना चाहते तो उसके लिए भी रुकावटका बंदोबस्त था। विदेशमें रहते समय, बिना जाने और नियमका ज्ञान न होनेके कारण भूलचूकसे भी यदि किसी पर रोमन कैथोलिक पंथकी पाठशालामें पढ़नेका अपराध प्रमाणित हो जाता तो उसकी सारी सम्पत्ति जब्त कर ली जाती थी। यदि कोई यह सोचता कि शिक्षा प्राप्त करनेके लिए एक बार देशत्याग करने पर सदाके लिए बाहर ही रहना पड़े तो हर्ज नहीं, पर शिक्षा अवश्य प्राप्त करना, तो यह भी नहीं हो सकता था। क्योंकि यदि किसीकी शिक्षा आदिके लिए कोई विदेशको धन भेजता तो उस पर मुकदमा चलता था। रोमन कैथोलिक पाठशालाओंमें पढ़ना जिस प्रकार अपराध था, उसी प्रकार ऐसी शिक्षामें द्रव्यकी सहायता करना भी अपराध था। ज्योंही खबर लगती थी कि कोई अपना लड़का पढ़नेके लिए विदेश भेज रहा है, त्योंही वह न्यायालयमें घसीटा जाता था और उससे जमानत माँगी जाती थी। यदि यह प्रमाणित हो जाता कि कोई लड़का परदेश गया है तो यह प्रमाणित करनेका भार उसके पिता पर रहता था कि वह विद्या पढ़नेके लिए विदेश नहीं गया है। यदि यह सिद्ध

हो जाता कि किसीने शिक्षाके लिए धन या हुंडी आदि विदेश भेजा है तो उसे कड़ा दंड दिया जाता था; और उसके विरुद्ध जो मनुष्य चुगली खानेवाला होता था, उस मनुष्यको जुरमानेकी रकममेंसे आधा इनाम मिलता था ! किसी भी देशमें हथियार आदि रखनेकी आज्ञा केवल धर्मके आधार पर अवलम्बित नहीं रहती। लेकिन आयर्लैण्डकी बात कुछ निराली ही थी। वहाँ रोमन कैथोलिक लोगोंमें पूर्ण शांति होने पर भी उन्हें अपने पास हथियार रखनेकी आज्ञा नहीं थी; और अधिकारियोंको इस बातका पूर्ण अधिकार था कि वे जब चाहे तब हथियार रखनेके संदेह पर उनके मकानोंकी तलाशी ले लें।

यह प्रजा-पीड़न इंग्लैण्डकी धर्म्मान्धताके कारण था, साथ ही उस धर्म्मान्धतामें व्यापारविषयक स्वार्थ भी मिल गया था। इन दोहरे पीड़नोंके कारण अठारहवीं शताब्दीमें आयरिश लोगोंकी दुर्दशाकी हद हो गई। देशमें परस्पर एक दूसरेको पानीमें देखनेवाले, दो वर्ग थे। उनमेंसे कैथोलिक लोगोंकी संख्या प्रति सैकड़े नब्बे और प्रोटेस्टेण्ट आदिकी प्रति सैकड़ा दस थी। लेकिन इन नब्बे प्रति सैकड़े लोगोंके हाथमें जोतने-बोने योग्य जमीनका केवल दशांश था और बाकी नव-दशांश उन दस प्रति सैकड़े-वालोंके हाथमें था। अर्थात् पहले वर्गके लिए तो जमीन पूरी नहीं होती थी और दूसरे वर्गकी समझमें नहीं आता था कि हम इतनी जमीनका क्या करें। आयर्लैण्डमें दलदलें बहुत हैं; इस लिए जबतक खेतोंमेंसे नहरें न निकाली जायँ तबतक उनमें फसल होना कठिन होता है। लेकिन यह था बड़े खर्चेका काम, और अगर कैथोलिक लोग कर्ज लेकर इसे किया चाहते तो उन्हें जमीन रेहन रखनेका अधिकार न था। वहाँकी जमीनमें आलू और सन खूब होता था; लेकिन आलूमें रोग लग जानेकी संभावना रहती है। अगर किसी बरस रोग लग गया तो पूरा अकाल ही समझिए। सनकी फसल बहुत अच्छी होती थी; लेकिन सन और उसके बने हुए कपड़ोंको

विदेश भेजनेमें बहुतसी रुकावटें थीं। जिन जमीनोंमें फसल नहीं हो सकती थी उनमें चारा होता था, अतः खेतिहर लोग गोरू पाल लेते थे और यदि उनके पास आवश्यकतासे अधिक गोरू हो जाते तो वे उन्हें बिकनेके लिए विदेश भेजते थे। लेकिन इससे इंग्लैण्डके खेतिहरोंकी हानि होती थी; अतः यह नियम बना दिया गया कि आयर्लैण्डसे गोरू इंग्लैण्ड न भेजे जा सकें। तब आयरिश लोग फालतू गोरू मारकर उनके सुखाये हुए मांसका व्यापार करने लगे। किन्तु जब इसमें भी रुकावट डाली गई, तब गोरू पालनेका काम छोड़ कर आयरिश लोग भेड़ें पालने लगे। शीघ्र ही वे लोग अच्छा ऊन तैयार करने लग गये; और देशमें ऊनी कपड़े बुननेके सैकड़ों कारखाने खड़े हो गये। यह देखकर अँगरेज व्यापारियोंका पेट फिर दुखने लगा। उन्होंने शिकायत करके सन् १६९९ में पार्लमेण्टसे कानून पास करा लिया और उसके अनुसार आयरिशलोगोंको ऊन या ऊनी कपड़े बाहर भेजनेकी मनाही हो गई; और उनका यह उत्कृष्ट और जगत्प्रसिद्ध व्यापार बैठने लगा। और और व्यापारोंके सम्बन्धमें भी यही बात हुई। कुछ दिनोंके लिए आयरिश जहाजोंका एक प्रकारसे बहिष्कार हो गया था और यह नियम हो गया था कि उन पर जो माल आवे वह इंग्लैण्डके किनारों-पर न उतरने पावे। यदि आयर्लैण्डवाले अन्य देशोंसे व्यापार करना चाहते तो वह भी नहीं कर सकते थे। क्योंकि आयर्लैण्ड और समस्त युरोपके बीचमें इंग्लैण्ड हाथ पैर पसार कर रास्ता रोके पड़ा हुआ है। इस लिए आयात और निर्गत दोनों प्रकारके व्यापारोंमें इंग्लैण्ड अड़चन डालता था और यह दशा हो गई थी कि बिना नियमोंका उल्लंघन और जबरदस्ती किये आयरिश लोग विदेशसे किसी भी प्रकारका व्यापार नहीं कर सकते थे। इंग्लैण्ड मानों ब्रिटिशराज्यके आगेका द्वार था, और आयर्लैण्ड उसके बादकी ड्योढ़ी; इस लिए व्यापारसंबंधी कानूनकी

सब बातें अँगरेजोंने अपने हाथमें कर रक्खी थीं। सभी व्यवहारोंमें आगेके दरवाजेवाले यजमानको ही लाभ होता था। इस विषयमें कानून बनाकर यहाँ तक सख्ती की गई थी कि आँगनमें रहनेवाले आयरिश राष्ट्रको इंग्लैण्डकी इच्छाके अनुसार ही चलना पड़ता था जिससे इंग्लैण्डकी एक कौड़ीकी भी हानि न हो। आयर्लैण्डमें पत्थरके कोयले आदि खनिज संपत्तिका पहलेसे ही अभाव है, इस कारण, यह देश अन्य प्रकारके उद्योगोंके लिए अनुकूल नहीं था और उसका सारा दार मदार केवल खेती पर था। लेकिन इंग्लैण्डने खेती और व्यापार दोनोंकी ऐसी दशा कर दी थी जिससे आयर्लैण्ड बिलकुल कंगाल हो गया। वास्तवमें यदि आयर्लैण्डके व्यापार आदिकी यथेष्ट उन्नति होने पाती तो आयरिश लोग धनवान् हो जाते और सम्पन्नताके कारण उनमें आप ही आप सन्तोष उत्पन्न हो जाता; लेकिन अँगरेज व्यापारियोंको अपने स्वार्थके आगे कुछ दिखाई ही नहीं देता। उनके तात्कालिक लाभकी ओर ध्यान देकर राजनीतिज्ञोंने भी आयरिश लोगोंके व्यापारमें हाथ डाला, और उन्होंने आयरिश लोगोंको यह सिखलाया कि तुमलोग जित हो और इस लिए यदि तुम्हारे जेता लोग किसी बातके लिए हठ करें तो तुम्हें उनका कहना मान लेना चाहिए। ऊपर कहा जा चुका है कि ब्रिटिश पार्लमेण्टने व्यापार-विषयक नियम बनाये थे, लेकिन बिना आयरिश पार्लमेण्टमें स्वीकृत हुए उन नियमोंका पालन होना असंभव था। इस लिए इंग्लैण्डके मंत्रिमंडलने आयरिश पार्लमेण्टको आज्ञा दी कि इन नियमोंको तुम चटपट स्वीकृत कर लो। वास्तवमें आयरिश पार्लमेण्टसे इन नियमोंको स्वीकृत करनेके लिए कहना उतना ही आश्चर्य्यजनक और क्रूरतापूर्ण था जितना किसी मनुष्यसे यह कहना कि तुम अपने गले पर अपने हाथसे छुरी रखकर आत्महत्या कर लो; लेकिन अँगरेजी मंत्रिमण्डलको यह आज्ञा देनेमें लज्जा नहीं मालूम हुई। इतना

ही नहीं, बल्कि आश्चर्यकी बात तो यह है कि आयरिश पार्लमेण्टने इस भयसे उस आज्ञाका अक्षरशः पालन भी कर डाला कि यदि हम इसे अमान्य करेंगे तो हमारे अस्तित्वमें ही बाधा आ पड़ेगी। यह विलक्षण और अमानुषी आज्ञा देते समय अँगरेजी मंत्रिमंडलने अपने सदाके नियमानुसार आयरिश पार्लमेण्टके मुँहमें एक शहद भरी उँगली भी लगा दी थी। अर्थात् उसने यह वचन दे दिया था कि यदि ऊनके व्यापारके प्रतिबंधक नियमको आयरिश पार्लमेण्ट स्वीकार कर लेगी तो हम सन और कपासके व्यापारको उत्तेजना और सहायता देंगे। इस शहद-लगी उँगलीको अमृत-रसकी उँगली समझ कर आयरिश पार्लमेण्टने अपने सामने आया हुआ यह जहरका प्याला किसी तरह मुँह बना कर पी लिया। लेकिन जहरने अपना पूरा पूरा काम किया और मंत्रिमंडलके वचनका अमृत बिलकुल निकल गया। आयरिश पार्लमेण्टने कानून बनाकर देशसे बाहर जानेवाले ऊनी कपड़ों पर इतना भारी कर लगाया कि जितना कर देकर कपड़े बाहर भेजनेमें कभी किसी प्रकारका लाभ हो ही न सके। इस प्रकार केवल शब्दोंसे ही नहीं बल्कि कार्य्यरूपसे भी आयरिश लोगोंने तो अपना ऊनका व्यापार अपने हाथसे बंद करके दिखला दिया; लेकिन प्रधानमंडलने इसका बदला चुकानेके लिए जो वचन दिया था, उसका पालन नहीं किया। उस वचनके अनुसार आयर्लैण्डके बने सन और कपासके कपड़ोंके व्यापारको उत्तेजना देना तो दूर रहा; उलटे इंग्लैण्डने स्काटलैण्ड तथा इंग्लैण्डके इन कपड़ोंके व्यापारियोंको धनकी सहायता देकर आयरिश व्यापारियोंके लिए एक नई सौत खड़ी कर दी। इसके अतिरिक्त स्वयं इंग्लैण्डमें बाहरसे आनेवाले कपड़ों पर भी इस ढंगसे कर लगाया गया जो आयर्लैण्डके लिए बहुत ही बाधक था। इंग्लैण्डने जो ये व्यापार-विषयक नियम बनाये थे वे धर्म्मविषयक नियमोंके समान ही अन्याय-

पूर्ण थे। यद्यपि आयर्लैण्डकी भूमिमें भौतिक संपत्ति तथा बहुमूल्य द्रव्य नहीं थे तथापि जो कुछ थे, यदि आयर्लैण्डवाले अबाधित रूपसे उन्हींका लाभ उठा सकते तो उनकी स्थिति साधारणतः बहुत अच्छी बनी रहती। आयर्लैण्डके चारों ओर समुद्रतट है और उसपर बहुतसे बंदर हैं। उसकी खाड़ियोंके अंदर भी बहुत दूरतक व्यापारी जहाज जा सकते हैं, और इंग्लैण्ड, फ्रांस, अमेरिका आदि देश वहाँसे बहुत दूर नहीं हैं, इस लिए इस छोटेसे देशके व्यापारियोंके लिए व्यापार करनेका सहजमें ही यथेष्ट अवसर मिल सकता था। लेकिन लगभग सन् १६६३ ई० से अँगरेज व्यापारियोंकी उस पर ऐसी कड़ी नजर पड़ी है कि वे कुछ नहीं कर सकते। जिस तरह धीवर अपने जालमें मछलीको चारों ओरसे घेर कर उसका हिलना-डोलना बंद कर देता है उसी तरह आगेके ३०—३५ वर्षोंमें ब्रिटिश पार्लमेण्टने कानून पर कानून बनाकर और अन्यायकी आवृत्तियों पर आवृत्तियाँ करके आयर्लैण्डके व्यापारियोंका कह बदकर और दिन दिहाड़े खून किया। डीन स्विफ्टने अपने एक लेखमें कहा है कि—" आयर्लैण्डमें इतने बंदर होने पर भी इंग्लैण्डने उन्हें न होनेके बराबर कर दिया था। एक सुझाखे आदमीकी आँखें मूँदकर, उसके कानोंमें ठेपी लगाकर, मुँहपर पट्टी चढ़ाकर और हाथ पैर बाँधकर कारागारमें बंद कर देनेसे जो दशा होती है, वही दशा इंग्लैण्डने आयर्लैण्डकी कर दी थी।" देशकी उपजाऊ जमीनके विदेशियोंके हाथमें चले जानेके कारण आयरिश प्रजा निःसत्व तो पहले ही हो चुकी थी; अब उस पर इन व्यापारविषयक नये नियमोंके बनजानेके कारण केवल ऊनके रोजगारसे उदरनिर्वाह करनेवाले प्रायः ५०००० कुटुम्बोंकी दुर्दशा हो गई। प्रजाके निर्धन हो जाने और केवल खेती पर ही उसके अवलंबित रहनेके कारण बार बार दुष्कालकी पीड़ा होने लगी, और प्रजामें कर देनेकी शक्ति न रह गई। सरकारी खजाना खाली होने लगा, इस लिए

लोकोपयोगी कामोंमें काट-कसर करना आवश्यक हुआ। सारे देशमें जिधर जाओ उधर उदासी ही दिखाई पड़ती थी। उस समयके जो लेख मिलते हैं उनसे पता चलता है कि विदेशी यात्रियोंको इस देशकी दशा देख कर क्षण भरके लिए यह शंका होजाती थी कि क्या वास्तवमें इस देशमें कहीं मनुष्योंकी भी बस्ती है ? इस देशके लोग धर्म्म और कानून आदिका नाम भी जानते हैं ? अठारहवीं शताब्दीके पहले दस बीस वर्षोंमें सनके व्यापारको फिरसे उत्तेजना देनेका थोड़ा बहुत प्रयत्न हुआ। लेकिन उस समय न तो देशमें इतना धन ही बच गया था कि कोई व्यापार अच्छी तरह खड़ा किया जाता और न किसीमें कुछ हौसला ही रह गया था। आयरिश पार्लमेण्टने सन् १७०३, १७०५ और १७०७ ई०में सर्वसम्मतिसे प्रस्ताव स्वीकृत करके लोगों पर प्रकट किया कि आयर्लैण्डके लोग केवल अपने ही देशके बने हुए कपड़े पहनें और अपने घरमें कोई ऐसा सामान न रक्खें जो आयर्लैण्डका बना हुआ न हो। क्यों कि स्वदेशी मालको उत्तेजना देनेसे गरीबोंका पेट भरता है और राजकीय दृष्टिसे उसमें राज्यका भी लाभ होता है। सन् १७०७ ई०में इस निश्चयके अनुसार स्वयं आयरिश पार्लमेण्टके सद-स्योंने खुले आम विदेशी मालका बहिष्कार करके कसम खाई, और यह कहा कि हम लोग तभी सच्चे आयरिश होंगे जब इस शपथका पालन करेंगे। उसी अवसर पर डीन स्विफ्टने देशकी वर्त्तमान स्थितिका ध्यान रख कर खूब तीव्र और कड़कड़ाते हुए लेख लिखे। आयर्लैण्डमें बहिष्कारका उपदेश उसीने आरंभ किया। वह जैसा विनोदी और विद्वान् था वैसा ही वेधक लिखनेवाला भी था, इस लिए उसके लेख अँगरेजोंको बहुत खटके। देशके लोगोंके स्वाभिमानको उत्तेजित करनेमें उसकी लेखनीने बड़ा काम किया। परन्तु इस प्रकारके प्रयत्नोंका तुरंत और पूरा पूरा उपयोग नहीं हो सकता और इसी लिए आयरिश

लोगोंको अठारहवीं शताब्दीके आरंभके २५–३० बरसों तक दरिद्रता-रूपी अग्निमें जलते रहना पड़ा। सन् १७२८ में शेरिडन नामक एक लेखकने लिखा था कि " आयरिश लोगोंकी दरिद्रताकी वास्तवमें पर-मावधि हो गई। उनके घरोंमें और कूड़ेखानोंमें कोई फर्क नहीं दिखाई देता। अपने गोरुओंके रक्त और खेतके कंद-मूल आदि पर ही उनका उदरनिर्वाह होता है।" अठारहवीं शताब्दीके प्रायः मध्यभागमें दरिद्रता, दुष्काल और ज्वर आदिकी भयंकर आपत्तियोंके कारण आयर्लैण्डकी प्रायः चार लाख प्रजा मृत्यु-मुखमें जा पड़ी। गाँवके गाँव उजाड़ और बे-चिराग हो गये। ऐसे अवसर पर जिन लोगोंके पास थोड़ा बहुत धन था वह उन्हींके लिए पूरा नहीं होता था; तब फिर वे उसमेंसे कहाँ-तक गरीबोंको सहायता देकर उनके प्राण बचा सकते थे। खेतीके काममें तो अँगरेज लोग कैथोलिक लोगोंके प्रतिद्वंद्वी थे ही, लेकिन व्यापार और शिल्प आदिके कामोंमें उन्होंने प्रोटेस्टण्ट लोगोंके भी पेट पर पैर रख दिया। बहुत ही साधारण बुद्धिका आदमी भी इस बातको अच्छी तरह समझ सकता था कि हमने प्रोटेस्टण्ट लोगोंको आयर्लैण्डमें सदाके लिए बसाया है, और उनके द्वारा कैथोलिक लोगोंको दबानेका हमारे पूर्वजोंका जो उद्देश्य था उसे सिद्ध करनेके लिए कमसे कम प्रोटे-स्टेण्ट लोगोंमें तो संतोष और समाधान रहना चाहिए। लेकिन कुछ समय जाने पर अँगरेजोंकी दृष्टि इतनी संकुचित हो गई कि कैथोलिक लोगोंकी तरह बसे हुए प्रोटेस्टेण्ट भी उन्हें शत्रुसे जान पड़ने लगे। इस प्रकार राजनीतिज्ञतापर द्रव्य-दृष्टि और स्वार्थसाधुताकी भारी तह चढ़ाकर अँग-रेजोंने आयर्लैण्डकी हितकी ओर तनिक भी ध्यान न दिया और जहाँ हाथ पड़ा वहीं आयरिश लोगोंको अत्याचार करके रगड़ डाला। इन सब कारणोंसे अठारहवीं शताब्दीके मध्यभागमें आयरिश लोगोंकी जितनी हीन दशा हो गई थी, उतनी हीन दशा इन सुधरे हुए और सभ्य

कहलानेवाले राजकर्त्ताओंके शासनके इतिहासमें और किसी भी राष्ट्रकी नहीं दिखलाई पड़ती।

लेकिन क्या व्यक्ति और क्या राष्ट्र जब किसीका दुःख चरम सीमा पर पहुँच जाता है तब यह निश्चय समझना चाहिए कि अब उसके सुखके उदय होनेका समय बहुत ही निकट आ गया है। "नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण" यह केवल अद्भुत कवि-कल्पना ही नहीं है, बल्कि संसारके नित्य प्रतिके अनुभवकी बात है। जगत्में स्थिति परिवर्त्तन करनेकी विधाताकी ऐसी विचित्र योजना है कि सुखका मूल दुःखमें और दुःखका मूल सुखमें छिपा हुआ होता है। प्राणी ज्यों ही जन्म लेता है, त्यों ही उसमें उसकी मृत्युको लानेवाले रोगका बीज भी उत्पन्न हो जाता है; और एक प्राणीकी मृत्युका अमंगल प्रसंग किसी दूसरे प्राणीके जन्मका सुमुहूर्त होता है। सुखदुःखात्मक स्थितिके ये परिवर्त्तन आपसमें एक दूसरेके साथ बिलकुल मिले जुले हुए हैं और उनके इस प्रकार मिले जुले हुए होनेके प्रमाण इतिहासमें बहुत-ही अच्छी तरह देखनेको मिलते हैं। आयर्लैण्डके लोगोंके साथ व्यवहार करते हुए केवल अपने हितका ध्यान रखकर अँगरेजोंने जो कानून बनाये थे, उनका परिणाम यह हुआ कि, निरुपयोगी होनेके कारण अंतमें उन्हें रद् करना पड़ा। यद्यपि पीड़ित होनेके कारण आयरिश लोग पिस गये थे, तो भी उनका सर्वस्व नष्ट नहीं हुआ और उलटे इससे उनमें राष्ट्रीयता उत्पन्न होनेमें सहायता मिली। यद्यपि पीडनके कारण सैकड़ों आयरिश कुटुंब घर छोड़कर विदेश चले गये और इसमें संदेह नहीं कि पहले इससे आयर्लैण्डकी प्रत्यक्ष हानि ही हुई; लेकिन जो लोग अपना देश छोड़कर फ्रांस और अमेरिका आदि देशोंमें चले गये थे, उन्हें वहाँ सुख मिला, अपने गुणोंके विकाशका यथेष्ट अवसर पाकर वे लोग धनवान् हो गये, वीरता तथा राजनीतिज्ञता आदि विषयोंमें अच्छा नाम पैदा करके

उन्होंने विदेशमें स्वदेशका मुख उज्वल किया और इससे भी अधिक महत्त्वकी बात यह हुई कि विदेशमें रहकर भी उन लोगोंने बराबर स्वदेशकी चिन्ता रक्खी; राष्ट्रीय स्वतंत्रताके संबंधमें स्वदेशके लोगोंको खुले दिलके उद्गार सुनाकर उन्होंने उनका धीरज कायम रक्खा; और अपने देशके सब प्रकारके आन्दोलनोंमें उन्होंने धनकी पूरी पूरी सहायता दी। देशत्याग करनेवाले आयरिश लोगोंकी कुछ दिनोंमें विदेशमें इतनी धाक बढ़ गई कि लोगोंको इस बातका भय होने लगा कि उनके कारण कहीं इंग्लैण्ड पर पर-चक्र न आ जाय—कोई विदेशी राजा इंग्लैण्ड पर आक्रमण न कर दे और देश अँगरेजोंके हाथसे निकल न जाय। फ्रांस और अमेरिकामें जो हजारों कैथोलिक जा रहे थे, वे वहाँ चुपचाप नहीं बैठे थे। राजा तृतीय जार्जके राजत्व-कालमें जब इंग्लैण्डका इन दोनों राष्ट्रोंके साथ वैर हुआ तब इंग्लैण्डको द्वेषके उन विष-वृक्षोंके फल चखने पड़े जो असंतुष्ट और दुःखी आयरिश कैथोलिक लोगोंने इन देशोंमें जाकर लगाये थे। अमेरिकामें अँगरेजी अमलदारीके विरुद्ध विद्रोह हुआ और अमेरिकन लोगोंने पूर्ण स्वतंत्र स्वराज्य स्थापित कर लिया (सन १७७६ ई०)। इस काममें आयरिश लोगोंने अमेरिकावालोंको खूब सहायता दी। जो लोग तीन चार पीढ़ीसे अमेरिकामें ही बसे हुए थे और जिन्हें वहाँ पूर्ण स्वतंत्रता तथा समान अधिकारका सुख अबाधित रूपसे मिला था, वे यदि अमेरिकाको ही अपनी दूसरी जन्मभूमि समझने लगें और उसके उद्धारमें सहायता दें तो इसमें आश्चर्य्यकी कोई बात नहीं है। लेकिन अँगरेजोंके विरुद्ध अमेरिकन लोगोंकी सहायता करनेमें आयरिश लोगोंका एक और भी हेतु था, और वह यह कि अमेरिकाका उदाहरण देखकर आयरिश लोग भी आयर्लैण्डमें स्वतंत्र होनेका उद्योग करें और अमेरिकन लोग कृतज्ञतापूर्वक उन्हें सहायता देकर मित्र-ऋणसे उऋण हों। अमेरिकामें स्वतंत्रताके लिए

युद्ध होनेके उपरान्त शीघ्र ही फ्रांसमें भी राज्यक्रान्ति हो गई और नेपोलियन बोनापार्टकी सेनामें बहुतसे आयरिश भर्ती हो गये। आयर्लैण्ड पर इन दोनों ही आन्दोलनोंका प्रभाव पड़ा।

देशमें रहकर जिन कैथोलिक लोगोंने 'पीनल कोड' का कष्ट भोगा था उनके मन उस कष्टके कारण कठोर और गंभीर हो गये थे। जिन कानूनोंके विषयमें यह समझा जाता था कि इनसे प्रजाको दहशत होगी उन कानूनोंने कुछ दिनों तक लोगोंको धैर्यकी ही शिक्षा दी; और कायदे-कानूनोंके विषयमें साधारणतः जो भीतिमूलक आदर उत्पन्न होना चाहिए था वह न होकर उसके स्थान पर लोगोंमें उससे घृणा करने और उसकी अवमानना करनेकी बुद्धि उत्पन्न हुई। न्यायमें सहायता देनेवाले कानूनोंके विषयमें जिस प्रकार आदर उत्पन्न होता है उसी प्रकार अन्यायमें स्पष्ट सहायता देनेवाले कानूनोंके प्रति अनादर होना भी स्वाभाविक ही है। आयरिश पीनल कोडका एक उद्देश्य कैथोलिक लोगोंको प्रोटेस्टण्ट बनाना भी था; लेकिन वह उद्देश्य पूरा नहीं हुआ; उलटे भावुक लोग दिन पर दिन कैथोलिक पंथके अधिक अभिमानी होने लगे और आगेसे और भी अधिक अपने धर्म्मगुरुओंके कहनेमें रहने लगे। यह धर्म्मनिष्ठा देखकर प्रोटेस्टेण्ट लोगोंके मनमें कैथोलिक लोगोंके प्रति आदर होने लगा और बहुतसे प्रोटेस्टेण्ट लोगोंने तो कैथोलिक पंथ ही स्वीकार कर लिया। धर्म्मोपदेशका कार्य करना पीनल कोडके अनुसार अपराध था; लेकिन कैथोलिक लोग अपने धर्म्मोपदेशकोंको प्राणसे भी बढ़कर समझने लगे। और सबसे बढ़कर मजेकी बात यह हुई कि जो प्रोटेस्टेण्ट लोग कैथोलिक लोगों पर चौकीदार या पहरेदार बनाकर बैठाये गये थे, स्वयं उन्हीं लोगोंके मनमें कैथोलिक लोगोंके प्रति सहानुभूति उत्पन्न हो गई। यद्यपि प्रोटेस्टेण्ट मतके सुसंस्कृत नेताओंको अपने धर्म्मका उचित अभिमान था, परन्तु साथ ही वे यह भी समझते थे कि

इस प्रकार अन्याय और अत्याचारसे धर्म्मपरिवर्त्तन करानेके नियम बनाना जैसा लज्जास्पद है, वैसा ही बलपूर्वक धर्म्म-परिवर्त्तन कराके लोगोंको प्रोटेस्टेण्ट बनाना उस धर्म्मके लिए भूषणप्रद भी नहीं है और न इस प्रकार उस धर्म्मका बल ही बढ़ सकता है। इसी विचारसे उन लोगोंने स्पष्ट रूपसे पीनल कोड पर टीका-टिप्पणी करना प्रारंभ कर दिया। प्राय: इन्हीं दिनों व्यापारसंबंधी कानूनों पर भी विचार होने लगा। व्यापारके कामोंमें प्रोटेस्टेंट लोगोंको कैथोलिक लोगोंकी आवश्यकता मालूम होने लगी और वे यह बात समझने लगे कि इंग्लैण्डके मत्सरमें हम दोनों समान रूपसे बलि पड़ रहे हैं। इस तरह प्रोटेस्टेंटोंमें यद्यपि रोमन कैथोलिक लोगोंके विषयमें सहानुभूति उत्पन्न हो गई थी तथापि आरम्भमें प्रोटेस्टेण्ट नेता-ओंमें इस विषयमें बहुत कुछ मतभेद था कि उन्हें सब प्रकारसे बंधन-मुक्त करके समान अधिकार दिये जायँ या नहीं। लार्ड चार्लमाट सरीखे राजनीतिज्ञ भी यह कहनेके लिए तो तैयार थे कि प्रोटेस्टेण्टों और प्रेस-बिटेरेनियनोंका भेद-भाव दूर कर दिया जाय और उन्हें समान अधि-कार दिये जायँ; लेकिन कैथोलिक लोगोंको अधिकार देनेके लिए वे भी तैयार नहीं थे। हाँ, ग्रटन सरीखे दूरदर्शी देशभक्तोंके मनमें यह बात अवश्य ही अच्छी तरह बैठ गई थी कि जब तक कैथोलिक, प्रोटेस्टेण्ट और प्रेसबिटेरेनियन, सबको नागरिकताके समान अधिकार न दिये जायँगे तब तक राष्ट्रीयताकी सच्ची कल्पना कभी पूर्ण नहीं हो सकती। वे सोचते थे कि मुट्ठी भर प्रोटेस्टेण्ट लोग स्वदेशमें कैथोलिक समाजको अपना शत्रु बनाकर अँगरेजोंसे कैसे जूझें-गे? राष्ट्रीयताका ठीक ठीक स्वरूप ग्रटनने अच्छी तरह समझ लिया था। उसे विश्वास था कि मनुष्यमें जहाँ राष्ट्रीयताकी कल्पनाका उदय होता है, वहाँ छोटे मोटे फुटकर भेद भाव स्वयं ही नष्ट हो जाते हैं। उस समय धीरे धीरे कई ऐसे प्रोटेस्टेण्ट नेता खड़े हो गये थे जो रोमन

कैथोलिक लोगोंको भी नागरिकताके समान अधिकार देनेके पक्षमें थे। प्रोटेस्टेण्ट और कैथोलिक दोनों ही पीनलकोड और व्यापारसंबंधी कानून रद् करानेकी आवश्यकता समझने लगे थे। लेकिन आयर्लैण्डकी पार्लमेण्ट बहुत ही कमजोर और असमर्थ थी। उसके सभी सूत्र मंत्रिमंडलके हाथमें थे। यहाँतक कि यह मंत्रिमंडल उस पार्लमेण्टसे आयरिश लोगोंके हितके विरुद्ध बातें भी करा लेता था। इस बातसे प्रोटेस्टेण्ट लोगोंके मनमें ग्लानि उत्पन्न हुई और उनका दृढ़ विश्वास हो गया कि आयर्लैण्डके इन दोनों वर्गोंके सभी सुख-दुःखोंका मूल आयरिश पार्लमेण्टकी परतंत्रतामें है। लेकिन पार्लमेण्टमें केवल प्रोटेस्टेण्ट लोग रहते थे; कैथोलिक लोगोंको उसके सभासद होनेका अधिकार ही नहीं था। फलतः पार्लमेण्टकी स्वतंत्रता स्थापित करनेकी जिम्मेदारी केवल प्रोटेस्टेण्ट लोगों पर ही पड़ी। इस प्रकार अठारहवीं शताब्दीके अंतमें आयरिश लोगोंके दुःखान्धकारके नष्ट होने और धार्मिक सहानुभूतिके अरुणोदयसे दिशाओंके प्रकाशित होनेका समय आ गया और राष्ट्रीय आन्दोलनका नेतृत्व आयर्लैण्डमें बसे हुए प्रोटेस्टेण्ट लोगोंके हिस्सेमें पड़ा। इस विलक्षण घटनाको देखकर ईश्वरके अघटित-घटना-पटुत्व पर जितना आश्चर्य्य किया जाय उतना थोड़ा है।

उस समय इंग्लैण्डको आयर्लैण्ड पर विदेशियोंका चक्र चल जाने और उसके हाथसे निकल जानेका इतना डर हो गया था कि उसके मनमें यह बात अच्छी तरह जम गई कि यदि स्वयं आयर्लैण्डके प्रोटेस्टेण्ट लोगोंकी सहायता न मिलती रहेगी तो केवल अँगरेजी सेना और जहाजोंकी सहायतासे विदेशियोंके आक्रमण रोकना और रोमनकैथोलिक लोगोंका विद्रोह शान्त करना असंभव हो जायगा। इस लिए अधिकारियोंने आज्ञा दी कि प्रोटेस्टेण्ट स्वयं-सैनिकोंकी पलटनें तैयार की

जायँ और इस आज्ञासे लाभ उठाकर प्रोटेस्टेंट लोगोंने अपने पचास हजार सैनिकोंकी एक अच्छी सेना खड़ी कर ली। उस समय इन स्वयंसेवक सैनिकोंके आंदोलनसे आयर्लैण्डको बहुत लाभ पहुँचा। वास्तवमें विदेशियोंके आक्रमणकी आशंका तो ठीक नहीं उतरी; लेकिन आयरिश प्रोटेस्टेण्ट लोगोंके मनमें यह समझकर कि, हम जब चाहें तब अपने ही देशमें पचास हजार स्वयंसेवकोंकी सेना एकत्र कर सकते हैं, स्वतंत्रतासंबंधी विचारोंका अंकुर सहजमें जम आया। प्रोटेस्टेण्ट लोग जिस प्रकार कैथोलिक लोगोंको अपने अधिकारमें रखना चाहते थे, उसी प्रकार अँगरेजोंकी अधीनतासे निकलकर स्वतंत्र होनेके भी वे इच्छुक थे। आयर्लैण्डमें आयरिश लोगोंकी जो एक पार्लमेण्ट थी, उसमें प्रोटेस्टेण्ट आयरिशोंकी ही अधिकता थी; अतः उन लोगोंकी इच्छा हुई कि हम अपनी पार्लमेण्ट स्वतंत्र करके अपना राज्य स्वयं चलावें और जिस 'पाइनिंगस एक्ट' के कारण अँगरेजी पार्लमेण्टको प्रधानता मिली थी उसे तोड़ दें। उन दिनों चार्लमांट, ग्रटन, फ्लड आदि राजनीतिज्ञ आयरिश पार्लमेण्टके नेता थे; इस लिए उन लोगोंने स्वयंसेवकोंकी सेनाका लाभ उठाकर आयरिश स्वतंत्रताके अधिकारका प्रश्न स्पष्ट रूपसे उठाया। अमेरिकाका ताजा उदाहरण आँखोंके सामने खड़ा चमकता था, इस लिए अँगरेजी मंत्रिमंडल आयरिश लोगोंका अधिकार अस्वीकृत करनेके रास्ते नहीं गया, और अंतमें सन् १७८२ में अँगरेजी पार्लमेण्टने निश्चय कर दिया कि आयरिश पार्लमेण्ट स्वतंत्र है और अपने देशके सभी राजकार्य स्वतंत्रतापूर्वक चलानेका उसे अधिकार है।

अनेक प्रकारसे आयरिश लोगोंके इतनी अवनत स्थितिमें पहुँचनेपर भी उनका पल्ला किस प्रकार भारी हो गया, इसके दो एक बाह्य कारण ऊपर बतलाये जा चुके हैं; लेकिन इस कार्य्यके भीतरी

कारण भी मनन करनेके योग्य हैं। उस समय आयरिश समाजके एक भागकी स्थिति यद्यपि शोचनीय थी, तथापि नेता होनेके योग्य समाज-का जो दूसरा भाग था, उसकी स्थिति अच्छी थी, और एक भागके अवनत स्थितिमें होनेके कारण, अच्छी स्थितिवाला उसका दूसरा भाग और भी अधिक स्पष्ट दिखलाई देता था। इससे कुछ ही पहले स्विफ्ट और बर्कले जैसे विख्यात लेखक और तत्त्ववेत्ता, तथा पार्नेल सरीखे कवि आयर्लैण्डमें हो गये थे। सुप्रसिद्ध हेनरी ब्रुक डब्लिन-में समाचारपत्रका काम करता था। डब्लिनका तत्त्वज्ञानप्रसारक मण्डल अपनी कीर्तिके शिखर पर इसी समय पहुँचा था। इसके अतिरिक्त सन् १७३१ और १७४४ के मध्यमें दो और विद्यावार्द्धिनी मंडलियाँ स्थापित हो गई थीं। उनमेंसे एकका नाम 'डब्लिन सोसाइटी' था। उसने आयर्लैण्डमें खेती, शिल्प और ललित कलाकी उन्नति करनेमें बहुत परिश्रम किया था। राज्यक्रांति होनेसे पहले जिस प्रकार सब तर-हका ज्ञान प्राप्त करनेकी अति उत्कट इच्छा फ्रांसके जनसमाजमें दिखलाई पड़ी थी, सन १७५० के लगभग प्रायः उसी प्रकारकी इच्छा आयरिश लोगोंमें भी दिखाई पड़ने लगी थी। अठारहवीं शताब्दीके पहले तीस चालीस वर्षोंमें आयर्लैण्डमें चित्रकलाकी भी अच्छा उन्नति हुई थी और उस समय लंडन-के चितेरोंमें एक आयरिश ही प्रधान था। गिरजों और मकानोंके बनानेका काम उन दिनों बेहद बढ़ गया था और उस पर आयर्लैण्डकी स्वदेशी शिल्पकलाकी छाप दिखाई पड़ती थी। तत्त्ववेत्ता बर्कले प्रायः उन्हीं दिनों बड़े जोरोंसे इस मतका प्रतिपादन करने लग गया था कि देशके शिल्प आदिको स्वावलंबनके तत्त्व पर बढ़ाना चाहिए, और आयरिश कारीगरीको दबानेवाले कानूनोंके रहते हुए भी उनमेंसे अपना सिर ऊपर उठाना चाहिए। लोगोंको उसका यह उपदेश पसंद भी आने लगा था। धार्म्मिक विषयोंमें यद्यपि कैथोलिक और प्रोटेस्टेण्ट लोगोंमें और उसी

प्रकार प्रोटेस्टेण्ट तथा प्रेसबिटेरेनियनोंमें फूट थी, तो भी शिक्षाके संबन्धमें सब लोगोंमें समान चिंता दिखाई देती थी।

आयर्लैण्डके राजकार्य्यका व्यय इंग्लैण्डके राजा उसीकी आयमेंसे करते थे। यह व्यय जबतक आयमेंसे ही निकलता आता था, तबतक उनमें आयरिश पार्लमेण्टको धता बतानेकी प्रवृत्तिका रहना साहजिक था। लेकिन जब यह व्यय वहाँकी आयसे बढ़ने लगा तब आयरिश लोगोंपर करका नया बोझ लादनेकी आवश्यकता पड़ने लगी। अबतक प्रायः यही होता था कि, जहाँतक हो सके पार्लमेण्टका अधिवेशन न किया जाय; पर अब वह बात जाती रही और उसके एकके बाद एक लगातार अधिवेशन होने लगे। क्योंकि उन दिनों आयर्लैण्डमें जबतक लोक-नियुक्त पार्लमेण्ट कोई कर नहीं लगाती थी तबतक उसका वसूल करना बे-कायदे माना जाता था। अर्थात् नया कर स्वीकार करना या न करना पार्लमेण्टके हाथका नियमानुमोदित अधिकार था। इस लिए अपनी स्थिति सुधारने और अपनी खोई हुई स्वतंत्रता फिरसे प्राप्त करनेके लिए इस अधिकारका राजाके विरुद्ध उपयोग करनेकी इच्छा पार्लमेण्टके सदस्यों और आयरिश राजनीतिज्ञोंके मनमें आप-ही-आप उत्पन्न होने लगी। इसके सिवाय आयरिश और अँगरेज लोगोंके बीचके स्वाभाविक हित-शत्रुत्वके या स्वार्थ-हानिके नये नये मुद्दे भी उनके ध्यानमें आने लगे। आयरिश लोग जो कर देते थे उसमेंका बहुत सा धन अनेक खाली बैठे हुए अँगरेजों या अँगरेज अधिकारियोंको पेन्शन या पुरस्कार-स्वरूप दिया जाता था। सरकारी ओहदों और बड़ी बड़ी तनख्वाहोंकी जगहोंके संबन्धमें हिन्दुस्तानियों और अँगरेजोंमें आजकल जिस प्रकारका झगड़ा चल रहा है, उसी प्रकारका झगड़ा अट्ठारहवीं शताब्दीमें आयर्लैण्डमें भी था। अँगरेज अधिकारियोंकी सत्ता बसे हुए प्रोटेस्टेण्ट लोगोंको बहुतसी बातोंमें अत्याचार और अन्याययुक्त जान पड़ने लगी।

वे यह समझने लगे कि इस सत्ताको नियंत्रित करना चाहिए और इस सम्बन्धमें झगड़नेके लिए कैथोलिक लोगोंको सुभीते देकर उनकी भी सहायता लेना आवश्यक है। दोनों पक्षोंके मनमें यह विचार आने लगा कि हम लोग एक ही नावमें हैं, इस लिए हमें नावमें बैठकर आपसमें नहीं झगड़ना चाहिए और दोनों धर्म्मोंके लोगोंको यह नाव खेकर अपने इष्ट और प्रिय स्वतंत्रताके किनारे तक ले चलनी चाहिए। इसी लिए उन दिनों कैथोलिक और प्रोटेस्टेण्ट दोनों ही धर्म्मोंके लोग राष्ट्रकी स्वतंत्रताके संबन्धमें समान उत्सुकतासे बोलने और लिखने लगे।

उन दिनों कुछ समयके लिए आयरिश राष्ट्रको उज्वल स्वरूप प्राप्त हो गया था। सन् १७८२ ई० में आयरिश पार्लमेण्टको स्वतंत्रता मिलनेके कुछ पहलेसे स्वतंत्रता मिलनेके दस पाँच बरस बाद तक आयर्लैण्डके यशकी दुंदुभी चारों ओर बजती रही। यद्यपि यह केवल क्षणभर ठहरनेवाली बिजलीकी चमक थी; लेकिन इसमें सन्देह नहीं कि उसने देखनेवालोंकी आँखोंमें चकाचौंध उत्पन्न कर दी थी। देशमें विद्या, कला, विचारोंकी उदारता, बंधुप्रेम, धैर्य्य, साहस और वक्तृत्व आदि सभी गुण एकही समयमें बहुत ही उन्नति पर आये हुए दिखलाई देते थे। सब इतिहासकारोंने उस समयका नाम 'ग्रटनकी पार्लमेण्ट' रक्खा है और वह यथार्थ भी है। ग्रटन किस ढंगका राजनीतिज्ञ था, यह बात पाठकोंको उसके उस चरित्रसे मालूम हो जायगी जो इस पुस्तकके दूसरे भाग—चरित्रमालामें दिया हुआ है। यहाँ इतना ही कहना यथेष्ट होगा कि उसके समान शुद्ध और तेजस्वी राजनीतिज्ञ स्वयं इंग्लैण्डमें भी बहुत थोड़े थे। इन दस वीस वर्षोंमें आयर्लैण्डके भाग्योदयकी जो लहर चारों ओरसे उठी थी उसके सिरपर ग्रटन एक तारेकी तरह चमकता था। और यदि उसकी बराबरीके नहीं तो प्रायः उससे कुछ ही कम फ्लड, हाकिन्सन, पानसनबी आदि नाम लेने योग्य राजनीतिज्ञ भी उस समय

आयरिश पार्लमेण्टमें थे। उधर ब्रिटिश पार्लमेण्टमें उस समय पिट और फाक्स आदि राजनीतिज्ञ थे। लोगोंको कुछ समयके लिए इस बातका भ्रम हो गया था कि ब्रिटिश पार्लमेण्टका तेज अधिक है या आयरिश पार्लमेण्टका। पार्लमेण्टके स्वतंत्र होनेपर उसका सुधार करना, अर्थात् देशके सभी वर्गोंकी प्रजाको समान रूपसे प्रतिनिधित्वका लाभ प्राप्त कराना, रोमन कैथोलिक लोगोंको प्रोटेस्टेण्ट लोगोंके समान अधिकार देना और देशकी साम्पत्तिक अवस्थाको उन्नत करनेवाले कानून जारी कराना, ये सब कर्तव्य आयरिश नेताओं पर स्वभावतः ही आनेवाले थे। ये काम प्रायः सोलह वर्षतक होते रहे। लेकिन इसी बीचमें कई ऐसी बातें उत्पन्न हो गईं जिनमें अँगरेज और आयरिश लोगोंके हितके संबंधमें विरोध था और आयरिश पार्लमेण्टके बहुतसे सभासद स्वार्थ-परायणताके कारण अँगरेजी मंत्रि-मण्डलके कहनेमें थे, इस लिए बहुत बखेड़ा होने लगा। स्वयंसेवकोंकी पलटनें तैयार हो चुकी थीं, इस लिए इंग्लैण्डके मनमें बराबर बना रहने-वाला भय उत्पन्न हो गया था। आयरिश लोगोंने पार्लमेण्टकी स्वतंत्रता माँगी और वह उन्हें दी गई। इस स्वतंत्रतासे लाभ उठाकर पहला काम उन लोगोंने यह किया कि व्यापारमें रुकावट डालने-वाले कानून तोड़ डाले। इसके बाद पार्लमेण्टका भीतरी सुधार होता, अर्थात् आयरिश मतकी प्रबलता होती और तब जिन अँगरेजोंको आजतक आनन्दसे आयर्लैण्डके धनसे पेट भरनेकी आदत पड़ गई थी उनके भोजन पर भी आक्रमण होता। धार्मिक स्वतंत्रताकी बातें लोग कहने ही लगे थे। ऐसी अवस्थामें आयर्लैण्डमें रहनेवाले अँगरेज अधिकारियोंको इस बातका डर होने लगा कि, स्वयंसेवकोंकी सेना अपनी तलवारके जोरसे जब जो जीमें आवेगा वही कर डालेगी। लेकिन खड्गदेवताका आह्वान जितना सहज होता है, उतना सहज उसका

विसर्जन नहीं होता। उस समय आयर्लैण्डमें अधिकारियोंने ही अपनी खुशीसे खड्गदेवताकी प्राण-प्रतिष्ठा की थी, अतः उसका विसर्जन करनेके लिए उस पर अक्षत चढ़ानेका साहस उन्हें एकाएक नहीं होता था। पर धीरे धीरे उनमें यह साहस आ गया और बाजारू स्वयंसेवक सैनिकोंका उत्साह भी कम हो गया। लेकिन खिंची हुई तलवार बिना रक्तका नैवेद्य पाये म्यानमें नहीं जाती। अतः आयर्लैण्डमें रक्तपात होनेका समय आ ही गया। उस समय वुल्फटोन नामक एक दृढ़ और साहसी देशभक्त युवकने यह सोचा कि आयर्लैण्ड पर अकारण अँगरेजी पार्लमेण्टका अधिकार रहना ही सब झगड़ोंकी जड़ है। जबतक यह जड़ न काट डाली जायगी तबतक न आयरिश पार्लमेण्टका सुधार होना सम्भव है और न उसकी स्वतंत्रताका पूर्ण रूपसे लाभ ही उठाया जा सकता है। इस विचारसे उसने 'युनाईटेड आयरिश मैन' नामक एक संस्था स्थापित करके अमेरिका और फ्रांसमें उसकी शाखायें खोल दीं और अंतको सन् १७८५ ई० में फ्रेंचोंकी सहायता लेकर विद्रोहका झंडा कर दिया और इस प्रकार आयर्लैण्डमें प्रजासत्ताक राज्य स्थापित करनेका बीड़ा उटाया। लेकिन यह विद्रोह समय पर ही शांत होगया, और यह मौका देखकर अँगरेजी प्रधान मंत्री विलियम पिटने आयरिश पार्लमेण्टके लोगोंको यथायोग्य पदवियाँ और नगद घूस देकर यह प्रस्ताव पास करा लिया, कि आयरिश पार्लमेण्ट तोड़कर अँगरेजी पार्लमेण्टमें मिला दी जाय। आयरिश पार्लमेण्ट पर पहलेसे ही पिटकी निगाह थी। वह उसे आस्तीनके साँपकी तरह त्रासदायक जान पड़ती थी। उसे तोड़नेके अवसरकी वह बड़े ध्यानसे प्रतीक्षा करता था। अभाग्यवश वुल्फटोनके विद्रोहसे उसे यह अवसर मिल गया। तथापि यह बात आवश्यक थी कि आयरिश पार्लमेण्ट आत्मघातमें प्रवृत्त होकर स्वयं अपने आपको विसर्जित करनेका प्रस्ताव पास

करे । क्योंकि इस प्रस्तावके पास किये विना नियमकी दृष्टिसे उस प्रस्तावका कुछ मूल्य ही नहीं था जो ब्रिटिश पार्लमेण्टने पास किया था । इस लिए कोई ऐसी कार्रवाई करना आवश्यक था जिसमें आयरिश पार्लमेण्टके ही लोग इस पक्षमें आ मिलें और उस आत्मघाती प्रस्ताव पर अनुकूल सम्मति दे दें । वास्तवमें यह बड़ा ही विकट प्रश्न था । लेकिन पिटने अंतमें उसको हल कर ही डाला । आयरिश उमराकी सभा हाउस आफ लार्ड्सके संबन्धमें उसे कोई चिन्ता नहीं थी । क्यों कि उसके सब सभासद पहलेसे ही उसकी मुट्ठीमें थे । केवल आयरिश हाउस आफ कामन्समें ही उसे बहुमत प्राप्त करना था, इस लिए उसके सभासदोंको उसने किसी प्रकारका लालच देनेमें जरा भी कमी नहीं की । उस समय सम्मतियोंका खूब नीलाम हुआ । पिटने जो काम हाथमें लिया था वह बहुमूल्य था, इस लिए जिसने अपनी सम्मतिका जो कुछ मूल्य माँगा, उसने उसे वही दिया । लेकिन केवल पार्लमेण्टमें ही बहुमत प्राप्त कर लेनेसे काम न चल सकता था; उसके लिए देशके लोकमतके अनुकूल होनेकी भी आवश्यकता थी, इसलिए रोमन कैथोलिक लोगोंको धार्म्मिक स्वतंत्रताका लालच देकर प्रायः आधे कैथोलिक नेताओंको उसने अपने वशमें कर लिया । और इस प्रकार सन् १८०० में आयर्लैण्डकी वह स्वतंत्रता जो अट्ठारह वर्ष पहले बहुत कुछ उसके पल्ले पड़ चुकी थी, दुर्दैवके पलटा खानेसे, नष्ट हो गई ।

उस समय यह युक्तिवाद उपस्थित किया गया था कि आज तक आयरिश लोगोंको जो दुःख भोगने पड़े हैं वे सब इन दोनों पार्लमेण्टोंके एक हो जानेसे नष्ट हो जायँगे, आयरिश लोगोंको अँगरेजोंके सब अधिकार मिल जायँगे और अँगरेजी पार्लमेण्टकी प्रत्यक्ष देखरेखमें उनकी खूब उन्नति होगी । लेकिन आगेके सौ वर्षोंका अनुभव इससे कुछ भिन्न ही प्रकारका प्रमाणित हुआ । यदि हम

इस बीचके अर्थात्, उन्नीसवीं शताब्दीके आयर्लैण्डके इतिहासको विशिष्ट आन्दोलनोंका इतिहास कहें तो कोई वाधा न होगी। पहले तीस वर्षोंमें जो मुख्य आन्दोलन हुआ वह रोमन कैथोलिक लोगोंको प्रोटेस्टेण्ट लोगोंके समान अधिकार दिलानेके लिए था; और सन् १८२९ ई० में प्रसिद्ध आयरिश देशभक्त डेनियल ओकानेलके परिश्रम-से उसमें सफलता हुई। इसके बाद रोमन कैथोलिक लोगोंकी स्थितिका सुधरना आरंभ हुआ और यह कहनेमें कोई हानि नहीं है कि सैकड़ों वर्षोंसे कैथोलिक और प्रोटेस्टेण्टका जो धर्म्ममूलक भेद आयर्लैण्डको कष्ट दे रहा था वह आज प्रायः नष्ट हो गया है। इसके उपरान्त दूसरा बड़ा आन्दोलन उस विपत्तिके निवारणके सम्बन्धमें था जो आयर्लैण्डकी सब जमीन प्रोटेस्टेण्ट जमींदारोंके अधिकारमें चले जाने-के कारण कैथोलिक लोगों पर आपड़ी थी। काश्तकारोंका लगान जो एकवार निश्चित हो चुका है, वही बरावर बना रहे और कभी बढ़ाया न जा सके; जब तक वे लगान देते रहें तब तक वे ही जमीनके मालिक समझे जायँ; केवल जमींदारोंकी इच्छाके कारण ही उनकी जमींदारी नष्ट न हो सके; वे लोग अपने खर्चसे जमीनमें जो सुधार करें उस सुधारके कारण लगान बढ़ाया न जा सके और यदि उन्हें जमीन छोड़नी पड़े तो उनके किये हुए सुधारके बदलेमें उन्हें हरजाना मिले, आदि आदि बातोंके लिए वह आन्दोलन था; और ये सब सुभीते अबतक नहीं हुए हैं, इसलिए वह आन्दोलन अभीतक जारी है। इन सबसे अधिक महत्त्वका आन्दोलन 'होमरूल' संबन्धी था। सन् १८०० से १८३० तक आयरिश पार्लमेण्टको स्वतंत्र करनेके लिए जो प्रयत्न हुआ था, वह विशेष उल्लेखयोग्य नहीं है। लेकिन जबसे आयर्लैण्ड इंग्लिश पार्लमेण्टकी देखरेखमें गया तबसे वह बरा-वर उसी तरह क्षीण होता जाता था जिस तरह कोई लड़का अपनी

सौतेली माँके हाथमें पड़जानेसे क्षीण होने लगता है। जब रोमन कैथो-लिक लोगोंको समान अधिकार देनेका बिल ब्रिटिश पार्लमेण्टमें पास हो गया तब डेनियल ओकानेलने आयरिश पार्लमेण्टका प्रश्न हाथमें लिया। इस विषयमें दस बारह वर्षतक लगातार आन्दोलन होता रहा और यह प्रश्न अनेक प्रकारसे ब्रिटिश पार्लमेण्टके सामने उप-स्थित किया गया, लेकिन फल कुछ भी न हुआ। ओकानेल तथा राष्ट्रीय पक्षके और और लोगोंको जेल जाना पड़ा (सन् १८४४ ई०); इतना ही नहीं, बल्कि ओकानेलके जरासी नीति बदलते ही उसकी जन्मभरकी प्राप्तकीहुई लोकप्रियता भी नष्ट हो गई। इस आन्दोलनको 'रिपीलका आन्दोलन' कहते हैं। यही आन्दोलन आगे चलकर सन् १८७४ से होमरूलके नामसे प्रसिद्ध हुआ। पहले लैण्ड लीग और फिर नेशनल लीग नामकी संस्था स्थापित हुई; आयर्लैण्डमें बहिष्कारकी धूम मच गई और बहुत दिनोंतक सब सत्ता लैण्ड लीगके अधिकारि योंके हाथमें रही। ब्रिटिश पार्लमेण्टमें जो आयरिश सभासद थे उन्हें रुकावट डालनेकी कुंजी मिल गई थी; उसीका उत्तम उपयोग करके उन-लोगोंने ब्रिटिश पार्लमेण्टमें इतना बखेड़ा मचाया कि अँगरेज लोग समझने लगे कि आयर्लैण्डको स्वतंत्र पार्लमेण्ट दे देना ही अच्छा है, पर यह नित्यका कष्ट अच्छा नहीं। होमरूलके आन्दोलनका सब श्रेय प्रसिद्ध आयरिशनेता पार्नेलको ही है। उसके उद्योग और कर्तृत्वके कारण ग्लैडस्टन सरीखे राजनीतिज्ञने भी यह प्रश्न हाथमें लेकर सन् १८८६ ई० में पहला होमरूल बिल पार्लमेण्टके सामने उपस्थित किया। आगे चलकर प्रायः सात आठ वर्ष तक होमरूलका प्रश्न पार्ल-मेण्टके सामने था; और सन् १८९३ ई० में हाउस आफ कामन्स-में होमरूल बिल पास भी हो गया। लेकिन हाउस आफ लार्ड्सने उसे अस्वीकृत कर दिया, इस लिए आयर्लैण्डको उससे कोई प्रत्यक्ष लाभ नहीं

हुआ। इसके उपरांत बहुत दिनोंतक यह प्रश्न योंही पड़ा रहा; पर इसके लिए आन्दोलन बराबर होता रहा। एक बार लार्ड डन-रेवनके आन्दोलनसे 'डिबोल्यूशन' अर्थात् अधिकार विभाजनके रूपमें होमरूलका थोड़ासा भाग फिर चर्चाके लिए उपस्थित किया गया था; लेकिन ऐसे अधूरे अधिकार लेना आयरिश लोग पसंद नहीं करते थे, इस लिए अधिकार-विभाजनका वह बिल लिबरल मंत्रि-मण्डलको लौटा लेना पड़ा। इसके उपरान्त आयर्लैण्डके सौभाग्यसे सन् १९०८ ई० में मि० एसक्विथ इंग्लैण्डके प्रधान मंत्री हुए। उन्होंने आयर्लैण्डको स्वराज्य देनेका विचार किया। लेकिन वे इस बातको अच्छी तरह समझते थे कि जबतक हाउस आफ लार्ड्सके अधिकार कम न किये जायँगे तबतक आयरिश होमरूल बिल पास न हो सकेगा। अतः हाउस आफ लार्ड्सके अधिकार कम करनेके लिए उन्होंने पहले सन् १९११ में वीटोबिल पास किया जिसके अनुसार यह नियम बन गया कि यदि कोई बिल हाउस आफ़ कामन्समें लगातार तीन दौरोंमें पास हो जाय और हरबार हाउस आफ़ लार्ड्स उसे अस्वीकृत कर दे तो केवल सम्राट्की स्वीकृतिसे ही वह कानून बन जाय। लेकिन इसमें शर्त्त यह थी कि पहले दौरेकी द्वितीय आवृत्ति और तीसरे दौरेकी तृतीय आवृत्तिमें दो वर्षका अंतर रहे। तदनुसार मि० एसक्विथने ११ अप्रैल सन् १९११ को हाउस आफ कामन्समें होमरूल बिल उपस्थित किया और उसके स्वीकृत होने पर हाउस आफ लार्ड्सने उसे रद कर दिया। दूसरे दौरेमें वह फिर कामन्समें पास हुआ और लार्ड्समें रद हुआ। तीसरी वार सन् १९१४ में फिर वही बिल हाउस आफ कामन्समें पास हुआ और वर्त्तमान युरोपीय महासमर छिड़नेके कुछ ही दिन बाद कानून बन गया। पर यूनियनिष्ट दलके संतोषार्थ जो आयरिश होमरूलका विरोधी था, सरकारने कह दिया कि अभी यह कार्य्यरूपमें परिणत न किया जायगा। इस प्रकार

" आसमानसे गिरा और ताड़ पर अटका, " वाली कहावत आयरिश होमरूलके सम्बन्धमें चरितार्थ हुई। तथापि इसमें सन्देह नहीं कि वे अपने उद्दिष्ट स्थानके बहुत ही समीप तक पहुँच चुके हैं।

उन्नीसवीं शताब्दीमें कोई बड़ा विद्रोह नहीं हुआ। वुल्फटोनके सन् १७९८ वाले विद्रोहके उपरांत उसकी मण्डलीके राबर्ट एमेट नामक एक व्यक्तिने सन् १८०३ में एक विद्रोह किया। पर उस विद्रोहका दमन हो गया और एमेटको फाँसी मिली। लेकिन आगे चलकर उन्नीसवीं शताब्दीमें आयर्लैण्डकी साम्पत्तिक स्थितिमें बहुत बड़े बड़े परिवर्त्तन हो गये। जबसे आयरिश पार्लमेण्ट ब्रिटिश पार्लमेण्टमें मिलाई गई तबसे लगभग पचास वर्षतक कर्म्मधर्म्म-संयोगसे आयर्लैण्डकी दशा एक प्रकारसे अच्छी ही दिखाई देती थी। इस बीचमें जन-संख्या बेहद अर्थात्, पचास लाखसे पचासी लाख तक बढ़ी। इसको आयर्लैण्डकी अच्छी स्थितिका प्रमाण बतलाया जाता है। लेकिन यदि जन-संख्याके साथ ही साथ उसके निर्वाहके साधन नहीं बढ़ते हैं तो भयंकर दशा आ उपस्थित होती है और तब देशकी वास्तविक स्थितिका पता चलता है। सन् १८०० से १८४५ तक आयरिश जन-संख्या बढ़ती रही, लेकिन इसी बीचमें गल्लेका भाव उतर जानेके कारण खेतिहरोंको घाटा होने लगा। इधर हाथकी मेहनतकी जगह यंत्रोंके आ जानेके कारण जुलाहोंकी रोजी भी मरने लगी। इतनेमें सन् १८४४–४५ से भयंकर अकाल पड़ना आरंभ हुआ। बढ़ती हुई लोकसंख्याका सारा आधार आलुओं पर ही था। आलूकी तरकारी, गौके दूध और सुअरके मांस पर ही आयरिश लोक-संख्या बातकी बातमें इतनी बढ़ गई थी। लेकिन आलूकी फसलमें रोग लग जानेके कारण वह तो गया ही, साथ ही खेतीकी सुदशापर अवलंबित रहनेवाली गौओं और सूअरोंका भी संहार हुआ। इस लिए लोकसंख्याका सारा अजीर्ण इतनी

जल्दी शांत हो गया कि फिर इस बातकी शंका होने लगी कि, आयर्लैण्डमें अब आदमियोंकी बस्ती बचेगी भी या नहीं । इस आपत्तिके कारण लोगोंके मन खिन्न और असंतुष्ट हो गये, और इसका मूल कारण उन्हें ब्रिटिश सरकार ही जान पड़ने लगी । दूसरी बात यह थी कि दोनों पार्लमेण्टोंको मिलानेके समय पिटने रोमन कैथोलिक लोगोंको धार्म्मिक स्वतंत्रताका जो वचन दिया था, ब्रिटिश पार्लमेण्टद्वारा उसके अनुसार कार्य्य होनेमें तीस वर्ष लग गये और इसके लिए धक्के भी खूब खाने पड़े । इस लिए ब्रिटिश राजनीतिज्ञोंके वचनपरसे आयरिश लोगोंका भरोसा उठ गया । इसी प्रकार इन दोनों राष्ट्रोंका संयोग करानेके समय लोगोंको यह समझाया गया था कि यदि यह संयोग हो जायगा तो आयरिश लोगोंपरसे करका बोझा कम हो जायगा; लेकिन वह बात भी नहीं हुई। उलटे करका बोझा प्रतिवर्ष बढ़ता ही गया और इंग्लैण्डका ऋण देखते हुए आयर्लैण्डके राष्ट्रीय ऋणकी रकम भी बहुत बढ़ गई । प्रायः दस वर्षमें इंग्लैण्डका कर तो प्रति सैकड़े केवल १७ बढ़ा, पर आयर्लैण्डका करीब करीब ५० के बढ़ गया ! तात्पर्य्य यह कि आयरिश नेताओंने अच्छी तरह समझ लिया कि चाहे जिस दृष्टिसे देखिए, यही कहा जा सकता है कि दोनों राष्ट्रोंके एक होनेसे आयर्लैण्ड सुखी नहीं हुआ। देशकी इस आपत्तिरूपी बारूद पर स्वतंत्रताकी इच्छाकी चिनगारी पड़ते ही धड़ाका हुआ; और लोगोंका जो यह ख्याल था कि आयर्लैण्डमें हर पचास बरसमें विद्रोह होता है, उसका एक और नया प्रमाण मिल गया । सन् १८४८ इतिहासमें राज्यक्रांतिके लिए बहुत प्रसिद्ध है । उस साल जब समस्त युरोपमें विद्रोह और राज्यक्रांतिकी धूम मची तब आयर्लैण्डमें भी उपद्रव हुआ । लेकिन उस बार भी कुछ तै नहीं हुआ। उसके उन्नीस बरस बाद अर्थात् सन १८६७ में केरी, लिमरिक

और टिपरारी आदि प्रान्तोंमें फुटकर विद्रोह हुए, लेकिन उनका भी कोई उपयोग नहीं हुआ । सन् १८५८ से आगे ३०-३५ बरस तक आयर्लैण्डमें 'फीनियन' पक्षके लोगोंने षड्यंत्र, मारकाट और हत्या आदिकी धूम मचा रक्खी थी और भय तथा असंतोष उत्पन्न कर रक्खा था। इस शताब्दीमें विद्रोह यद्यपि कम हुए, तथापि फुटकर राजकीय अपराध बहुत अधिक हुए । सैकड़ों आदमी फाँसी चढ़े और सैकड़ों कालेपानी भेजे गये । यों तो शांति और संतोष बहुत दिनोंसे आयर्लैण्डमें नहीं है, तथापि यह बात कम संतोषजनक नहीं है कि वर्त्तमान युरोपीय महासमरके समय भी केवल सेनफेनर्स-वाले सन् १९१६ के छोटेसे विद्रोहको छोड़कर और कोई भारी उत्पात नहीं हुआ। फिनियन लोगोंकी गड़बड़ शांत होनेपर सन् १८७२ के लग-भग आयरिश लोगोंको फिर पार्लमेण्टमें घुसकर स्वराज्यके लिए आन्दोलन करनेका हौसला हुआ और यह हौसला पंद्रह वर्ष तक रहा । लेकिन पार्नेल आदिका पन्द्रह वर्षका आन्दोलन व्यर्थ जानेके कारण लोक-मतने घड़ीके पेंडुलमकी तरह फिर उलटी गति ग्रहण की । सन् १८०१ में आयरिश पार्लीमेण्टके नष्ट हो जानेपर फिरसे उसकी प्राण-प्रतिष्ठा करनेके लिए सौ वर्षोंतक जो आन्दोलन हुआ था उसके विकल होने पर, निरुपाय होकर और अँगरेजोंके हाथसे अँगरेजी प्रजाके समान अधिकार और अपने देशके लिए पूर्ण न्याय पानेके काममें निराश होकर कुछ आयरिश लोगोंने स्वावलम्बके मार्गसे, अर्थात् जहाँ-तक हो सके सब ओरसे अँगरेजी राज्य पर बहिष्कारका दबाव डालकर अपने बल पर अपना साम्पत्तिक और राष्ट्रीय सुधार करने और राष्ट्रीय स्वतंत्रता प्राप्त करनेका प्रयत्न आरंभ किया। इन लोगोंको सेनफेनर्स कहते हैं । सन् १९१४ ई० में होमरूल बिलके पास हो जाने पर आगे दो वर्षतक जब आयरिश समस्याकी मीमांसा करनेकी कोई चेष्टा नहीं

की गई, तब अंतमें २५ अपरैल सन् १९१६ को इन 'सेन फेनर्स' लोगोंने आयर्लैण्डमें विद्रोह किया जिसमें सेना और पुलिसके १२४ जवान काम आये और ३९७ घायल हुए; और ७६४ विद्रोही मारे गये तथा आहत हुए। इनमें १३ आदमियोंको फाँसीकी और बहुतसे लोगोंको कैदकी सजा हुई। लेकिन पीछे सन् १९१७ के मध्यमें जब आयर्लैण्डको 'कनवेन्शन' देना निश्चय हुआ तब ये विद्रोही भी जेलसे छोड़ दिये गये। इस प्रकार इतने कष्ट झेलकर और इतने दिनोंतक निरंतर प्रयत्न तथा आन्दोलन करके, जैसा कि पहले कहा जा चुका है अब आयरिश लोग अपने उद्दिष्ट स्थानके बहुत ही समीपतक पहुँच चुके हैं और आशा की जाती है कि बहुत ही शीघ्र वे बिलकुल पूर्ण नहीं तो भी कुछ स्वतंत्रताका सुख अवश्य भोगने लगेंगे।

आयर्लैण्डके राष्ट्रीय आन्दोलन ।

पिछले अध्यायोंमें हमने आयर्लैण्डका प्राचीन और अर्वाचीन इतिहास बहुत ही संक्षेपमें दिया है। यदि राष्ट्रीयताकी मीमांसाकी दृष्टिसे देखा जाय तो मालूम होगा कि लगभग सत्तरहवीं शताब्दीसे यह इतिहास बहुत ही महत्त्वपूर्ण तथा मनोरंजक हो गया है। यह भी अच्छी तरह निश्चय हो जायगा कि बिना आन्दोलनके आयर्लैण्डको कभी कुछ भी नहीं मिला है और सत्तरहवीं, अठारहवीं और उन्नीसवीं इन तीन शताब्दियोंका आयर्लैण्डका इतिहास उस राष्ट्रकी प्रजाके किये हुए आन्दोलनोंका ही इतिहास है। ये आन्दोलन मुख्यतः चार उद्देश्योंसे किये गये थे। (१) धार्म्मिक स्वतंत्रता प्राप्त करनेका आन्दोलन; (२) खेतिहरोंको जमीन पर पुश्तैनी हक दिलानेका आन्दोलन; (३) होमरूल अर्थात् 'स्वतंत्र पार्लीमेण्ट' के द्वारा राष्ट्रीय स्वराज्य प्राप्त करनेका आन्दोलन; और (४) अँगरेजोंको हटाकर पूरी स्वतंत्रता प्राप्त करनेका आन्दोलन। इन चार उद्देश्योंसे किये हुए राष्ट्रीय आन्दोलनोंका क्या स्वरूप था, और उनमें क्या क्या हुआ, यह हम आगेके चार भागोंमें थोड़ेमें बतला देना चाहते हैं।

४ धार्मिक स्वतंत्रताका आन्दोलन।

आयर्लैण्डकी स्थितिके सुधारका प्रारंभ होनेके उपरांत आयरिश लोगोंको सन् १८२९ में अँगरेजोंसे एक बहुत बड़ी बातमें न्याय मिला; और आयर्लैण्डके वर्त्तमान इतिहासका विचार इसी बातसे आरंभ होता है। बात यह हुई कि पार्लमेण्टके कानूनके अनुसार रोमन कैथोलिक लोगोंका खुले-आम जो बहिष्कार किया गया था, उस बहिष्कारसे उनकी मुक्ति हो गई। इस भयंकर बहिष्कारका आरंभ पहले पहल आठवें हेनरी राजाके राजत्वकालमें हुआ था। इस राजाके राजत्व-कालमें इंग्लैण्डमें प्रायः रोमन कैथोलिक सम्प्रदायकी ही तूती बोलती थी। लेकिन उस समय तक आयर्लैण्ड पर इंग्लैण्डका पूरापूरा अधिकार नहीं हुआ था। अँगरेजी राजाओंमें-आठवें हेनरीने ही सबसे पहले पोपकी सत्ता हटाकर अपने राज्यमें प्रोटेस्टेण्ट धर्म्मका आरंभ किया, और इस नये धर्मके प्रचारके कारण 'सद्धर्म-संरक्षक' का पद धारण करके अँगरेजी राजपदको धर्म्म-गुरुके पदका जोड़ीदार बना दिया। कर्म्म-धर्म्मसंयोगसे इसी राजाके राजत्वकालमें आयर्लैण्ड पूर्ण रूपसे इंग्लैण्डकी अधीनतामें आया और हेनरीने आयर्लैण्डके राजाकी पदवी भी धारण की। यह काल सारे युरोपके इतिहासमें 'धार्मिक पीडन युग' के नामसे प्रसिद्ध है; और आयर्लैण्डके लोगोंके धार्मिक पीडनका और सामाजिक तथा राजकीय अवनतिका आरम्भ इसी समयसे होता है। तीसरे विलियमके राज्यत्वकालको अर्थात् सन १६९० से १७२० तकके समयको इस अवनितका मध्यकाल और सन् १७८० के लगभग समयको इस ग्रहणका मोक्षकाल समझना चाहिए। इस ग्रहणके स्पर्श-और मोक्षकालका अंतर (सन् १५४०से१७८० तक)प्रायः ढ़ाई सौ वर्ष है।

आयर्लैण्डके लोगोंका यह काल तरह तरहकी विपत्तियोंमें ही बीता। यदि इंग्लैण्डके लोगोंकी तरह उन लोगोंने भी प्रोटेस्टेण्ट पंथ स्वीकार कर लिया होता तो उनका इतिहास कुछ निराला ही होता; लेकिन भिन्न भिन्न मानसक्षेत्रोंमें धर्म्मबीजोंके अंकुर भिन्न भिन्न प्रकारके फूटते हैं। प्रोटेस्टेण्ट पंथका उदय पन्द्रहवीं शताब्दीमें हुआ। तबसे अबतक पाँच शताब्दियाँ बीत गईं, उसकी उन्नति ही होती जाती है। तथापि अब भी युरोपखंडके आयर्लैण्ड, फ्रान्स, स्पेन, पोर्त्तगाल, इटली और रूस आदि देशोंमें बहुधा रोमन कैथोलिक पंथ ही प्रचलित है। फ्रांस और आयर्लैण्डमें जिस प्रकार प्रोटेस्टेण्ट पंथके लोगोंकी हत्या हुई, उसी प्रकार हालैण्ड आदि देशोंमें कैथोलिक पंथके लोगोंकी हुई। इसके अतिरिक्त इस कालमें भिन्न भिन्न राष्ट्रोंमें कई धर्म्मद्वेषमूलक युद्ध भी हुए। लेकिन धर्म्ममतका मनुष्य मात्रके मन पर कुछ ऐसा विलक्षण अधिकार होता है कि वह कष्टों, अत्याचारों और प्राण-हानिसे भी नहीं उठता। आयरिश लोगों पर यह आक्षेप किया जाता है कि उनका मन चंचल होता है। लेकिन धर्म्मके संबंधमें उन्होंने आज तक अपने मनकी जो असाधारण दृढता दिखलाई है उससे यह आक्षेप निर्मूल सिद्ध होता है और ऊपरसे उनके मनकी जो चंचलता दिखाई देती है उसका कारण कुछ और ही होगा ऐसा जान पड़ता है। आयर्लैण्डमें सन १६३५—४० के लगभग प्रोटेस्टेण्ट लोगोंका प्रवेश आरंभ हुआ और तबसे कोई तीन शताब्दियों तक वहाँ कैथोलिक प्रजाका न्हास होता रहा—हजारों खानदान देश छोड़कर चले गये। इतना होने पर भी इस समय आयर्लैण्डमें सौमें प्रायः पचहत्तर आदमी रोमन कैथोलिक पंथके हैं। यदि कोई यह प्रश्न करे कि आयर्लैण्ड किन लोगोंका देश है, तो उसका उत्तर यही दिया जायगा कि, वह आयरिश रोमन कैथोलिक लोगोंका देश है। इन सब बातोंके होने पर भी केवल

धर्मके लिए अँगरेज प्रोटेस्टेण्टोंने और उनके हितके लिए इंग्लैण्डके राजकर्म्मचारियोंने दो सौ ढाई सौ वर्षतक रोमन कैथोलिक लोगोंको जो बेशुमार तकलीफें दीं उन्हें देखते हुए पुरानी पीढ़ीके अँगरेजोंकी न्यायबुद्धि पर बल्कि मनुष्यत्वके भाव पर भी जितना आश्चर्य्य हो वह थोड़ा है।

इसमें सन्देह नहीं कि केवल धर्मसंबंधी विरोध ही आयरिश लोगोंके पीड़नका प्रधान कारण था। लेकिन दूसरी यह बात भी ध्यानमें रखने योग्य है कि यदि अँगरेज प्रोटेस्टेण्ट लोग आयर्लैण्डमें बस न जाते और हिन्दुस्तानकी तरह दूरसे ही उस पर अधिकार चलाते तो आयरिश लोगोंको इतना कष्ट न पहुँचता। लेकिन आयरिश रोमन कैथोलिक लोगों पर सदा दबाव रखनेके लिए और उनके जरासा सिर उठाते ही तत्काल धौल मारकर उसे नीचा करनेके लिए शासकोंकी ओरसे किसी न किसीका आयर्लैण्डमें रहना भी आवश्यक था और इसी लिए वहाँ पर प्रोटेस्टेण्ट लोगोंको बसानेका विचार हुआ। यदि लोगोंको बसाया जाय तो उन बसनेवालोंके लिए जमीन चाहिए और जो लोग विदेशमें जाकर स्वदेशके हितके लिए परिश्रम करें उनके लिए तो और भी अधिक सुभीता चाहिए। इसलिए रोमन कैथोलिक लोगोंकी लाखों एकड़ भूमि उनसे छीनकर बसनेवालोंको दी गई; यह बात पहले ही कही जा चुकी है। जब इन बसनेवालोंकी दो तीन पीढ़ियाँ आयर्लैंडमें ही बीत गई तब उन्हें वही स्वदेशकी तरह जान पड़ने लगा। बसनेवालोंका पैर आयर्लैंडमें जमनेका वास्तविक और मुख्य कारण यही था कि उन्हें इंग्लैण्डके राजाका आश्रय था। लेकिन उन बसनेवालोंकी कृतज्ञता-बुद्धि शीघ्र ही नष्ट हो गई। और आयरिश कैथोलिक लोगोंके मुकाबिले में यद्यपि वे मुट्ठी भर ही थे तो भी वे लोग आयर्लैंडको अपनी जन्मभूमि तथा आयरिश लोगोंको अपना दास समझने लगे। यद्यपि पहले पहल

वे लोग अँगरेज राजाओंका अधिकार पूर्णरूपसे मानते थे, लेकिन ज्यों ज्यों समय बीतता गया त्यों त्यों वह अधिकार उनके लिए दुःसह होता गया; और उन्होंने यह ढंग निकाला कि जिस सीमा तक रोमन कैथोलिक लोगोंके विरुद्ध अँगरेजी राजाओंसे उन्हें सहायता मिलनेकी सम्भावना होती थी, उसी सीमातक वे उनका अधिकार मानते और उसे चलने देते थे। वे मुट्ठी भर प्रोटेस्टेण्ट लोग चाहते थे कि देशकी सारी सम्पत्ति और सत्ता हमारे ही हाथमें रहे, इस लिए उनके और शासकोंके हित-सम्बन्धमें विरोध उत्पन्न हो गया। एक म्यानमें दो तलवारोंका रहना असंभव है। यदि आयरिश कैथोलिक तथा बसनेवाले प्रोटेस्टेण्टोंमें झगड़ा रहता तो कैथोलिक लोग उन बसनेवालोंको देशसे निकाल देते, अथवा उन्हें नष्ट करके अपनी भूमि फिरसे अपने अधिकारमें कर लेते और तब यदि राजकीय अधिकार इँग्लैण्डके राजाके हाथमें रहता तो उससे उनकी विशेष हानि न होती। परन्तु वे ऐसा न कर सके; क्योंकि यद्यपि एक ओर कैथोलिक आयरिश लोग वहाँके आदिम निवासी और संख्यामें बहुत अधिक थे और दूसरी ओर बसनेवाले अँगरेज संख्यामें थोड़े थे, तथापि उनके पास भूमि बहुत अधिक थी; और इंग्लैण्डकी सम्पत्ति, सत्ता, बुद्धि, लोकमत, सेना और राजभय आदि सब कुछ उन्हींके पक्षमें था। ऐसी अवस्थामें रोमन कैथोलिक लोग अँगरेजोंको निकाल न सके और प्रायः दो सौ वर्षोंतक आयर्लैण्डमें खूब अंतःकलह मची रही। कैथोलिक लोग यद्यपि चारों ओरसे जकड़ दिये गये थे, तथापि उनके बुद्धि और स्वाभिमान आदि मनुष्यत्वको प्रगट करनेवाले गुण नष्ट नहीं हुए थे। इस लिए संख्यामें विषम लेकिन साधनों और शक्तियोंके कारण प्रायः समबलधारी ये दोनों पक्ष बराबर झगड़ते रहे।

यह बात पहले ही कही जा चुकी है कि आठवें हनेरीके

समयसे आयरिश लोगोंके विरुद्ध कानून बनना शुरू हुए थे। इन कानूनोंका जोर दूसरे चार्ल्सके राजत्वकालमें कुछ समयके लिए कम हुआ; लेकिन तीसरे विलियमके राजत्व कालमें उनका जोर बहुत बढ़ गया और उनके लिए अनेक नये बंधन भी हो गये। विलियमके राजत्व कालमें कैथोलिक लोगोंने विद्रोह किया। उनका नेता पैट्रिक सार्सफील्ड लिमरिक किले पर अधिकार करके खूब ही लड़ा, लेकिन उसे विवश होकर संधि करनी पड़ी और किला अँगरेज सेनापतिके सुपुर्द करना पड़ा। इस संधिमें खास बात यह तै हुई थी कि आयर्लैण्ड-की पार्लमेण्टके बनाये हुए कानूनोंसे जहाँतक विरोध न हो वहाँतक रोमन कैथोलिक लोगोंको खूब धार्म्मिक स्वतंत्रता दी जाय। इसके अनुसार, दूसरे राजा चार्ल्सके राजत्वकालमें उन्हें जितनी स्वतंत्रता प्रत्यक्ष रूपसे भोगनेके लिए मिली थी, कमसे कम उतनी ही स्वतं-त्रता इसके आगे भी मिलनी अवश्यक थी; और विलियमने वचन दिया था कि संधि होते ही पार्लमेण्टका अधिवेशन करके इसके सम्ब-न्धमें एक कानून स्पष्ट रूपसे पास करा लिया जायगा। इसी वचन पर सार्सफील्डको संधि करके हथियार रखने पड़े थे; और राजाके वचन पर विश्वास करके किला छोड़कर निकल जाना पड़ा था। हार अवश्य हुई; लेकिन केवल इस विचारसे उसका दुःख कुछ हलका हो गया कि इसमें सधार्मियोंको कुछ सुभीता तो मिला। लेकिन संसारके इतिहासमें ऐसे अनेक प्रसंग आये हैं जब राजाके वचन पानी पर लिखे हुए अक्षरोंके समान सिद्ध हुए हैं। यह प्रसंग भी उन्हींमेंसे एक था। सन् १६९२ में आयरिश पार्लमेण्टका अधिवेशन होते ही राजाके दिये हुए वचनके अनुसार सुभीतेके कानूनोंका पास होना तो एक ओर रहा, प्रोटेस्टेण्ट सभासदोंने कैथोलिक सभासदोंको दिक करनेकी एक नई युक्ति निकाली। उन्होंने बहुमतसे यह निश्चय कर लिया कि सभासद

लोग एक खास तरहकी शपथ किया करें। वह शपथ कैथोलिक लोगोंके लिए अत्यंत अपमानकारक थी, इस लिए लार्ड्स तथा कामन्स सभाओंके कैथोलिक सभासद् क्रोधके मारे सभास्थल छोड़कर चले गये। इसके उपरान्त सन् १६९५में वाइसराय कैपेलने पार्लमेण्टका अधिवेशन किया और लिमरिककी सन्धिमें कैथोलिक लोगोंको जो जो आश्वासन दिये गये थे पार्लमेण्टसे प्रस्ताव कराके एक एक करके उन सबको रद् कर दिया। इन प्रस्तावोंकी कृपासे शिक्षा, सेना तथा धर्म्मविभागसे कैथोलिक लोग एकदम निकाल दिये गये। जिस तरह एक एक करके कोई चीज बिलकुल चुन ली जाती है, अथवा जंगलमें शिकारी कुत्ते और बनरखे छोड़कर शिकारके सब जानवर नष्ट कर दिये जाते हैं, ठीक उसी प्रकार कैपेलकी पार्लमेण्टने ऐसे कायदे पास कर दिये जिनसे सामाजिक तथा राजकीय संसारमेंसे कैथोलिक लोग बिलकुल ही निकाले जा सकें। पहले तथा तीसरे जार्जके राजत्वकालमें इस प्रकारके कानूनोंकी भरमार हो गई और अठारहवीं शताब्दीके आरंभमें तो कैथोलिक लोगोंका बहिष्कार चरम सीमातक पहुँच गया। उस समय ये लोग लार्ड्स अथवा कामन्स सभाके सभासद् नहीं हो सकते थे; पार्लमेण्टके चुनावमें मत नहीं दे सकते थे; स्थल अथवा जलसेनामें नौकरी नहीं पा सकते थे; बाकायदा न्यायाधीश नहीं हो सकते थे; मजिस्ट्रेट अथवा म्युनिसिपैल्टीके मेम्बर नहीं हो सकते थे; ज्यूरी नहीं बनाये जा सकते थे; शेरीफ या यहाँतक कि पुलिसके तुच्छ सिपाही भी नहीं हो सकते थे! शिक्षा देना और प्राप्त करना दोनों ही उनके लिए मना था। शिक्षाके लिए वे लोग परदेश नहीं जा सकते थे। आज्ञाके अनुसार यदि वे प्रोटेस्टण्ट संप्रदायके गिरजोंमें न जाते तो उन पर हर महीने साठ पाउण्ड दण्ड किया जाता था! यदि किसी कैथोलिकको प्रोटेस्टेण्ट धर्म स्वीकार न होता और दो 'जस्टिस आफ़ दी पीस' चाहते तो आज्ञा दे सकते थे कि वह अपनी

सम्पत्ति अपने उत्तराधिकारियोंके नाम नहीं लिख सकेगा। यदि चार 'जस्टिस आफ दी पीस' चाहते तो वे प्रोटेस्टेण्ट धर्म्मके गिरजामें उपासना-के लिए जानेकी आज्ञाका पालन न करनेके अपराधमें चाहे जिस कैथोलिक-को जन्म भरके लिए देशनिकालेका दण्ड दे सकते थे। कैथोलिक धर्म्मोप-देशक यदि खुले आम धर्म्मोपदेश करते तो उनके लिए फाँसीकी सजा तो मानो रक्खी ही रहती थी; साथ ही उनकी जायदाद भी जब्त कर ली जाती थी! पहले एक स्थान पर बतलाया जा चुका है कि वहाँ जमीन देने-लेनेके सम्बन्धमें किस प्रकारकी रुकावटें थीं। यदि कोई प्रोटेस्टेण्ट यह सिद्ध कर देता कि किसी कैथोलिक जमींदारने उपजका एक तिहाईसे अधिक नफा स्वयं लिया है तो उस कैथोलिककी जमीन छीनकर उस प्रोटेस्टेण्टको दे दी जाती थी; यहाँ तककी यदि कोई प्रोटेस्टेण्ट स्नेह-भावसे या दया करके किसी कैथोलिककी गुप्त रूपसे और गुमनाम सहा-यता करता तो उसकी भी कैथोलिक लोगोंकी तरह ही दशा होती थी। पहले यह बात थोड़ी बहुत बतलाई जा चुकी है कि कैथोलिक लोगोंकी सामाजिक व्यवस्थामें कानूनोंकी कहाँतक अड़चनें थीं। उस समय रोमन कैथोलिक तथा प्रोटेस्टेण्ट लोगोंमें विवाहसंबंध होना सर्वथा ही असंभव था और यदि कोई अपने धर्म्मको बदल डालनेका कोई सच्चा अथवा झूठा कारण ही पेश करके तलाककी आज्ञा माँगता तो वह उसे अवश्य मिल जाती थी।

ऐसी अवस्थामें आयरिश लोगोंका राष्ट्र कैसे बन सकता था? लेकिन जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, कैथोलिक धर्मके अनुया-यियोंने विलक्षण दृढ़ता तथा एकानिष्ठा दिखलाई। सारी सामाजिक व्यवस्थाका मूल यह है कि नयी पीढ़ीको सावधानीसे शिक्षा मिलती रहे; परन्तु उस शिक्षाका भी ऐसा बहिष्कार किया गया था कि, उस पर एका-एक विश्वास नहीं किया जा सकता। यदि कहीं उड़ती हुई खबर भी

सुनाई देती कि किसी पाठशाला या गिरजेमें कैथोलिक धर्म्मका उपदेश हो रहा है तो वहाँ सिपाही लोग तत्काल ही जा पहुँचते थे। पाठशालाओं-की कुरसियों और गिरजोंके प्लेट फार्मों पर मारपीट हो जाना और रक्त-स्रावसे उन पवित्र स्थलोंका दूषित हो जाना तो उस समयकी बहुत ही सामान्य घटनायें थीं। लेकिन इन सब बंधनोंकी परवा न करते हुए कैथो-लिक लोग अपनी नई पीढ़ीको शिक्षा देनेका काम अच्छी तरह चलाये जा रहे थे । खुले आम पाठशाला खोलकर बैठना जोखिमका काम था, इसलिए सड़कके किनारेकी गलियों, पहाड़ियोंके बीचकी जगहों, गड्ढों और तहखानों, जंगलकी झोपड़ियों, टूटी हुई इमारतोंके बरामदों, यहाँ तक कि खेतके बाड़ोंमें भी; तात्पर्य्य यह कि जो एकान्त जगह मिल जाय वहीं, चुटकी बजाते पाठशाला खुलती और जरासा संदेह होते ही चुटकी बजाते बंद हो जाती थी। इस बीचमें जो समय मिलता था उसमें कैथोलिक धर्म्मके तत्त्व, राजनीति और सर्व साधारण शिक्षा-की बातें अपने शिष्योंको कैथोलिक गुरु उसी प्रकार चुपकेसे बतलाते थे, जिस प्रकार सेनामें एक दूसरेके पहरा बदलनेके समय संकेतका शब्द एक दूसरेके कानमें कहा जाता है; और इस प्रकार उन बातोंका जहाँ तहाँ प्रसार होता था। विद्यार्थी भी वैसे ही तैयार हुए थे। यह शिक्षाका काम गुरु और शिष्य दोनोंने मिलकर इतनी जल्द समाप्त न किया होता, तो नये कानूनोंके जारी होनेके कुछ दिनों बाद ही कैथोलिक लोगोंकी नई पीढ़ी अक्षरशून्य होगई होती। उनकी सामाजिक व्यवस्था-में भी खूब हस्तक्षेप किये गये। कानून बनाकर बहुत कुछ लालच दिखलाये गये तो भी कैथोलिक लोगोंके छोटे छोटे लड़कों और अज्ञान स्त्रियोंने भी प्रायः अपना धर्म्म नहीं छोड़ा और इस लिए कानूनोंके कारण कैथोलिक लोगोंको बाहर चाहे जितना कष्ट मिला हो पर घरमें उन लोगोंको सुख ही मिलता रहा!

पूरी अठारहवीं शताब्दी कैथोलिक लोगोंने इसी प्रकार बिताई। सन् १७५० के उपरान्त यह मालूम होने लगा कि प्रोटेस्टेंट लोगोंमें थोड़ीसी समबुद्धि आने लगी है। लेकिन यह कहनेका साहस उनमेंसे बहुत ही थोड़े लोगोंको होता था कि कैथोलिक लोगोंका यह बहिष्कार दूर कर दिया जाय। अठारहवीं शताब्दीके अंतिम पचीस वर्षोंमें आयर्लैण्डमें स्वदेशप्रीतिकी लहर आई और आयरिश पार्लमेण्टको स्वतंत्र करके उसका सुधार करनेकी महत्त्वाकांक्षा वहाँके प्रोटेस्टेण्ट राष्ट्रभक्तोंमें उत्पन्न हुई। यह बात पहले कही जा चुकी है कि प्रोटेस्टेण्ट नेताओंके सुसंस्कृत मनोंमें यह बात आने लगी थी कि कैथोलिक लोगोंको दासत्व तथा अंधकारमें रखकर स्वतंत्रता नहीं प्राप्त की जा सकती और सुधार नहीं हो सकता। इस कारण अन्य राजकीय विषयोंके साथ साथ सभाओं, समाचारपत्रों और कभी कभी पार्लमेण्टमें भी कैथोलिक लोगोंकी मुक्तिके संबंधमें चर्चा होने लगी।

जब सन् १७५० के लगभग आयर्लैण्डके प्रोटेस्टेण्ट लोगोंके मनमें धर्म्मसम्बन्धी सहिष्णुता उत्पन्न हो गई, तब कुछ समयमें अर्थात् सन १७६४ में कैथोलिक लोगोंको समान अधिकार देनेके संबंधमें सबसे पहला बिल आयरिश पार्लमेण्टके सामने उपस्थित हुआ। इससे सातवर्ष पहले अर्थात् सन् १७५७ में 'कैथोलिक कमेटी' नामकी सभा स्थापित हुई थी। यह बिल उसी कमेटीके उद्योग तथा आन्दोलनका फल था। इसके उपरान्त, जिन मार्गोंसे कैथोलिक लोग बंधनोंमें पड़ गये थे उन्हीं मार्गोंसे उनका खुलना आरंभ हुआ। सन् १७६३ में कैथोलिक लोगोंको जमीन रेहन रखकर ब्याज-बट्टेका काम करनेकी स्वतंत्रता देनेके लिए आयरिश पार्लमेण्टमें एक बिल उपस्थित हुआ। परन्तु पहले तो उस पर विचार करनेका काम एक सालके लिए मुलतवी कर दिया और फिर दूसरे साल वह नामंजूर कर दिया गया। इसके

आगेके तीन वर्षोंमें तामसी स्वभावके कैथोलिक और प्रोटेस्टेण्ट लोगोंमें कई जगहों पर मारपीट हो गई और इससे समाजमें बड़ी खलबली मची रही। 'फादर शीही' नामके एक कैथोलिक धर्मोपदेशकको प्रोटेस्टेण्ट लोगोंके सन्देह करने पर अन्यायसे फाँसी दे दी गई। लेकिन जब समाजने यह बात अच्छी तरह समझ ली कि उसे व्यर्थ फाँसी दी गई तब सन् १७६८ में कैथोलिक लोगोंका दुःख निवारण करनेके लिए आयरिश पार्लीमेण्टमें एक बिल पेश किया गया और वह सर्वानुमतसे पास हो गया। पर इंग्लैंडसे उसकी मंजूरी नहीं मिली। हाँ, रोमन कैथोलिक लोगोंसे जो शपथ ली जाती थी उसमें उनके धार्मिक विश्वासके अनुसार थोड़ासा फेरफार करनेके संबंधमें सन् १७७४ की पार्लमेण्टने एक बिल पास कर दिया। आगे सन् १७७५ के कानूनके अनुसार कैथोलिक लोगोंको ९९९ वर्ष तकके मियादी पट्टे पर जमीन लेनेका अधिकार मिला और निश्चय हुआ कि प्रोटेस्टेण्टोंकी तरह कैथोलिकोंमें भी पिछली पीढ़ीकी जायदाद अगली पीढ़ीको मिल सकती है। उसी साल ऐसे कई पुराने कायदे भी रद किये गये जिनके अनुसार पहले यह कैद थी कि कैथोलिक लोग अमुक स्थान पर रहें और अमुक स्थान पर न रहें, और उन्होंने जिस प्रकार शपथ खाई हो उसकी कैफियत अधिकारियोंके सामने दें। प्रोटेस्टेण्ट लोग पाँच पाउण्ड देकर चाहे जिस कैथोलिकका घोड़ा चाहें, खरीद लें, आदि आदि। एक दूसरे कायदेके अनुसार यह निश्चय हुआ कि यदि कैथोलिक लोग केवल अपने धर्म्मके लोगों भरके लिए ही निजकी पाठशालायें खोलकर अपने बच्चोंको शिक्षा दें तो कोई हर्ज नहीं है। सन् १७९२ में कैथोलिक लोगोंके आन्दोलनने बहुत जोर पकड़ा और जान कीओघ तथा वुल्फटोनके प्रयत्नसे निश्चय हुआ कि कैथोलिक लोगोंकी ओरसे सीधा राजाके पास एक डेपुटेशन भेजा जाय और प्रार्थना की जाय। इसके

उपरान्त उन्हें शीघ्र ही वकालत आदि करनेकी इजाजत मिली और कैथोलिक तथा प्रोटेस्टेण्ट लोगोंके विवाह होनेमें जो प्रतिबंध था वह टूट गया। जिस कानूनके अनुसार शिक्षा प्राप्त करनेके लिए कैथोलिक लोगोंका विदेश जाना रोका गया था वह भी तोड़ दिया गया। सन् १७९२ में कैथोलिक लोगोंकी एक बड़ी परिषद् हुई; और उसके द्वारा यह निश्चय किया गया कि इस समय जो फुटकर प्रयत्न हो रहे हैं उन सबको छोड़कर सारा पिनलकोड एक दमसे रद्द करनेके लिए प्रार्थना की जाय। सन् १७९३ ई० में राजा तीसरे जार्जने कैथोलिक लोगोंकी यह प्रार्थना सुनी और अगली पार्लमेंटके समय अपने भाषणमें इस बातकी शिफारिश की कि आयरिश पार्लमेण्टको कैथोलिक लोगोंकी इस प्रार्थना पर उचित विचार करना चाहिए। इसी साल आयरिश पार्लमेण्टने कैथोलिक लोगोंको स्थानिक स्वराज्यके चुनावमें मत देनेका अधिकार दे दिया और तबसे म्युनिसिपैलटियोंमें कैथोलिक लोग भी चुने जाने लगे। कुछ शर्तों पर अपने पास हाथियार रखनेकी आज्ञा भी उन्हें मिल गई। इसके उपरांत निश्चय हुआ कि उन्हें विश्वविद्यालयकी पदवियाँ दी जा सकती हैं और मेनूथ नामके स्थानमें कैथोलिक लोगोंका एक कालेज भी स्थापित हो गया।

परन्तु ग्रहणके छूट जानेमें अभी बहुत कसर थी। सरकारी अधिकारकी बड़ी बड़ी जगहें, ज्यूरियोंमें बैठकर न्याय करनेका अधिकार, पार्लमेंण्टके सभासद् होनेका अधिकार आदि अनेक बातें ऐसी थीं, जिन्हें कैथोलिक चाहते थे और जो अभी उन्हें नहीं मिली थीं। सन् १८०५ से १८२९ तक इन्हीं बड़े बड़े अधिकारोंके पानेके लिए कैथोलिक लोगोंका आन्दोलन होता रहा। सन् १८०७ में इस संबंधमें प्रार्थना आदि करनेके लिए कैथोलिक लोगोंने एक नई कमेटी बनाई। यद्यपि उसके कार्यमें बहुत दिनों तक सफलता नहीं हुई, तथापि इस कमेटीके प्रयत्नसे

इंग्लैण्डकी पार्लमेण्टमें उसी प्रकार आन्दोलन होने लगा, जिस प्रकार पन्द्रह वर्ष पहले आयरिश पार्लमेण्टमें कैथोलिक लोगोंके अधिकारके संबंधमें होता था। इसके उपरांत सन् १८२९ तक शायद एक भी बरस भी ऐसा नहीं बीता जिसमें प्रस्ताव, वाद-विवाद अथवा कानूनके मसौदे आदिमेंसे किसी न किसी रूपमें कैथोलिक लोगोंके प्रश्नोंकी चर्चा लोगोंमें न हुई हो। कैथोलिक लोगोंका पक्षपाती और अभिमान रखनेवाला कोई न कोई आयरिश सभासद् अथवा सहानुभूतिपूर्ण और उदारमतवादी कोई न कोई अँगरेज किसी न किसी रूपमें इन विषयोंकी चर्चा चलाता ही था। यद्यपि चर्चाओंमें झगड़े तथा उपद्रव भी मचते थे, लेकिन इनके कारण मुख्य प्रश्न पीछे नहीं हटता था, बल्कि एक एक कदम आगे ही बढ़ता जाता था। इस तरह अन्तमें कैथोलिक स्वतंत्रताके प्रश्नका आयरिश स्वरूप जाता रहा और वह अँगरेजी राजनीति तथा पक्षाभिमानका विषय बन गया।

जब आयरिश पार्लमेण्ट नष्ट हुई थी, तब प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ और राजमंत्री पिटने दोनों पार्लमेण्टोंको एक करनेके लिए आयरिश सभासदोंको जो अनेक लालच दिये थे, उनमेंसे कैथोलिक लोगोंको धार्मिक स्वतंत्रता देनेका वचन भी एक था। लेकिन तीसरे विलियमकी तरह पिटने भी विश्वासघात ही किया। दोनों पार्लमेण्टोंके एक होते ही पिटने अपना रंग बदला और वह कहने लगा कि मैंने जो वचन दिया था, उसका एकदम पूरा होना सम्भव नहीं, क्या किया जाय। लोगोंको दिखलानेके लिए उसने केवल यही कारण बतलाकर इस्तीफ़ा भी दे दिया कि मुझे वचनभंग करना पड़ा। लेकिन पिटकी अपेक्षा स्वयं राजा तृतीय जार्ज कैथोलिक लोगोंको स्वतंत्रता देनेका अधिक विरोधी था, इस लिए सन् १८०४ में जब फिरसे प्रधानमंडलका संगठन हुआ तब राजा जार्जने पिटसे इस बातका स्पष्ट वचन ले लिया कि मैं कैथोलिक

लोगोंकी स्वतंत्रताका प्रश्न फिर कभी उपस्थित नहीं करूँगा। यह वचन लेकर ही उसने प्रधान मंत्रीकी जगह पर उसको नियुक्त किया। प्रोटेस्टेण्ट पंथके कुछ कट्टर धर्मात्माओंने जब यह देखा कि यह स्वतंत्रताका प्रश्न अब शान्त नहीं हो सकता और इतने दिनोंसे हमारे हाथमें जो सत्ता थी उसका अंश कैथोलिक लोगोंके हाथमें जाना चाहता है, तब उन्होंने 'आरेंज सोसाइटी' नामकी गुप्त मंडलीका काम आरंभ किया। इस मंडलीका मुख्य हेतु यह था कि जिस तरह हो सके कैथोलिक लोगोंको कष्ट दिया जाय और उनके स्वतंत्र होनेके मार्गमें रोड़े अटकाये जायँ। सन् १७८८ में पहले पहल इस मंडली या सभाकी स्थापना हुई। इसके सभासदोंको इस प्रकार कसम खानी पड़ती थी—"मैं.........प्रतिज्ञा करता हूँ कि मुझसे जहाँ तक हो सकेगा वहाँ तक मैं कैथोलिक लोगोंका नाश ही करूँगा और जबतक राजा कैथोलिक लोगोंके प्रतिकूल रहेगा तभी तक उसका अधिकार मानूँगा।" इस सभाके सभासदों और कैथोलिक धर्म्मके लोगोंमें प्रायः नित्य ही झगड़े हुआ करते थे।

लेकिन सब बातोंका कभी न कभी अंत होता ही है। कैथोलिक लोगोंके दुःखोंका भी अब अंतिम समय आ गया था, इसलिए प्रतिकूल बातोंकी कुछ भी न चली और नदीके प्रवाहकी तरह दिन पर दिन यह न्यायका काम खूब जोर पकड़ने लगा। लोकमत तैयार करनेका काम कठिन होता है; लेकिन जब वह तैयार हो जाता है तब उसके मार्गमें कोई नहीं आता और यदि कोई आता है तो ठहरता नहीं। आरेंज सोसाइटीकी तरह कैथोलिक लोगोंकी भी 'कैथोलिक-प्रजा-दुःखनिवारक नामकी एक सभा बहुत दिनोंसे मौजूद थी। इस समय उसे आन्दोलन करनेकी प्रेरणा हुई और उसके प्रयत्नसे बहुत काम हुआ। कहा जाता है कि इसके आन्दोलनके पहले ही विलियम

पिटने कैथोलिक लोगोंको स्वतंत्रता देनेके सम्बन्धमें कानून बनानेके लिए एक मसौदा तैयार कर रक्खा था। लेकिन उसकी दृष्टिमें अभी-तक उसके लिए उपयुक्त समय नहीं आया था। उक्त कैथोलिक कमेटीने डब्लिनमें एक सभा करके एक प्रार्थनापत्र तैयार किया और प्रधानमन्त्री पिटके पास एक डेपुटेशन भेजना निश्चय किया। पिटने इस डेपुटेशनके लोगोंसे मिलकर बहुत ही गौरवपूर्वक और मीठे शब्दोंमें उत्तर दिया, कहा कि इस सम्बन्धमें पहले-से जो वचन तथा आश्वासन दिये गये हैं वे यद्यपि मुझे मान्य हैं और आप लोगोंके साथ यद्यपि मेरी पूर्ण सहानुभूति है, तथापि अभी उपयुक्त समय नहीं आया है; इस लिए इस विषयमें कुछ नहीं किया जा सकता। इस प्रकार निराश होने पर इस डेपुटेशनने विरुद्ध पक्षके नेता चार्ल्स जेम्स फाक्ससे भेंट की। फाक्सने सहायता करनेका वचन देकर यह वादग्रस्त प्रश्न पार्लमेण्टमें उपस्थित किया। इस पर खूब जोरोंका वाद-विवाद हुआ; लेकिन अन्तमें प्रचंड बहुमतके कारण फाक्सकी बात अस्वीकृत हुई। पार्लमेण्टमें उस समय ग्रटन भी आयरिश मेम्बरकी हैसियतसे उपस्थित था। लेकिन फाक्स और ग्रटन दोनोंकी ही कुछ न चली।

लेकिन लगभग इसी समयमें युरोपमें जो परिवर्त्तन और क्रांतियाँ हुई थीं उनका इस प्रश्न पर अच्छा प्रभाव पड़ा। दिसंबर सन् १८०५ में नेपोलियन बोनापार्टने आस्टर लिजकी लड़ाई जीती जिससे भय हुआ कि सारा युरोप उसके हाथमें चला जायगा और इंग्लैण्ड रसातलमें पहुँच जायगा। दूसरे वर्ष प्रधान मंत्रीके पदसे पिटने इस्तीफा दिया और इसके थोड़े ही दिन बाद उसकी मृत्यु हो गई। तबसे इस प्रश्नके अच्छे दिन आये। कैथोलिक लोगोंका हित-शत्रु पिट गिरा और उनका सच्चा मित्र फाक्स प्रधानमंडलमें घुसा।

उसका पहिला परिणाम यह हुआ कि आयरिश लोगोंको घृणाकी दृष्टिसे देखनेवाला वाइसराय लार्ड हारविक भी अपनी जगह छोड़कर इंग्लैण्डको लौट गया। उसकी जगह पर ड्यूक आफ वेडफर्ड वाइसराय हुआ। कैथोलिक लोगोंने उसके पास भी डेपुटेशन भेजा। उस समय उसने अपनी बातोंसे यह झलकाया कि कैथोलिक लोगोंकी स्वतंत्रता मिलनेका काम और सब तरहसे तो सिद्ध हो गया है; केवल राजाको अनुकूल करना बाकी है और यह फाक्सके हाथमें है। यदि फाक्स यह काम कर लेगा तो उन कष्टोंकी तपस्याका फल मिलनेमें एक दिनका भी विलंब नहीं होगा जिन्हें कैथोलिक लोग अब तक भोग रहे हैं। लेकिन राजा और फाक्समें इतनी अनबन थी कि फाक्सके लिए राजाको अनुकूल करना बिलकुल असंभव था। दूसरे वर्ष (सन् १८०६ई०में) फाक्सका शरीरांत हो गया और इस बातकी आशंका होने लगी कि कहीं रोमन कैथोलिक लोगोंकी स्वतंत्रताका प्रश्न उसके शरीरके साथ ही जमीनमें न गड़ जाय। चिन्ता होने लगी कि उसके बाद इस प्रश्नको कौन हाथमें लेगा। कैथोलिक लोगोंको स्वतंत्रता देना न्याय्य अवश्य था, लेकिन उसके बिना इंग्लैण्डके लोगोंका कौनसा काम रुकता था? वह अप्रिय बात थी, उस जलती हुई लकड़ीको हाथमें लेकर अपने शरीर पर चिनगारियाँ कौन उड़ावे? व्यर्थ ही अपने रहनेके घरमें आग कौन लगा ले? यही बात सारे अँगरेज राजनीतिज्ञ सोचते थे। एक मंत्रीने केवल यह समझकर कि जल तथा स्थल सेनामें कैथोलिक लोगोंका प्रवेश होनेसे कोई हानि न होगी इस सम्बन्धमें एक बिल उपस्थित किया। इस पर राजा जार्ज मन-ही-मन जल गया। लेकिन उसने किसी न किसी तरह, राजाका लिहाज न करके कामन्स सभामें उसे स्वीकृत करा लिया। पर उसे तुरंत ही इस्तीफा देना पड़ा। इसके बाद स्पेन्सर पार्सिवलको बुलाकर और उससे निश्चित वचन लेकर

राजाने उसे प्रधान मंत्री बनाया। इस प्रकार निराश होने पर भी कैथोलिक कमेटीने अपना प्रार्थना करने और लोकमत जागृत करनेका काम जारी रक्खा। अन्तमें कैथोलिक लोगोंको डेनियल ओकानेल नामक नेता मिल गया और सन् १८२९ में उसके द्वारा उन्हें पूर्ण धार्मिक स्वतन्त्रता प्राप्त हो गई। ओकानेल सरीखा नेता लोगोंको किसी शताब्दीमें एकाध ही मिलता है। उसका चरित्र इस पुस्तकके द्वितीय भाग चरित्रमालामें दिया गया है। यहाँ केवल इतना ही कहना यथेष्ट होगा कि ओकानेल सरीखे आन्दोलनकारी देशभक्तके नेतृत्व ग्रहण करने पर इस वादग्रस्त प्रश्नका रुख ही बदल गया। कुछ तो उसके गुणोंके कारण और कुछ समयके परिणामसे ओकानेलके इस प्रश्न पर केवल आयर्लैण्डमें ही नहीं बल्कि इंग्लैण्डमें भी हलचल मच गई। पार्लमेण्टके सभासद होनेसे पहलेही इंग्लैण्डमें उसकी बहुत कुछ कीर्ति फैल चुकी थी। सन् १८२८ में 'क्लेअर' नामक प्रांतकी ओरसे वह पार्लमेण्टका सभासद चुना गया। जब वह पहले पहल पार्लमेण्टमें बैठनेके लिए गया तब सारा सभास्थल उसे देखनेके लिए उत्सुक लोगोंसे भर गया था। पहले जिस अपमानास्पद शपथका उल्लेख किया जा चुका है, वह अबतक जारी थी; परन्तु ओकानेलने उस शपथके करनेसे इंकार कर दिया। इस पर बड़ा झगड़ा हुआ। पार्लमेण्टके अधिकारी उक्त शपथके किये विना उसे पार्लमेण्टमें बैठने नहीं देते थे और वह शपथ नहीं खाता था। इस विषयमें दो दिन तक खूब विवाद हुआ। ओकानेलने बहुतही प्रभावशाली व्याख्यान दिये; परन्तु व्यर्थ। शपथ न खानेके कारण उसे सभामें बैठनेकी आज्ञा न मिली और कहा गया कि क्लेअर काउंटीकी ओरसे और कोई सभासद चुना जाय। लेकिन आयर्लैण्डका लोकमत इस प्रश्न पर बहुत दृढ हो गया था, इस लिए क्लेअरके मतदाताओंने फिर भी ओकानेलको ही चुना। इसके उपरांत फिर कभी इस प्रश्नकी हार नहीं हुई, और दूसरे वर्ष

पार्लमेण्टने नियम बनाकर कैथोलिक लोगोंकी स्वतंत्रता छीननेवाले कानूनको सर्वांशमें रद् कर दिया और उन्हें अँगरेजी प्रजाजनोंके अधिकार दे दिये गये।

दो सौ वर्षोंतक कैथोलिक लोगों पर जो यह अत्याचार होता रहा उसका समर्थन किसी प्रकार नहीं किया जा सकता। फ्रूड आदि ग्रंथकारोंने पक्षपातके कारण इसका थोड़ा बहुत समर्थन करनेका प्रयत्न किया है, पर वह बिलकुल ही थोथा है। फ्रूड की सम्मतिके अनुसार इस प्रकारके कानूनोंका समर्थन दो तरहसे हो सकता है। एक तो यह कि अन्य देशोंके कैथोलिक लोगोंने प्रोटेस्टेण्ट पंथी लोगों पर भी इसी प्रकारका अत्याचार किया था। और दूसरे यह कि वह समय ही ऐसा असहिष्णुताका था। प्रोटेस्टेण्ट लोग सचमुच ही यह समझते थे--उनको पूरा विश्वास था कि कैथोलिक मत आसुरी या शैतानोंका धर्म्म है। लेकिन इन दोनों प्रकारके समर्थनोंका कोई अर्थ नहीं है। इस प्रश्नका विचार सुधारकी दृष्टिसे करना चाहिए और इस दृष्टिसे देखते हुए जो बात बुरी हो उसे बुरी ही मानना चाहिए। उस दशामें यह कारण विशेष उपयोगी नहीं हो सकता कि और कोई भी ऐसा ही करता है। हाँ एक कारण अवश्य कुछ युक्तिपूर्ण जान पड़ता है और वह यह कि सत्तरहवीं शताब्दीके अंतके विद्रोहोंमें कैथोलिक लोगोंने बहुत कुछ सहायता दी थी। प्रत्येक ही विद्रोहमें उनका कुछ न कुछ हाथ अवश्य रहा है। लेकिन एक तो कैथोलिक लोगोंके असंतुष्ट रहनेके कई कारण पहलेहीसे मौजूद थे जैसे कि उनकी भूमिका हरण किया जाना आदि; और वे लोग जो विद्रोह करते थे वह प्रोटेस्टेण्ट लोगोंकी शत्रुताके कारण नहीं, बल्कि अपनी खोई हुई भूमि प्राप्त करनेके अभिप्रायसे करते थे; इस लिए अधिकसे अधिक यही कहा जा सकता है कि, उनकी जो जमीन छीनी गई थी, उसीका बदला चुकानेके लिए वे विद्रोह करते थे। इसके अतिरिक्त

यह बात भी ध्यानमें रखनी चाहिए कि जिन कानूनोंकी सहायतासे प्रोटेस्टेण्ट अँगरेज लोग कैथोलिक लोगोंको अपने वशमें रखना चाहते थे उन कानूनोंके द्वारा शरीरमें प्राण और मनमें तनिक भी मनुष्यत्व रहते हुए असंतोष घट नहीं सकता था बल्कि उलटे उसका बढ़ना ही स्वाभाविक था; और अंतमें आयर्लैण्डमें यही बात सत्य ठहरी।

कैथोलिक लोगोंको धार्मिक स्वतंत्रता मिलनेके उपरांत उसके साथ ही साथ धर्म्म-मत-मूलक एक और प्रश्न उपस्थित हुआ। आयर्लैण्डमें आठवें हेनरीके राजत्वकालसे प्रोटेस्टेण्ट धर्मोपदेशकोंका प्रवेश हुआ था, और तभीसे उन्हें सरकारकी ओरसे तनख्वाहदार जगहें दी जाती थीं। लेकिन बिशप आदि प्रतिष्ठित धर्माधिकारियोंका निर्वाह प्रधानतः जमीन-की पैदावार पर ही अवलंबित था। उन्हें और उनके गिरजोंको बड़ी बड़ी जमीनें मिली हुई थीं। और और जमींदारोंकी तरह उन्हें भी उचित था कि वे अपनी जमींदारीमें रहकर जमीनका सुधार करते और स्वयं सुखसे रहते; पर वे लोग ऐसा नहीं करते थे और जहाँ जीमें आता था वहाँ रहते थे। आयर्लैण्ड छोड़कर वे इंग्लैण्डमें ही अकसर रहते थे और अपनी जमींदारीकी देखरेखका काम गुमाश्तों पर छोड़ देते थे। बिशपसे नीचे दर्जेके 'रेक्टर' 'विकर' आदि उपदेशकोंका निर्वाह टाइथ नामक करसे होता था जो गाँवके काश्तकारोंसे वसूल की जाती थी। इस करको वसूल करनेके लिए गाँव गाँवमें अधिकारी नियुक्त थे, जिन्हें प्राक्टर कहते थे। ये भी एक प्रकारके गुमाश्ते या दलाल ही होते थे। ये काश्तकारोंसे टाइथ वसूल करके रेक्टरकी निश्चित रकम पूरी कर देनेके मानों ठेके-दार थे। इस प्रकार खास मालिक बिशप और जमीन जोतनेवाले कैथोलिक खेतिहरोंके बीचमें तीन चार सीढ़ियाँ रहती थीं। खेतिहरोंको जब बिशपके भी कभी दर्शन नहीं होते थे तब इससे ऊँचे दर्जेके धर्म्मोपदेशकोंके दर्शनोंकी तो बात ही क्या कही जाय। सिर्फ उनके

नाम पर प्राक्टर, प्राक्टरोंके नाम पर ठीकेदार, और ठीकेदारोंके नाम पर शिकमी ठीकेदार जमीनकी उपजका अंश और गिरजोंका कर उगाहनेके पूरे पूरे मालिक थे। यदि वसूलीका काम ठीके पर दे दिया जाय तो उसमें अन्याय और अत्याचार होना स्वाभाविक ही है। एक तो रेक्टर विकर आदिकी निश्चित रकम पूरी करनेकी जवाबदेही ठीकेदारों पर थी जिससे उन्हें काश्तकारों पर सख्ती करनी पड़ती थी, दूसरे उन्हें अपनी जेब भरनेकी चिन्ता रहती थी; और तीसरे उनके ऊपर कोई देखने-सुनने-वाला भी नहीं होता था, इससे उनका अत्याचार चरम सीमा तक पहुँच जाता था। टाइथ कर प्रायः गरीब काश्तकारों पर ही पड़ता था; और यदि वे उसे समय पर न दे सकते थे तो उनसे मनमाने कागज लिखा लिये जाते थे और तब वे ठीकेदारोंके सदाके लिए गुलाम बन जाते थे। ठीकेदार जिस बेगारमें चाहते थे उन्हें उसीमें धर घसीटते थे। वे मुफ्तमें उनकी जमीन जोत देते थे और रुपयोंकी अदायगीसे बचने और उन्हें प्रसन्न रखनेके लिए विवश होकर हर तरहका अपना अपमान सहते थे।

इस प्रकार ऊपरसे नीचे तक यह धर्मोपदेशकमण्डल गरीब खेतिहरोंसे अत्याचारपूर्वक उगाहे हुए कर पर पाला जाता था। लेकिन इससे भी अधिक अन्यायकी बात यह थी कि जिन खेतिहरोंसे यह कर उगाहा जाता था वे अधिकांशमें रोमन कैथोलिक पंथके थे और ये उपदेशक लोग प्रोटेस्टेण्ट पंथके। अर्थात् एक पंथके धनसे दूसरे पंथके धर्मोपदेशकोंका निर्वाह होता था। वसूलीकी सख्तियों और अत्याचारोंकी अपेक्षा करदाताओंको यह बात और भी अधिक चिढ़ाती तथा दुःखी करती थी। जब कैथोलिक काश्तकार देखते थे कि 'टाइथ' करके धनसे धर्मोपदेशक लोग प्रोटेस्टेण्ट पंथका ही उपदेश करते हैं और प्रोटेस्टेण्ट-पंथी उपासना-मन्दिरोंका ही खर्च चलाते हैं तब उनके कलेजेमें

यह बात तीक्ष्ण काँटेकी तरह छिद् जाती थी । इस अन्यायपूर्ण करकी एक एक पाई देते समय वे यही समझते थे कि हम अपने शरीरके रक्तकी एक एक बूँद पाप-कर्म्ममें लगानेके लिए दे रहे हैं । बिशपों, रेक्टरों और विकरों आदिने बड़े बड़े गिरजे बनवा रक्खे थे और उनमें सब तरहके सामान सजा रक्खे थे; लेकिन प्रार्थनाके समय देखिए तो वे बिलकुल खाली पड़े हैं । धर्म्मोपदेशकको नियमानुसार अपने समय पर खड़े होना पड़ता था, पर प्रायः ऐसा होता था कि उसके सामने यदि एक आध श्रोता हुआ तो हुआ और नहीं तो वह भी नदारत । सख्तीके कारण यद्यपि लोग धन तो दे देते थे लेकिन प्रार्थना-मन्दिरोंमें प्रार्थना सुननेके लिए वे जबरदस्ती नहीं भेजे जा सकते थे । इन बढ़िया पर सुनसान मन्दिरोंके आसपास एक और ही चमत्कार दिखाई पड़ता था । अर्थात् प्रोटेस्टेण्ट गिरजा तो सूना पड़ा रहता था, पर पास ही देखिए तो खुले मैदानमें सैंकड़ों हज़ारों कैथोलिक लोग जमा होकर बड़ी भावुकतासे कैथोलिक धर्मोपदेशकोंकी प्रेमपूर्ण उपासना सुननेमें मग्न रहते थे । उन्हें इस बातका ध्यान भी नहीं होता था कि हम मन्दिरोंमें हैं या खुले मैदानोंमें, और हमारे सिर पर धूप, हवा और पानी रोकनेके लिए कोई आच्छादन है या नहीं । इन दोनों दृश्योंका भेद देखनेवालेके लिए बहुत ही दुस्सह होता था और अपनी गाढ़ी कमाईके धनसे चांडाल और पाखंडी प्रोटेस्टेण्ट धर्म्मोपदेशकोंको चैन उड़ाते देखकर कैथोलिक लोग जल भुन जाते थे । इस विषयमें सिडनी स्मिथ नामके एक प्रोटेस्टेण्ट धर्म्मोपदेशकने लिखा है कि-" टाइथ करके सम्बन्धमें आयर्लैण्डमें जैसा अत्याचार हुआ वैसा निर्दय अत्याचार युरोप, एशिया और आफ्रिका इन तीनों खंडोंमें कभी न हुआ होगा । यह कर वास्तवमें इतनी निर्लज्जताका था कि एक अवसर पर ग्रटनके कथनानुसार ठीकेदारोंके द्वारा परोक्षमें वसूल किये जानेकी बात तो निराली है, पर हाँ

यदि यह नियम होता कि स्वयं धर्म्मोपदेशक जाकर खेतिहरोंसे कर माँगा करें तो धर्म्मोपदेशक भी लज्जासे मुँह फेर लेते और इस प्रकार इस करका वसूल होना आपसे आप बंद हो जाता। " लेकिन ठीकेदारोंको लज्जा कहाँसे आती ? वास्तविक धर्मोपदेशक ममतालु गड़रियेकी तरह होना चाहिए; उसे अपने गाँवके लोगोंका सुख-दुःख सुनकर उन्हें उसी तरह अपनी जानसे बढ़कर समझना चाहिए जिस तरह गड़रिया अपने झुण्डके मेमनोंको समझता है। धर्म्मोपदेशक तथा जनसाधारणके संबंधकी वास्तविक उपपत्ति यही है। लेकिन आयर्लैण्डमें उन दिनों धर्म्मोपदेशक लोग गड़रिये नहीं थे; मानो पिछले जन्मके कोई दावेदार थे ! लोगोंको उनका मुँह ही नहीं दिखाई देता था। क्योंकि वे लोग खेतिहरोंके धन पर चुपचाप चैन उड़ाया करते थे। और यदि वे कभी लोगोंको अपना मुँह दिखलाने जाते भी थे तो धर्म्मनिष्ठ कैथोलिक लोग उन्हें शैतान समझकर उनका सामना नहीं करते थे। हाँ, कर वसूल करनेवाले ठीकेदारोंका सामना करनेसे वे नहीं बच सकते थे, और वे ठीकेदार गड़रियेके कुत्तेकी खाल ओढ़े हुए भेड़ियेकी तरह भेड़ोंके इस झुण्ड पर मजेमें हाथ साफ़ करते थे।

लेकिन इस प्रकारकी दुस्सह स्थिति कितने दिन तक ठहर सकती थी ? इसमें जो अन्यायके बीज थे उन्हें देख कर राजकर्म्मचारियोंको उचित था कि वे ठीक समय पर उचित कायदे कानून बनाकर इस स्थितिको सुधारते; लेकिन अभाग्यवश वह बात नहीं हुई और कैथोलिक किसानोंको अपना न्याय आप ही करना पड़ा। पहले बहुत वर्षों तक कैथोलिक लोगोंका द्वेष और क्रोध भीतर ही भीतर बढ़ता रहा; लेकिन समय पाकर वह पराकाष्ठा तक पहुँच गया। दंगा फसाद होने शुरू हो गये, दोनों पक्षोंकी प्राणहानि होने लगी; अब तक तो गिरजे निर्जन ही रहते थे, पर अब वे ध्वस्त भी होने लगे; और कैथोलिक

लोगोंके षड्यंत्रोंसे कभी कभी निरपराधी धर्म्मोपदेशकों और उनके स्त्री बच्चोंकी हत्या भी होने लगी। इस पर अधिकारी लोग एक जानके बदलेमें दस जानें लेने लगे। यह स्थिति सन १७८० से १८३६ तक अर्थात् लगभग पचासवर्षतक बनी रही। सिडनी स्मिथने एक अवसर पर कहा था कि इस टाइथ करकी वसूलीके कारण दोनों पक्षोंके लगभग दसहजार आदमियोंकी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे प्राणहानि हुई। इस करकी वसूलीके सम्बन्धमें लोगोंने पहले पहल सन १७८६ के लगभग आन्दोलन आरम्भ किया। कैथोलिक किसान पस्त हो गये थे; उन्हें कोई उपाय नहीं सूझता था। उस समय कुछ साहसी युवकोंने ठीके-दारोंके मनमें दहशत उत्पन्न करनेका काम अपने ऊपर लिया। इस तरह राजकीय असंतोषके साथ धर्म्मद्वेषका जोड़ मिल गया और उनके हाथोंसे प्राणहानिका अपवित्र काम शुरू हो गया। यह आन्दोलन पहले पहल केरी नामक प्रान्तमें आरम्भ हुआ। लोगोंने निश्चय कर लिया कि इतनी रकमसे अधिक टाइथ कर न देंगे और सब लोगोंसे उससे अधिक न देनेकी कसम लेना प्रारम्भ कर दिया। इसके साथ ही साथ प्रोटेस्टेण्ट लोगोंको कष्ट पहुँचाने और उन पर अत्या-चार करनेका भी आरम्भ हुआ। जब पार्लमेण्ट खुलती थी तब यह नियमविरुद्ध कार्रवाई रुक जाती थी और अधिकारी लोग समझ लेते थे कि अब शान्ति हो गई। लेकिन पार्लमेण्टके समाप्त होते ही फिर गड़-बड़ होने लगती थी। इस आन्दोलनमें पहले पहल केवल कैथोलिक लोग ही सम्मिलित थे। लेकिन प्रोटेस्टेण्ट पंथमें भी डिसेंटर्स, प्रेसबिटेरियन्स आदि कई ऐसे पंथ थे, जिन्हें राजदरबारद्वारा स्थापित विशिष्ट पंथ मान्य नहीं था, और इस कारण कैथोलिक लोगोंकी तरह वे भी टाइथ कर नहीं देना चाहते थे। अतः धीरे धीरे इन पंथोंके लोग भी कैथोलिक लोगोंमें सम्मिलित हो गये। फल यह हुआ कि

करकी वसूलीमें कमी होने लगी। इन बेकायदा कार्रवाइयोंको रोकनेके लिए पार्लमेण्टने बहुतसे दमनकारक नियम बनाये, लेकिन उनसे करकी वसूलीके बढ़नेमें जरा भी सहायता नहीं मिलती थी। कर न देने अथवा कर न देनेका गुप्त रूपसे निश्चय कर लेनेके कारण लोगोंको दण्ड दिये जाने लगे, उन पर कोड़े पड़ने लगे, काठोंमें उनके पैर दिये जाने लगे, परंतु वसूली किसी तरह अधिक नहीं हुई। बहुतसे प्रोटेस्टेण्ट धर्मोपदेशकोंके लिए तो सचमुच ही भूखों मरनेकी बारी आगई। जो किसान कर नहीं देते थे उनके लिए नियम था कि उनकी भूमिकी जंगम सम्पत्ति बेचकर नियमानुसार कर वसूल किया जाय; लेकिन सब लोगोंने मिलकर सलाह कर ली थी कि किसानोंकी जो सम्पत्ति और गोरू आदि जब्त करके नीलाम पर चढ़ाये जाएँ उन्हें कोई न ले, इससे जायदाद जब्त करना और न करना बराबर होता था। इसके अतिरिक्त जब जब्ती करनेके लिए ठीकेदार या धर्म्माधिकारी जाता था, तब लोग एक न एक बखेड़ा खड़ा कर देते थे। बखेड़ा खड़ा होते ही पुलिस बुलाई जाती थी। जब पुलिस आकर जबरदस्ती करने लगती तब किसानकी दशा पर लोगोंको दया आ जाती और उसके प्रति सहानुभूति होती जिसके कारण बहुतसे लोग उसकी सहायताके लिए पहुँच जाते। जमाव होते ही गाली-गलौज होने लगता और दोनों पक्षोंमें हाथाबाँहींकी नौबत आ जाती। बस, लोगोंके डंडों और पुलिसके हथियारोंका उपयोग होने लगता। इसके बाद मुकदमों और सजाओंकी नौबत आती। एक जगहके दंगेकी बातें सैकड़ों जगह फैलतीं जिससे लोगोंका चित्त क्षुब्ध होता था और असंतोष उत्पन्न होता था। आगे जब इन सब बातोंके संबंधमें पार्लमेण्टमें वादविवाद होता तब अधिकारियों और नेताओंमें खूब बकझक और कहासुनी हो जाती। इस अन्यायपूर्ण करके लिए आयर्लैण्डमें

बीस पच्चीस बरस तक ऐसी ही कार्रवाई होती रही और हरसाल इस करकी वसूली कम ही होती गई। किसीको कोई उपाय नहीं सूझता था। क्यों कि यह कर यद्यपि अन्याययुक्त था, तथापि कई पीढ़ियों-से बराबर चला आता था और धर्म्मोपदेशक-मण्डलका सारा दारोमदार इसी पर था, इस कारण इसे जारी रखने और बंद करनेमें एक सी दिक्कत मालूम होती थी। जब तक यह झगड़ा खतम नहीं हुआ तबतक—कई वर्षोंतक—छोटेसे आयर्लैण्डमें अँगरेजोंको उतनी ही सेना रखनी पड़ती थी जितनी सारे हिन्दुस्तानमें रखनी पड़ती है! केवल सन १८३३ ई० में इस अधिक सेनाके लिए दस लाख पाउण्डसे भी अधिक खर्च हुआ और टाइथ करके बारह हजार पाउण्ड वसूल करनेके लिए छव्वीस हजार पाउण्ड खर्च करने पड़े! आयरिश पार्लमेण्टमें सन १८०० से पहले प्रायः पचीस वर्षतक यह झगड़ा होता रहा। इसके बाद यह ब्रिटिश पार्लमेण्टमें उपस्थित हुआ और वहाँ इसके निर्णयमें अड़तीस वर्ष लग गये। पर अंतमें टाइथ कर बन्द हो गया और निश्चय हुआ कि धर्म्मो-पदेशकोंकी हानिकी पूर्ति करनेके लिए सरकारी खजानेसे मदद दी जाय और इस करके लाखों रुपये जो अबतक वसूल न होनेके कारण बाकी पड़े हुए थे वे माफ़ कर दिये जायँ। इस विवादको समाप्त करनेका श्रेय प्रधान मंत्री लार्ड जान रसल और प्रजापक्षीय नेता ओकानेलको मिला।

रोमन कैथोलिक लोगोंके विरुद्ध जो कानून बने थे वे रद कर दिये गये और उन्हें स्वतंत्रता मिल गई। टाइथ करका वसूल होना बन्द हो गया और पग पग पर आयरिश कैथोलिक लोगोंकी आँखोंमें जो सूइयाँ चुभती थीं वे निकल गईं। तथापि आयर्लैण्डको प्रधानतः कैथोलिक लोगोंके राष्ट्रकी दृष्टिसे देखते हुए उनके साथ होनेवाले समस्त अन्या-योंका अभी तक अंत नहीं हुआ था। उनमेंसे दो प्रधान बातें अभी तक नहीं हुई थीं। एक तो यह कि आयर्लैण्डके लोगोंके कैथोलिक होने पर

भी आयर्लैण्डके खजानेका धन प्रोटेस्टेण्ट लोगोंके पालन-पोषणमें लगता था। टाइथ कर और इस प्रश्नमें मुख्य भेद यह था कि टाइथ कर तो कैथोलिक लोगोंकी जेबसे दिया जाता था, लेकिन खजानेका धन किसी एक व्यक्तिका दिया हुआ नहीं होता था; इस लिए टाइथके सम्बन्धमें व्यक्ति मात्रको जो प्रत्यक्ष कष्ट होता था वह इस दूसरी बातके कारण नहीं होता था और इसी लिए इस बातके लोगोंके असंतोषके कारणीभूत होनेमें कुछ अधिक दिन लगे। खजानेमेंका धन सारी रिआयाका और कर देनेवाली प्रजाका मिला-जुला था; इस लिए यदि वह धन बेठिकाने खर्च होता तो उसके लिए व्यक्तिशः किसे बुरा मालूम होता? लेकिन वह धन प्रोटेस्टेण्ट धर्म्मके लिए व्यय किया जाता था, इस लिए कैथोलिक लोगोंको यह बात कभी पसंद नहीं हो सकती थी। सन् १८२९ में कैथोलिक लोगोंने अपनी मुक्तताका और सन् १८३८ में टाइथ कर बंद करनेका ये दोनों कानून केवल अपने आन्दोलनके बलपर ब्रिटिश पार्लमेण्टमें पास कराये थे, अतः इस नवीन प्रश्नके विषयमें भी उन्हें आशा होने लगी। इसी बीचमें फीनियन लोगोंने विद्रोह किया और उसका दमन कर दिया गया; तथापि उसके कारण सुसंस्कृत और विचारशील अँगरेज राजनीतिज्ञोंने यह बात अच्छी तरह समझली कि आयरिश लोगोंके असंतुष्ट रहनेके वास्तवमें कुछ सबल कारण अवश्य हैं, नहीं तो ऐसे साहसके काम करके वे अपनी जान जोखिममें डालनेके लिए तैयार न होते। इस लिए विद्रोहका दमन होने पर उन लोगोंका लक्ष्य इस प्रश्नकी मीमांसाकी ओर गया कि आयरिश लोगोंका समाधान किस बातसे होगा और वे किस तरह संतुष्ट होंगे। उसी अवसर पर आयरिश नेताओंने इंग्लैण्डका ध्यान उस विनाकारण होनेवाले खर्चकी ओर दिलाया जो आयरिश खजानेसे प्रोटेस्टेण्ट-धर्म्ममण्डलके पालनके लिए होता था।

जिस समय इंग्लैण्ड और आयर्लैण्ड की पार्लमेण्ट एक हुई थी उस समयके बने हुए पार्लमेण्टके नियमोंमें एक धारा यह भी रक्खी गई थी कि इंग्लैण्ड और आयर्लैण्डके धर्म्म-मण्डलको एक करके इसका नाम संयुक्त धर्म्ममण्डल रक्खा जायगा और उसकी सारी व्यवस्था इंग्लैण्डके पहलेके धर्म्ममण्डलके अनुसार होगी। अर्थात् इंग्लैण्डमें जिस प्रकार सार्वजनिक खजानेका धन प्रोटेस्टेण्ट धर्म्म-मण्डल पर खर्च होता था उसी तरह आयरिश खजानेका धन भी प्रोटेस्टेण्ट धर्म्म-मण्डल पर खर्च होनेको था। लेकिन व्यक्तिगत दृष्टिसे जो कारण टाइथ करके विरुद्ध थे सार्वजनिक दृष्टिसे वे ही कारण आयरिश खजानेके धनके प्रोटेस्टेण्ट धर्म्माधिकारी मण्डल पर खर्च होनेके विरुद्ध भी प्रयुक्त होते थे। यह खर्च बहुत दिनोंसे होता आया था। आयर्लैण्डमें जो दो तीन सौ वर्षोंसे प्रोटेस्टेण्ट लोगोंकी प्रधानता थी यह खर्च उसका एक चिह्न था और इस बातका भय था कि यदि यह खर्च बंद कर दिया जायगा तो राजपक्षीय प्रोटेस्टेण्ट लोग असंतुष्ट होकर विद्रोहमें प्रवृत्त होंगे। लेकिन इस विद्रोहके भयकी अपेक्षा कैथोलिक लोगोंके असंतोष और वादग्रस्त विषयोंमें होनेवाले अन्यायका भय इंग्लैण्डके राजनीतिज्ञोंको अधिक जान पड़ा। इस नये प्रश्नको 'धर्म्म-मण्डल-विघटनका आन्दोलन' कहते हैं।

आयरिश पार्लमेण्टके स्वतंत्र रहनेके समय, अर्थात् सन् १८०० से पहले, यह प्रश्न आयर्लैण्डमें कभी उपस्थित नहीं हुआ था। यह बात नहीं थी कि लोगोंको उसका अन्याय खटकता न हो; लेकिन जब तक ऐसे कानून मौजूद थे, जिनके अनुसार रोमन कैथोलिक लोगोंके साथ पशुवत् व्यवहार होता था तब तक ऐसी फुटकर बातोंको सुधारनेका कौन प्रयत्न करता और यदि कोई करता भी तो नक्कारखानेमें तूतीकी आवाज कौन सुनने जाता? लेकिन सन् १८५८ वाले फीनियन लोगोंके

विद्रोहके उपरांत इस प्रश्नको आपसे आप महत्त्व प्राप्त हो गया। यदि यह प्रश्न किया जाता कि प्रोटेस्टेण्ट धर्म्ममंडल पर खजानेका धन खर्च करनेसे किनको लाभ होता है, तो इसका उत्तर केवल यही था कि सौमें केवल दस बीस आदमियोंको। और यदि यह प्रश्न किया जाता कि दस-बीस विधर्म्मी लोगोंके लाभके लिए कैथोलिक प्रजाका धन क्यों खर्च होता है, तो उसका उत्तर यही देना पड़ता कि ऐसा करना अन्याय है। यदि यह कहा जाता कि प्रोटेस्टेण्ट धर्म्ममंडलका पालन करके कैथोलिक लोगोंको प्रोटेस्टेण्ट बनाया जायगा, तो हर एक आदमी यह समझ सकता है कि जो लोग तीन सौ वर्षोंसे असंख्य दुःख सहकर भी धर्मभ्रष्ट नहीं हुए, वे मुट्ठीभर प्रोटेस्टेण्ट धर्माधिकारियोंके निर्जन गिरजोंमें चिल्लानेसे अपना धर्म क्यों छोड़ने लगे ? इसके सिवाय तब बलपूर्वक धर्म्म बदलवानेके दिन भी बीत गये थे। उन्नीसवीं शताब्दीके उत्तरार्द्धमें अँगरेजोंके मनमें धार्मिक विषयोंमें सात्त्विक सहिष्णुताका पूरा संचार हो गया था; और तब केवल धर्म्ममण्डलके पालनसरीखे लड़कपनके हठके लिए आयर्लैण्डमें असंतोष रहने देना और ब्रिटिश साम्राज्यको विकलांग रखना, यह बात किसीको पसंद नहीं आ सकती थी। सन १८६८ ई० के मार्च महीनेमें जान फ्रांसिस मेग्युअरने पार्लमेण्टमें कहा कि धर्म्ममण्डल तोड़ दिया जाय, अर्थात् उस पर होनेवाला सार्वजनिक व्यय बंद कर दिया जाय। उस समय इस बात पर खूब वादविवाद हुआ। हिन्दुस्तानके भूतपूर्व वाइसराय लार्ड मेयो उन दिनों आयर्लैण्डके स्टेट सेक्रेटरी थे। उन्होंने उक्त बिलके बहुत कुछ अनुकूल सम्मति दी। लेकिन जब ग्लैडस्टनने इस बातका रंग ढंग देखा कि यदि किसी प्रधान राजनीतिज्ञने इसका समर्थन नहीं किया, तो यह नामंजूर हो जायगा; तब उन्होंने खुद आगे बढ़कर उसका समर्थन किया। ग्लैडस्टन साहब स्वयं प्रोटेस्टेण्ट थे और

परम धार्मिक भी थे। उनकी सम्मति थी कि इंग्लैण्डमें धर्म्ममण्डल पर सरकारी खजानेका धन खर्च किया जाय, पर तो भी कैथोलिक लोगोंके धनका प्रोटेस्टेण्ट धर्म्ममंडल पर खर्च होना उन्हें अन्याययुक्त जान पड़ा और उनके इस प्रश्नको हाथमें लेते ही उसमें बल आ गया। ग्लैड-स्टन साहबने जो प्रस्ताव उपस्थित किया वह बहुमतसे पास हो गया। इसके उपरांत पार्लमेण्टका फिरसे चुनाव हुआ, तो भी इस वादग्रस्त प्रश्नके अनुकूल देशमें बहुमत था, जिसके कारण उक्त प्रस्ताव पार्लमेण्टमें बिलके रूपमें आते ही पास होकर कानून बन गया। यह बात सन् १८६८ ई० की है। इस कानूनके कारण आयर्लैण्डमें सरकारी धर्म्म-मण्डलकी इतिश्री हो गई, केवल निजके प्रोटेस्टेण्ट धर्ममण्डल बच रहे। पर यह निश्चय हो गया कि उन्हें सरकारी खजानेसे धन न दिया जाय। आयरिश प्रोटेस्टेण्ट बिशपको आज तक हाउस आफ लार्ड्समें बैठ-नेका जो अधिकार था वह भी नष्ट हो गया। आयर्लैण्डमें धर्म्माधिकारि-योंको न्यायालयकी तरह न्याय करनेके कुछ अधिकार दिये गये थे, वे भी छीन लिये गये और निश्चय हो गया कि यदि प्रोटेस्टेण्ट लोग अपने तौर पर चुनाव करके धर्म्म-मण्डल स्थापित करें तो उन्हें केवल प्रोटेस्टे-ण्ट लोगोंके लिए ही अधिकारकी सनद दी जाय और कैथोलिक लोगों पर उसका कोई अमल न हो। कैथोलिक लोगोंकी दृष्टिसे यह उनकी बड़ी भारी जीत हुई और ग्रंथकारोंका मत है कि सभी पक्षोंके कैथो-लिक लोगोंने मिलकर और आपसका वैमनस्य भूल कर यह आन्दोलन किया था; इसी लिए उनकी यह जीत हुई।

धर्म्मविषयक दूसरी फुटकर बातें शिक्षाके संबंधकी थीं। आयर्लैण्डके कैथोलिक लोगोंकी जन्मभूमि होते हुए भी वहाँ कैथोलिक लोगोंको अपनी इच्छानुसार शिक्षा प्राप्त करनेका कोई सुभीता नहीं था, और यह बात उन्हें बहुत ही बुरी मालूम होती थी। सन् १८७३ तक आयर्लैण्डमें

केवल दो ही विश्वविद्यालय थे। लेकिन उनमें धार्मिक शिक्षा बिलकुल ही नहीं दी जाती थी। इसलिए आयरिश लोगोंका यह कहना था कि आयर्लैण्डमें एक नया विश्वविद्यालय स्थापित किया जाय और उसमें धार्मिक कैथोलिक शिक्षा देनेकी व्यवस्था की जाय। लेकिन इंग्लैण्डमें उनके इस कथनका बहुत विरोध होता था। एक तो कैथोलिक धर्म्म ही इंग्लैण्डके लोगोंको बिलकुल पसंद नहीं था; और दूसरे यह कि जिन कारणोंसे प्रोटेस्टेण्ट धर्म्ममंडलपरका खर्च कम करना न्याय्य था, उन्हीं कारणोंसे एक नये कैथोलिक विश्वविद्यालयकी स्थापना करके प्रोटेस्टेण्ट लोगोंका कर-स्वरूप दिया हुआ धन उसके लिए व्यय करना अन्याय होता। लेकिन सन् १८७३ के फरवरी महीनेमें ग्लैड-स्टन साहबने यह समझकर एक बिल उपस्थित किया कि कैथोलिक लोगोंके साथ जो अन्याय होता रहा है उसे देखते हुए यह अन्याय कुछ भी नहीं है और शिक्षाके लिए नवीन प्रबंध करना आवश्यक है। पर ११ मार्चको बहुत गहरा वादविवाद होनेके बाद वह बिल नामंज़ूर हो गया। लेकिन कनजरवेटिव और आयरिश इन दोनों पक्षोंके प्रति-कूल होने पर ग्लैडस्टन साहब मंत्रित्वके पदसे इस्तेफा देनेके लिए तैयार हो गये। और तबसे आज तक यह प्रश्न अनिश्चित दशामें पड़ा हुआ है। सन् १८२९ से कैथोलिक लोगोंको यह अधिकार अवश्य मिल गया कि वे प्राथमिक और माध्यमिक पाठशालाओंमें जाकर शिक्षा प्राप्त कर सकें; तथापि विश्वविद्यालय चाहे किसी राष्ट्रमें शिक्षाकी बुनि-याद न भी हो, पर वह उसका आधारस्तंभ अवश्य है। और अब तक आयर्लैण्डमें कोई ऐसा विश्वविद्यालय नहीं बना है, जिसमें जाकर आय-रिश कैथोलिक लोग उत्साहपूर्वक शिक्षा प्राप्त करें। इस लिए शिक्षाके सम्बन्धमें कैथोलिक लोगोंकी शिकायत ज्योंकी त्यों बनी है।

---

५ खेतिहरोंका आन्दोलन।

जमीनके सम्बन्धमें आयरिश लोगोंकी जो शिकायतें हैं उनका स्वरूप नीचे लिखे अनुसार है। यह पहले ही बतलाया जा चुका है कि इंग्लैण्डके राजा ट्यूडर और स्टुअर्टके राजत्वकाल तथा ओलीवर क्रामवेलके कार्य्यकालमें कैथोलिक लोगोंसे लाखों एकड़ जमीन छीनकर प्रोटेस्टेण्ट अँगरेजोंको दे दी गई थी और राजा विलियमके राजत्वकालमें तो जमीनकी जब्तीकी हद हो गई थी। उस समयतक अँगरेजी राजनीतिका सिद्धान्त यह था कि जीते हुए आयरिश राष्ट्रको सब तरहसे दबाकर एक बार वहाँ गधोंका हल चला दिया जाय और विद्रोह तथा अराजनिष्ठाको जड़ मूलसे खोदकर फेंक दिया जाय! इसके बाद यदि उस जमीनमें सुधारके बीज बोये जायँगे तो वे अच्छी तरह अंकुरित होंगे। इसी उद्देश्यसे आयर्लैण्डमें बसे हुए अँगरेजोंने राजा विलियमसे दिया हुआ वचन भंग कराया और आयरिश लोगोंके धर्म्म तथा घरबार पर हल चलवानेका कार्य्य आरंभ किया। जब सारी जमीन हाथमें आगई तब प्रोटेस्टेण्ट जमींदार यह सोचने लगे कि वह जोती बोई कैसे जायगी। पहले उन्होंने स्काटलैण्डसे प्रोटेस्टेण्ट काश्तकार आदि बुलाकर उनके द्वारा जमीनको जुतवाने और बोआनेका प्रयत्न किया। लेकिन जमींदारोंने धीरे धीरे बहुत अधिक लगान माँगना आरंभ कर दिया जिससे वे काश्तकार नाराज होकर अमेरिका चले गये और तब उन्हें आयरिश कैथोलिक काश्तकारोंसे ही अपनी जमीनें जोतवानी और बोआनी पड़ीं। कैथोलिक काश्तकार भी यही चाहते थे। उनका निर्वाह खेती पर ही होता था; इस लिए कागज-पत्रोंमें मालिकी चाहे जिसकी हो, पैदावारके लिए जब उन्हें जमीन मिलगई

तब मानों उनका मुख्य काम होगया। यह जमीन यदि अबाधित रूपसे उनके हाथमें रहती तो ठीक था। लेकिन जब जमींदारोंको उनका मन-माना लगान नहीं मिलता था, तब वे अपनी जमीन दूसरे काश्तकारको देते थे; और हाथकी जमीन निकल जानेके कारण वह पहला काश्त-कार निराधार हो जाता था। इसके अतिरिक्त जमीनमें क्या चीज बोई जाय और किस खेतका कितना भाग किस काममें लाया जाय, इसके संबंधमें भी काश्तकारों और जमींदारोंमें झगड़ा हुआ करता था। इस कारण काश्तकारोंको किसी प्रकारकी स्थिरता नहीं जान पड़ती थी और बराबर झगड़े बखेड़े होते रहते थे। यदि यह कहा जाय कि अठा-रहवीं शताब्दीके आरंभमें वहाँ चार पंचमांश जमीनके संबंधमें यही दशा थी तो कुछ अत्युक्ति न होगी। लेकिन इस प्रकारकी स्थिति बहुत दिनों तक नहीं ठहर सकती। लिमरिककी सन्धिके प्रायः सत्तर वर्षबाद अर्थात् सन १७६० के लगभग जमीनके सबन्धमें कैथोलिक काश्तकारों और प्रोटेस्टेण्ट जमींदारोंमें खुलकर झगड़े होने लगे और वे झगड़े लगभग १२० वर्ष तक—अर्थात् सन१८८० में जमीनके संबंधमें ग्लैडेस्टन साहबवाले कानूनके बनने तक—होते रहे। सन १७६१ में इंग्लैण्डके गोरुओं (पशुओं) में रोग फैला और आयरिश गोरु-ओंका दाम बहुत चढ़ गया। उस समय आयर्लैण्डके जमींदारोंने चराईके लिए ऐसी अच्छी अच्छी जमीनें पड़ती छोड़ दीं, जिनमें पहले अच्छी फसल हुआ करती थी। आयर्लैण्डमें घास-चारा बहुत होता है, इस कारण यह प्रदेश गोरुओंके व्यापारके लिए बहुत उपयोगी है; लेकिन फसलवाली जमीनको पड़ती छोड़ना मानों गोरुओंको जिला कर मनुष्योंको मारना था। खेती-बारीका काम हाथसे निकल जानेके कारण निकम्मे और संतप्त हुए आयरिश खेतिहर शीघ्र ही जमीन्दारों पर टूटे। उन्होंने सैकड़ों चरि-योंके चारे जला डाले और गोरुओंको हाँक दिया तथा जखमी कर

दिया। इस प्रकार उन लोगोंने जमीन्दारोंको दिक् करना शुरू किया। उनका कहना केवल इतना ही था कि गाँवकी पैदावारकी जमीन किसानोंके लिए छोड़ दी जाय, लगानमें कमी कर दी जाय, बेदखल किये हुए किसानोंको फिरसे जमीन मिले और उनकी रोजी लगे। लेकिन जमींदार लोग ये बातें नहीं मानते थे। इस पर अनेक प्रकारके अत्याचार और अनुचित कार्य्य होने लगे। निकम्मे खेतिहरोंको उन्हीं-मेंसे कुछ युवक नेता मिल गये और उन लोगोंने जमींदारों पर हाथ छोड़ना आरंभ कर दिया। बहुतसे जमींदार अपने गुमाश्तोंकी मार्फत जमीनका इन्तजाम करते थे और उन गुमाश्तोंमेंसे बहुतसे उद्दण्ड, खाऊ, अविचारी और अत्याचारी होते थे। अतः उन गुमाश्तोंके रहने पर ऐसी ऐसी बातें होने लगीं, जो स्वयं जमींदारोंके रहते कभी न होतीं। इस प्रकार दोनों पक्षोंसे यह झगड़ा बहुत बढ़ गया। खेतिहरोंकी गुप्त सभायें होने लगीं और वे गुट बाँध कर जमींदारोंके विरुद्ध एक दूसरेको सहायता देने लगे।

खेतीकी जमीनमें पैदावार न होनेके कारण दो बुरे परिणाम हुए। बहुतसे खेतिहरोंको मजदूरी नहीं मिलती थी और फसलके जरासा भी खराब होने पर दुष्काल पड़ जाता था और लोगोंके प्राणों पर आ बनती थी। इस लिए खेतिहर लोग देश छोड़कर विदेश जाने लगे। परदेश जानेवाले तो मजेमें रहे, पर जो लोग देशमें रह गये उन्हें बहुत कष्ट भोगना पड़ा। कुछ लोग यों ही दिन बिताते थे और कुछ लोग भेड़ें चराते थे। भेड़ें पालनेके काममें बहुत परिश्रम नहीं होता, इस लिए वह काम करनेवाले लोग धीरे धीरे आलसी बन चले। आलस्यके साथ साथ दुर्गुण भी लगे ही रहते हैं। भिखमंगोंकी संख्या बढ़ने लगी और उनके साथ ही साथ अपराधोंकी भी वृद्धि होने लगी। तात्पर्य्य यह कि देशके तत्त्व अथवा सार खेतका लाभ—उसके उपयोगके साथ साथ

दुरुपयोगका भी लाभ—देशके बाहर इंग्लैण्डमें रहनेवाले जमींदारोंको होने लगा, और इस स्थितिकी समस्त हानियाँ आयरिश लोगोंके पल्ले पड़ने लगीं। स्विफ्ट, बाकले, प्रायर, डॉब्स आदि विचारशील और देशाभिमानी सज्जनों तथा लेखकोंने पारी पारीसे जमींदारोंको सचेत कर देखा, लेकिन उनके प्रयत्नका कोई फल नहीं हुआ। खेतिहरोंके कष्टोंकी सीमा न रह जानेके कारण उन्होंने कानूनको अपने हाथमें लिया। अपने देशमें हम लोग बराबर देखा करते हैं कि जब साहूकारों और जमींदारोंका अत्याचार बढ़ जाता है तब यही दशा हुआ करती है। सन् १८७६ में पूनेमें होनेवाले दंगोंका कारण जिस प्रकार साहूकारोंका सूद था, उसी प्रकार अठारहवीं शताब्दीमें जमींदारोंका अत्याचार अनर्थका कारण हुआ। मनस्टर प्रांतमें 'व्हाइट बॉयज' और अलस्टर प्रांतमें 'ओक बॉयज,' 'राइट बॉयज,' 'थ्रेशर्स' 'रिबनमेन' 'हार्ट्स आफ स्टील,' 'व्हाइट फीट' 'ब्लेकफीट' 'रॉकाइट' आदि अनेक नामधारी विद्रोही दल उठ खड़े हुए। उन लोगोंने ऐसे ऐसे अनुचित कृत्य किये जिनका वर्णन सुनकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। आयरिश खेतिहर बिलकुल देहाती और जंगली थे और तिस पर उनके बहुत दिन दासतामें ही बीते थे। इस लिए उनका दंगा फसाद बड़ा ही भीषण हुआ। जिन लोगोंके दिन दासतामें बीतते हैं उनके दंगे फसाद-की कोई सीमा नहीं रह जाती, इसका अनुभव प्राचीन स्पार्टन लोगोंको हो चुका है; और इस समय आयर्लैण्डके अँगरेजी जमींदारोंके सामने भी यही बात आई। इन विद्रोहोंको अधिकारियोंने राजनीतिमूलक ठहराना चाहा, और षड्यंत्रमें सम्मिलित रहनेके अभियोगमें बहुतसे नेताओंको फाँसी भी दी गई। लेकिन आगे चलकर शीघ्र ही यह बात मालूम हो गई कि ये सब कठिनाइयाँ जमींदारोंके अत्याचारके कारण हो रही हैं; और सभी इतिहासकारोंका यह मत है कि धर्म्म अथवा राजनीति-

का इन झगड़ोंके साथ कोई सम्बन्ध नहीं था। बेचारे खेतिहर राजनीति भली भाँति नहीं समझते। राजा कोई हो, उनकी जमीन उनके पास रहे, उसमें अच्छी पैदावार हो, और उससे उनके बालबच्चोंका गुजारा हो जाय, बस इतनेमें ही वे संतुष्ट रहते हैं। हाँ, यदि इसमें भी किसी प्रकारकी बाधा हो तो उनका पित्त खौलने लगता है और जो उनके सामने आ पड़ता है उसी पर वे हाथ छोड़ देते हैं।

सन् १७७८ के लगभग कैथोलिक लोगोंके कानूनी बंधन कम होने लगे और पहले पहल जमीनके संबंधके कानून रद्द हुए। आजतक कैथोलिक लोगोंका जमीन पर मालिकाना हक नहीं हो सकता था। लेकिन सन् १७७८ में एक कानन बन गया, जिसके अनुसार वे ९९९ वर्षके करार पर जमीन ले सकते थे। ९९९ वर्षका अधिकार मानों सदाके लिए स्वामित्व ही था। सन् १७८२ वाले कानूनके अनुसार उन्हें जमीन खरीदने या रेहन रख सकनेका अधिकार मिला; और तब खेतिहर लोग प्रॉटेस्टेण्ट जमींदारोंके हाथसे कुछ कुछ छूटने लगे। इसके उपरांत आगे सन् १८०७ तक दशमें शांति थी। लेकिन सन् १८०७ से फिर दंगे आरंभ हुए और सन् १८३५ तक होते रहे। उस समय काश्तकार लोग लगानसे छुटकारा पाना चाहते थे और कहते थे कि काश्तकार बिना कारण खेतसे बेदखल न किये जा सकें और मजदूरोंको मजदूरी अधिक मिला करे। लेकिन खुद जमींदार लोग आयर्लैंडमें नहीं रहते थे। काश्तकारोंके सुख दुःख और शिकायत आदि उन्हें प्रत्यक्ष देखने और सुननेको नहीं मिलती थी, इसलिए वे उनकी प्रार्थनाओंकी उपेक्षा करते थे। उस समय सरकारको चाहिए था कि उस ओर ध्यान देकर मध्यस्थता करती और यदि आवश्यकता होती तो कानून बनाकर स्वार्थी जमींदारोंको न्यायकी प्रत्यक्ष शिक्षा देती। भारतवर्षमें यह बात सरकारने कई बार की है। यहाँके प्रत्येक प्रांतमें जमींदारोंकी जबरदस्ती

सरकारी कानूनोंने रोकी है; इतना ही नहीं बल्कि किसी किसी प्रांत-में तो जमींदारों और साहूकारोंकी हानिकरके भी खेतिहरोंके लिए सुभीते किये जाते हैं। आयर्लैण्डमें भी आगे चल कर ऐसे कानून बनाये गये और जमींदारोंकी अनुचित कामनायें रोकी गईं। लेकिन ये सब बातें उस समय हुईं जब तीन सौ बरस तक खेतिहरोंने स्वयं कष्ट भोगे और दो सौ बरस तक साहूकारों और अधिकारियोंको कष्ट पहुँचाये। यह बात नहीं थी कि आयरिश खेतिहरोंने मनुष्यत्वको बिलकुल तिलांजुली ही दे दी हो; अनेक प्रवासियोंके वर्णन देखनेसे जान पड़ता है कि वे लोग बहुत मिलनसार, मुहब्बती और शारीरिक दृष्टिसे बहुत सहनशील होते थे, आये-गयेका आदर-सत्कार करते थे, गरीबों और अनाथों पर दया दिखलाते थे और बड़ोंके साथ आदरपूर्वक व्यवहार करते थे; लेकिन जब जमींदारोंका अत्याचार असह्य हो जाता था, तब वे अपनी सुध भूल जाते थे और उनके द्वारा ऐसे ऐसे कार्य्य हो जाते थे जिनके लिए पीछे स्वयं उन्हींको पश्चात्ताप होता था।

जमींदारोंको भी इन बातोंका पूरापूरा पता था। लेकिन उन्हें सरकारका भरोसा था इस लिए वे कुछ परवा न करते थे। सन् १८१६ में सर जान न्यूपोर्ट नामक एक सभासदने पार्लमेण्टमें कह दिया कि बिलकुल शांतिके समय भी आयर्लैण्डमें २५००० सेना रखनी पड़ती है, इससे सिद्ध होता है कि वहाँके लोगोंके असंतोषका कोई न कोई वास्तविक कारण है। उन्होंने यह भी कहा कि इस कारणका पता लगाना चाहिए। लेकिन पिटने इसका विरोध किया। सन् १८२० में खेतिहरोंकी स्थितिके संबंधमें जाँच करनेके लिए एक कमीशन नियुक्त की गई। सात वर्ष तक उसका थोड़ा थोड़ा काम होता रहा। सन् १८२७ में इस कमीशनकी रिपोर्ट प्रकाशित हुई, जिससे स्पष्ट प्रकट हो गया कि बड़े बड़े लोगोंने कमीशनके सामने जो

गवाहियाँ दी थीं उनमें अशांति और दंगोंके मुख्य कारण यही बतलाये गये थे कि खेतिहर लोग दरिद्र हैं; करका बोझ उन पर बहुत अधिक है, जमींदारोंके गुमाश्ते अत्याचार करते हैं, दमनशील नियमोंसे लोगोंको कष्ट होता है और न्यायालयोंमें पक्षपात और कड़ाई होती है; राजद्रोह आदि राजकीय कल्पनाओंके साथ उनका कोई संबंध नहीं है। लेकिन अधिकारियोंको सहसा इन बातों पर विश्वास नहीं होता था। खेतिहर लोग यदि दंगा फसाद करते तो साथ ही उन्हें उसका प्रायश्चित्त भी करना पड़ता था। सरकारी पुलिस और सेनाके सामने बेचारे खेतिहर कबतक ठहर सकते थे? अधिक दंगा फसाद होते ही जमींदार लोग पार्लमेण्टसे ऐसे कानून बनवा लेते थे जिनके अनुसार अधिकारियोंके अधिकार बढ़ जाते थे और अधिकारी लोग उन अधिकारोंका भरपूर उपयोग करने लगते थे, और इस प्रकार बहुत दिनों बाद अंतमें वे लोग खेतिहरों पर अपना रंग जमा लेते थे। सन् १८०० से १८३५ तकके ३५ वर्षोंमेंसे केवल ग्यारह वर्ष ऐसे बीते थे जिनमें दमनशील नियमोंका व्यवहार नहीं हुआ था। बाकी चौबीस वर्ष आयलैंण्डका सारा राजकार्य्य इसी प्रकारके कानूनोंके बल पर हुआ था। उदाहरणार्थ उन दिनों नीचे लिखे हुए भिन्न भिन्न कानून जारी थेः—

१८००–१ विद्रोहका कानून।
१८०३–४ ,, ,,
१८०७–१० ,, ,, और फौजी कानून।
१८१४–१७ ,, ,,
१८२२–२४ ,, ,,
१८२५–२९ कैथोलिक संस्थायें बंद करनेका कानून।
१८३१–३२ हथियारोंका कानून।
१८३३–३५ ‘ कोअर्शन ’ अर्थात् दमनकारक कानून।

लेकिन इन पैंतीस वर्षोंमें अधिकारियोंने पहले शांतिपूर्वक कभी इस बातका विचार नहीं किया कि खेतिहरोंके दुःख किन किन उपायोंसे दूर किये जा सकते हैं। इसका कारण यह था कि आयर्लैण्डका सारा राजकार्य्य और इंग्लिश पार्लमेण्टका बहुमत बिलकुल जमींदारोंके ही हाथमें था और उसका उपयोग वे केवल अपने हितसाधनमें ही करते थे। लेकिन धीरे धीरे धीरे यह बात सरकारी अधिकारियोंको भी कबूल करनी पड़ी। जब दमनकारक नियमोंकी सहायतासे देशकी अशांति दूर नहीं हुई तब जमींदार लोग सरकार पर दोष लगाने लगे। वे कहने लगे कि अधिकारी लोग ठीक बंदोबस्त नहीं करते, जितनी मदद चाहिए उतनी मदद वे जमींदारोंको नहीं देते और ठीक तरहसे कानूनकी पाबंदी नहीं करते। इस प्रकार अपना पाप वे खेतिहरोंके साथ साथ सरकारके सिर पर भी लादने लगे। उस समय अधिकारियोंने इसके बदलेमें स्पष्ट रूपसे जमींदारोंको उनकी वास्तविक स्थिति बतलाकर उनके कान खोल दिये। उन दिनों थामस ड्रमंड नामक एक उदार और महान् पुरुष आयर्लैण्डके चीफ सेक्रेटरीके पद पर था। (सन् १८३८ ई०) उसने अपनी एक आज्ञामें लिखा था:—" जमींदार लोग सिर्फ जमीनकी आमदनी खाते हैं। लेकिन जिस प्रकार वे अपने अधिकार जानते हैं उस प्रकार अपने कर्त्तव्य नहीं जानते। जिस समय देशमें दुष्काल पड़नेके कारण लोग भूखों मर रहे हों; अनाज मँहगा हो गया हो और मजदूरी न मिलती हो, उन दिनों दरिद्र खेतिहरोंको पैदावारका अंश न देनेके कारण निकाल देना और उनसे जमीन छीन लेना न्याय नहीं है। दंगे-फसाद इसी प्रकारके कार्य्योंसे होते हैं। यह समझना भूल है कि कड़े कड़े कानून बनाकर ये दंगे रोके जा सकेंगे। ऐसे गरीब लोगोंके साथ जमींदार और अधिकारी दोनोंको दयापूर्ण व्यवहार करना चाहिए। थामस ड्रमंड खाली जबानी जमा-खर्च करनेवाला आदमी

नहीं था। उसने आयरिश लोगोंके साथ सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करके उनके कष्टोंको यथासाध्य कम किया। भारतवर्षमें लार्ड रिपनके नामका जितना आदर है, आयर्लैंण्डमें थामस ड्रमंडके नामका भी उतनाही आदर है। उसने जमींदारोंकी आँखोंमें खूब तेज अंजन लगाया; उसके दक्ष, पर विचारपूर्ण, शासनके समय लड़ाई झगड़ों और अपराधोंमें बहुत कमी हुई। लेकिन उसकी मृत्युके उपरान्त सन् १८४२ से फिर दंगे शुरू हुए। १८४४ में खेतिहरोंके इस प्रकारके एक हजार अपराध हुए। सन् १८४५ ई० में यह संख्या तीन हजार तक पहुँची। १८४८ ई० में तो विद्रोह ही हो गये और इस प्रकार १८४२ से सात आठ वर्ष तकके लिए फिर सब प्रकारके दमनकारक नियमों और अत्याचारोंका साम्राज्य हो गया।

सन् १८१९, १८२३, १८२४ और १८२५ में आयर्लैंण्डकी खेती-के संबंधमें जाँच करनेके लिए जो कमेटियाँ नियुक्त की गई थीं उन कमेटियोंने खेतिहरोंकी दीन स्थितिका वर्णन करके इस बातकी सिफारिश की कि उन्हें सहायता देना आवश्यक है। लेकिन उसका कोई उपयोग नहीं हुआ। सन् १८२९ में पार्लमेण्ट में इस आशयका एक बिल उप-स्थित हुआ कि जमींदारोंसे पड़ती जमीनें छीनकर खेतिहरोंको दे दी जायँ जिसे कामन्स सभाने मंजूर कर लिया; लेकिन लार्ड्स सभाने उसे नामंजूर कर दिया। इसके बाद ग्रटनके लड़केके—जो पार्लमेण्टका मेम्बर था—बहुत उद्योग करने पर सन् १८३१ में लार्ड अलथार्पकी सूचना पर पार्लमेण्टने आयर्लैंण्डमें लोकोपयोगी कामोंमें खर्च करनेके लिए पचास हजार पाउण्ड देना स्वीकार किया। सन् १८३४ और १८३७ में स्क्राप और शार्मन क्राफर्डने खेतिहरोंको जमीन पर करीब करीब मिलाकियतके हक्क दिलानेके संबंधमें बिल उपस्थित किये, पर वे नामंजूर होगये। लेकिन इसके बाद १८४२ में नहरोंका कानून पास होजाने पर पड़ती जमीनको काममें लानेमें कुछ सहायता मिली। सन् १८४३

में डीवान कमीशन नियुक्त हुआ। उसके सामने मुख्य प्रश्न अलस्टर प्रांतके काश्तकारोंकी मिलकियतके हकका था। सन् १८४५ में उसकी जो रिपोर्ट प्रकाशित हुई थी उसमें यह स्वीकार किया गया था कि "काश्तकारोंका मालिकाना हक तो साबित नहीं होता, परंतु जब एक काश्तकार जमीन छोड़ता और उसके स्थान पर दूसरा काश्त-कार आता है तब आपसके व्यवहारके अनुसार दूसरे काश्तकारसे पहले काश्तकारको स्वामित्वके बदलेमें कुछ धन मिलता है।" यद्यपि उस समय यह समझ और यह चाल रही हो कि इतना धन देनेवाले काश्त-कारको स्वामित्वका अधिकार मिलता है तो उसमें कोई आश्चर्य्यकी बात नहीं है। लेकिन 'डीवान' कमीशनके सदस्य बहुधा जमींदार ही थे और ऐसे लोगोंसे काश्तकारोंका मालिकाना हक़ मंजूर करनेकी आशा करना डेनियल ओकानेलके कथनानुसार कसाइयोंसे मांस-भक्षण-निषेध पर व्याख्यान देनेकी आशा करनेके समान था। सन् १८४५,१८४७ और १८४८ में स्टानले और शार्मन क्राफर्डने पार्लमेण्टमें इस आशय के बिल उपस्थित किये कि जमींदार लोग खेतमें जो सुधार न करें, पर अधिकारी जिन सुधारोंका होना आवश्यक समझें, वे सुधार काश्तकार लोग अपने खर्चसे करलें और जब जमीन छोड़ने लगें तब सारा खर्च उन्हें जमींदारसे मिल जाय। लेकिन इसका कोई फल नहीं हुआ। सन् १८४९ में जमींदारोंको ऋणमुक्त करके उनकी जमीनें छुड़ा देनेके संबंधमें एक कानून पास हुआ। उसके अनुसार काश्तकारोंके तो किसी प्रकारके लाभकी सम्भावना थी ही नहीं; हाँ बहुतसी जमीन एकदम विक्रीके लिए निकल जानेके कारण उलटे जमींदारोंका नुकसान हुआ। सन् १८४८ ई० में आयर्लैण्डमें पहला कृषकसंघ स्थापित हुआ और सन् १८५० में उसकी दूसरी आवृत्ति हुई। लेकिन शीघ्र ही इस संस्थामें दो पक्ष होगये और सन् १८६० तक कोई काम नहीं हुआ। सन् १८६१ में

पार्लेमेण्टने जमीनके सम्बन्धमें डीसीज एक्ट नामका एक कानून पास किया। उसका मुख्य तात्पर्य्य यह था कि खेतिहर लोग सिर्फ हिस्सेदार माने जायँ और जमींदार तथा काश्तकारमें पहलेसे जो करार हो जाय उसीके अनुसार काश्तकारसे जमींदारको लगान मिले, उनके दूसरे पारस्परिक व्यवहार हों और पट्टा रद्द किया जाय। लेकिन केवल करार पर निर्भर रहनेमें काश्तकारोंकी हानि थी। अमीरों और गरीबोंमें लिखा पढ़ी करके जो करार होते हैं उनमें प्रायः अमीरोंका ही लाभ होता है। क्योंकि गरीब लोग गरजी होते हैं। उनका काम रुका रहता है, इसलिए उन्हें अमीरोंको मनमानी बातें लिख देनी पड़ती हैं। यह बात नहीं है कि गरीब लोग यह न समझते हों कि हम अपने नुकसानकी बात लिख रहे हैं। लेकिन उसमें उनका इतना ध्यान रहता है कि चाहे जिससे हो खेतीके लिए जमीन ले ली जाय और उसी पर साल भर गुजारा किया जाय। अगर कोई दिक्कत हो भी, तो वह सालके अंतमें लगान देनेके समय या पट्टेकी मुद्दत बीतनेके समय। बल्कि वे लोग इसी प्रकारके दैववाद पर निर्भर रहते हैं कि अंतमें जमींदार, करारका कागज, न्यायालय और परमेश्वर जो कुछ करे वही ठीक है। यह कहकर कि 'आगेकी बात आगे देखी जायगी' जमींदार जो कुछ चाहता है, खेतिहर लोग खुशीसे वही लिख देते हैं। कुछ खेतिहर बहुत सीधे साधे होते हैं और उन्हें इस बातकी कल्पना भी नहीं होती कि आगे चलकर कभी कोई बखेड़ा खड़ा होगा। जो कुछ उनसे कहा जाय वही वे अपने भोलेपनके कारण लिख देते हैं। अर्थात् करारोंके लिखे जानेके कारण जमींदारका पक्ष ही बलवान रहता है और न्यायालयको खुशीसे अथवा कानूनकी सख्तीसे जमींदारके अनुकूल ही फैसला करना पड़ता है। लेकिन वास्तविक कष्ट उसी समय उत्पन्न होता है जब कि उस फैसलेके अनुसार काम होने लगता है। जमींदारोंको बलपूर्वक लगान

वसूल करनेका अथवा काश्तकारको बेदखल करनेका हुक्म मिलता है। काश्तकार लगान देनेमें असमर्थ होता है, उसके बरतन भांडे बाहर निकलते हैं, उसकी उपजीविकाके साधन नष्ट होते हैं और उसकी यह आपत्ति देखकर कानून एक तरफ हो जाता है और सूक्ष्म न्यायतत्वके अनुरोध पर बननेवाला लोकमत और सहानुभूति उस काश्तकारकी तरफ हो जाती है। यदि काश्तकार स्वयं उद्दण्ड, अभिमानी या तामसी हुआ तो वह कानून और अदालतको एक तरफ रख देता है और सिर्फ बदमाशीके भरोसे पर अपना न्याय स्वयं ही करनेके लिए तैयार हो जाता है, और तब मारपीट होती है। इन दोनों प्रकारोंसे कानूनकी पाबंदीमें रुकावट होती है, बाधा पड़ती है, और यदि करार तथा सूक्ष्म न्यायतत्त्वमें बहुत विरोध पड़ा तो सरकारको बीचमें पड़-कर दुर्बलके प्रति थोड़ा बहुत न्याय करना पड़ता है और इसी लिए कानून भी बदलना पड़ता है।

ऊपर कहे हुए कानूनोंसे आयरिश खेतिहरोंको कोई सहायता नहीं मिली और विरोध बराबर बढ़ने लगा। जमींदारोंको इस बातका अधि-कार था कि वे जब चाहे तब काश्तकारोंको बेदखल कर दें, इस लिए जमीन दुरुस्त करनेमें काश्तकारका श्रम और व्यय होता था वह व्यर्थ हो जाता था। जिस प्रकार बना बनाया बिल पाकर साँप उस पर अधिकार कर लेता है, उसी प्रकार ठीक की हुई जमीन एक काश्तकारसे लेकर जमींदार लोग किसी ऐसे दूसरे काश्तकारको दे देते थे जो अधिक लगान या अंश देता था। इस स्थितिके कारण काश्तकारोंकी दुर्दशा जब चरम सीमांतक पहुँच गई तब सन् १८७० में पार्लमेण्टको एक नया कानून बनाना पड़ा। इस कानूनके अनुसार यह निश्चित हुआ कि जिस दशामें काश्तकार लगानकी निश्चित रकम न दे और इस लिए जमींदारको उसे खेतसे बेदखल करना पड़े केवल उसी दशामें जमींदार

उसकी नुकसानी न दे। लेकिन लगान न देनेके सिवा यदि और कोई शर्त काश्तकार तोड़ दे, या किसी करारके मुताबिक काम न करे और उसके कारण वह जमीनसे बे-दखल किया जाय तो जमींदार उसकी क्षतिपूर्ति अवश्य कर दे। अर्थात् यदि काश्तकारने खेतीबारीके कामके लिए कोई छोटा मोटा मकान बनाया हो, अथवा बाँध बाँधा हो, अथवा खेतमें विशेष रूपसे खाद डाली हो अथवा पानी लाकर बाग बगीचा लगाया हो, तो इन कामोंके लिए उसका जो व्यय और परिश्रम हुआ हो, जमींदार उसकी पूर्तिके लिए जब काश्तकारको धन दे तभी उसे खेतसे बे-दखल कर सके। लेकिन इतनेसे भी काम नहीं चलता था। क्योंकि आयर्लैण्डमें हिन्दुस्तानकी तरह नित्य दुष्काल पड़ता था, और जब दुष्काल पड़ता है तब काश्तकार लोग लगान नहीं देसकते। यदि अतिवृष्टि या अनावृष्टिके कारण फसल मारी जाय तो इसमें काश्तकारका क्या दोष ? और जब अकाल पड़े तब काश्तकार स्वयं क्या खायँ और जमींदारको क्या दें ? अर्थात् सन् १८७० वाले कानूनमें जो इस आशयकी एक धारा थी कि यदि काश्तकार समय पर लगान न दे तो विना क्षतिपूर्ति किये ही वह बे-दखल किया जा सकता है, वह धारा काश्तकारोंको बहुत खटकने लगी। सन् १८७६ के लगभग अनाजका भाव बहुत गिर गया और दुष्कालकी पीड़ा बहुत बढ़ गई। उस समय फिर एक बार वैसी ही अशांति फैली जैसी पहले सन् १८६० में फैली थी। इस लिए खेती-बारीके संबंधमें राजकीय आन्दोलन आरंभ हुआ। उस वर्ष अगस्त महीनेमें माइकल डेविटने ‘ लैण्डलीग ’ नामक संस्था स्थापित की और शीघ्र ही पार्नेल उस संस्थाका सभापति हो गया। लैण्डलीगका मुख्य उद्देश्य यह था कि देशमें जमींदारों और काश्तकारोंके जो विद्रोह होते हैं वे बंद हो जायँ। पहले फीनियन आन्दोलनमें जो लोग सम्मिलित थे उन्हें अपने साथ

मिलाकर डेविड और पार्नेलने सारे आयर्लैण्डमें इस सभाकी शाखायें स्थापित कर दीं। अमेरिकासे भी उन लोगोंको इस कामके लिए चार लाख रुपयोंकी सहायता मिली। धीरे धीरे लैण्डलीगका काम इतना बढ़ा कि खेतिहरोंके कष्टोंके अतिरिक्त और किसी बातकी कोई चर्चा ही न करता था।

दूसरे वर्ष ग्लैडस्टन प्रधान मंत्री हुए। उन्होंने यह सब स्थिति देख कर स्टेट सेक्रेटरी फारेस्टरको आयरिश खेतिहरोंकी स्थिति सुधारनेके काममें सहायता दी। लिबरल मंत्रिमंडलने शीघ्र ही पार्लेमेण्टमें एक बिल पास करके यह निश्चय किया कि लगान न चुकानेवाले काश्त-कारको जमींदार बेदखल कर सके, लेकिन उसे बेदखल करनेसे पहले उसके उस व्यय और परिश्रमकी पूर्ति कर दे जो उसे जमीन दुरुस्त कर-नेमें हुआ हो। लेकिन लार्ड्स सभाने इस बिलके पास होनेमें अड़चन डाली जिससे कामन्स सभाके पास किये हुए बिलके अनुसार काम न हो सकता था। इस कारण आयरिश लोगोंमें खलबली पड़गई और उन्होंने अपना न्याय अपने हाथसे करनेके लिए स्वालंबनकी पद्धतिसे कामलेना आरंभ किया। उन्होंने यह निश्चय किया कि जिस जमीनसे जमींदार किसी काश्तकारको बे-दखल करे उस जमीनको और कोई काश्तकार लगान पर न ले। अर्थात् खेत खाली पड़जानेके कारण जमींदारकी हानि होगी और इस प्रकार वे समझने लगेंगे कि पहले काश्तकारको जमीनसे बे-दखल करनेमें हमने अन्याय किया। लेकिन इतनेसे ही काम न चला। एक काश्तकारके बे-दखल करने पर जमीन प्रायः खाली ही पड़ी रहती थी, लेकिन लैण्डलीगके संचालकोंने यह निश्चय किया कि यदि कोई काश्तकार लोकमत न माने और वह जमीन ले ले तो उसका बहिष्कार किया जाय। सितंबर सन् १८८० में पार्नेलने एक स्थान पर वक्तृता देते हुए कहा था:—"जमीं-

दारोंके अत्याचार बंद करनेका सबसे उत्तम उपाय यही है कि जो काश्तकार लोकमतकी परवा न करके खाली पड़ी हुई जमीन ले ले उसे महारोगीकी तरह समाजसे दूर रक्खा जाय और उसके साथ सब प्रकारके व्यवहार बंद कर दिये जायँ। उस समय एक तो जमींदारोंके अत्याचारके कारण लोकमतरूपी जंगल पहले ही बहुत तप गया था, तिस पर पार्नेल सरीखे नेताके प्रखर शब्दोंकी चिनगारी पड़ी, जिससे आग एकदम भड़क उठी। सारे देशमें बहिष्कारकी धूम मच गई। अत्याचारी जमींदारों और उनके गुमाश्तों तथा कारिन्दोंको भरे समाजमें रह कर उतने ही दुःख और आपत्तियाँ भोगनी पड़ती थीं, जितनी किसीको समुद्रमेंके किसी निर्जन और उजाड़ टापूमें रहकर भोगनी पड़ती हैं। खेतमेंकी फसल तैयार हो जाने पर उसे काटनेमें भी उन्हें सहायता नहीं मिलती थी। एक स्थान पर तो यहाँ तक हुआ कि फसल काटनेके लिए बड़ी कठिनतासे एकत्र करके जो पचास मज़दूर भेजे गये थे उनकी रक्षाके लिए उनके साथ नौसौ हथियारबंद सिपाही भी भेजने पड़े थे! यदि केवल यही सिद्ध करनेके लिए कि अधिकारियोंके बहुत हठ करने पर लोगोंको कानूनके मुताबिक काम करना ही पड़ता है, कोई जमींदार मजदूरोंके साथ हथियारबंद सिपाही भेजकर फसल कटवा ले तो उसका फल वहींतक रह जाता है। सारे जमींदारोंकी लाखों एकड़ जमीनकी जोताई, बोआई और कटाई आदि हथियारबंद सिपाहियोंके पहरेमें कराना जमींदारोंके लिए और सरकारके लिए भी असंभव ही था।

जब यह अवस्था आ पहुँची तब अधिकारियोंने उसके निराकरणके उपाय आरंभ किये। उनका मुख्य कटाक्ष लैण्डलीग पर था, इस लिए उन्होंने यह निश्चय किया कि यदि उसके संस्थापकों और संचालकोंको जेल भेज दिया जाय तो हमारा आधेसे अधिक कार्य्य हो जाय। इसीके

अनुसार पार्नेल आदि पर मुकदमे चलाये गये । जनवरी सन् १८२१ ई० में जूरियोंमें मतभेद हो जानेके कारण पार्नेल निर्दोष ठहरा; इस लिए उसकी सत्ता पहलेसे दसगुनी बढ़ गई । अधिकारियोंने भी नये दमनकारक कानून बनाये, लेकिन अंतमें सन् १८८१ में लिबरल मंत्रि-मंडलको जमीनके संबंधमें एक नया कानून पास करना पड़ा। इस नये कानूनका मुख्य तात्पर्य यह था कि जमीनके सम्ब-न्धमें काश्तकार अपना अधिकार बेच सके। केवल अपनी इच्छाके अनुसार जमींदार लोग काश्तकारोंको बेदखल न कर सकें और जमीनकी हैसियतके मुताबिक ही लगान लगे। जब काश्तकार वाजिब लगान न दे तभी वह जमीनसे बेदखल किया जाय, योंही बेदखल न कर दिया जाय। लगानकी रकम पंचोंकी मारफत निश्चित हुआ करे, आपसकी चढ़ा-ऊपरी पर ही वह निर्भर न रहे । लेकिन कई कारणोंसे पार्नेलको यह बिल पसंद नहीं था, इससे उसके पास होनेके समय वह अपने पैंतीस अनुयायियोंके साथ पार्लमेण्टसे उठ गया। उसका यह कहना था कि स्पष्ट रूपसे यह निश्चित कर दिया जाय कि जमीन पर खेतिहरोंका स्वामित्व है। लैण्ड लीगकी ओरसे लोगोंको यह उपदेश किया जाने लगा कि लगानकी रकम निश्चित करनेके लिए जो पंचायत बनती है उसकी रचना वैसी नहीं है, जैसी होनी चाहिए; इस लिए इस पंचायतसे काश्तकार लोग अपना फैसला न करावें । एक बार फिर पार्नेल पर मुकदमा चला; और इस बार अधिकारियोंकी उसे जेल भेज-नेकी कामना पूरी हुई । इधर पार्नेलने घोषणापत्र निकालकर लोगोंसे कह दिया कि तुम जमींदारोंको लगान मत दो; लेकिन इस घोषणाको बेकायदे बतलाकर अधिकारियोंने रोक दिया । सन् १८८१ में खेतिहरोंके दंगे बढ़ गये और एक ही वर्षमें प्रायः पाँच हजार अपराध अधिक हुए। जमींदारोंके गोरू मारे जाने लगे; लैण्डली-

गकी हजारों शाखायें होगई और स्त्रियाँ तथा बच्चे भी लैण्डलीगके उपदेशकका काम करने लगे। इस प्रकार जब यह निश्चय हो गया कि केवल दमननीतिसे ही कोई काम नहीं हो सकता, तब ग्लैडस्टन साहबको एक नई ही नीतिका अवलंबन करना पड़ा। उन्होंने किलमाइनहमके जेलसे पार्नेल, डिलन आदिको छोड़ दिया और नया कायदा बनाकर काश्तकारोंको लगानकी वह रकम माफ़ कर दी जो वसूल न होनेके कारण बाकी पड गई थी। इतना होने पर पार्नेलने लैण्डलीगके छोड़कर नेशनल लीग नामकी एक नई संस्था स्थापित की। इस लीगने न्याय आदिका काम अपने हाथमें लिया और उन काश्तकारोंको सामाजिक दण्ड देनेका कार्य्य आरंभ किया, जो लोकमतके विरुद्ध व्यवहार करते थे। उधर मंत्रिमंडल भी खेतिहरोंकी दशा सुधारनेके लिए थोड़ा बहुत काम कर रहा था; अतः उनके लिए सस्ते भाड़ेके झोंपड़े बनवा देने और उन्हें काम धंधा दिलानेमें सहायता देनेके लिये प्रयत्न हुए। 'एशबर्न एक्ट' नामका एक कानून पास हुआ, जिसके अनुसार यह निश्चय हुआ कि काश्तकारोंको जमीन पर स्वामित्वका अधिकार दिलानेके लिए पचास लाख पाउण्ड अलग निकाल दिये जायँ। लेकिन इस कानूनका जितना उपयोग होना चाहिए था उतना उपयोग नहीं हुआ। इसके उपरांत सन् १८९१ में एशबर्न एक्टमें कुछ सुधार करनेके लिए बालफोरने एक बिल उपस्थित किया। इस बिलका उद्देश्य यह था कि जमींदारोंके हाथसे जमीन निकालकर काश्तकारोंको उसे खरीद कर खुद मालिक बननेमें सहायता देनेके लिए तीन करोड़ रुपयोंका एक फण्ड हो; इस प्रकार यह कार्य्य आरंभ होने पर आगे चलकर काश्तकार जमीनके मालिक हो जायँगे तब यह कर्ज लौटा देंगे, जिससे दूसरे क़ाश्तकारोंको भी धनकी सहायता दी जा सकेगी। इस प्रकार धीरे धीरे सारे काश्तकार अपनी अपनी जमीनके मालिक हो जायँगे। जमींदारोंको

स्वामित्वका अधिकार छोड़नेके बदलेमें जो रकम दी जानेको थी वह भी मुनासिब तौरसे पहले ही निश्चित कर दी गई थी। इस कानूनसे बड़ा काम निकला। यदि यह कहा जाय कि इस कानूनके कारण जमींदारोंको धन लेकर जबरदस्ती अपनी जमीन देनी पड़ती थी, तो कुछ अनुचित न होगा। तथापि जमींदारोंके पास बहुत अधिक जमीन थी, इस लिए यह नहीं कहा जा सकता कि इससे जमींदारोंकी हानि हुई। इस कानूनको जारी करनेके अतिरिक्त काश्तकारोंके सुभीतेकी और भी बहुत सी बातें बालफोरने कीं। रेलवेसंबंधी छोटे मोटे कायदे बनाकर पश्चिम आयर्लैण्डके लोगोंके लिए काम धंधे निकाल दिये और इस पिछड़े हुए प्रदेशके खेतिहरोंका पूर्व तथा उत्तरके प्रदेशके खेतिहरोंसे संबंध बढ़ जानेके कारण उनकी स्थिति बहुत कुछ सुधर गई। इसके उपरांत सन् १८९६ में जमीनके संबंधमें फिर एक कानून बनाया गया। पहलेके कानूनोंमें काश्तकारोंकी जो शिकायतें बच रही थीं वे इस नये कानूनसे दूर हो गईं। सन् १८९९ में कृषि तथा औद्योगिक शिक्षाके लिए एक नया विभाग और बोर्ड बनाया गया। इस विभागके सभापतिकी हैसियतसे सर होरेस प्लेंकटने स्वावलंबनपूर्वक खेतीका सुधार करने, शिक्षा देने, अच्छे अच्छे गोरू तैयार करने, दूध दहीके कारखाने खोलने तथा इसी प्रकारके अन्य उपयोगी काम करनेका उपक्रम किया। बस्ती बहुत बढ़ जानेके कारण जिस भागके खेतिहर बहुत दरिद्र हो गये थे उस भागसे लोगोंकी बस्ती कम करके खेतिहर लोग दूसरे भागमें भेज दिये गये, और वहाँ उनके लिए सब प्रकारका प्रबंध और सुभीता कर दिया गया। लेकिन खेतिहरोंको जमीनका मालिक बनानेका जो मुख्य काम था वह उतनी अच्छी तरहसे नहीं हुआ और उसके लिए धनकी कमी होने लगी। सन् १९०३ में जब बालफोर प्रधान मंत्री थे और विंढम आयर्लैण्डके स्टेट सेक्रेटरी थे तब फिर एक कानून बना और इस कामके

लिए सरकारी खजानेसे धनकी सहायता देकर काश्तकारोंको जमीनका मालिक बनानेका काम आरंभ हुआ। इस कानूनके अनुसार जमींदारोंसे जमीन खरीदनेके लिए सरकारी खजानेसे काश्तकारोंको दस करोड़ रुपया दिया जाना निश्चय हुआ। यह दस करोड़ रुपया आयर्लैण्डको ऋणस्वरूप दिया गया है और धीरे धीरे यह रुपया लौटा दिया जायगा। इसके अतिरिक्त इस कानूनके अनुसार इस कामके लिए आयर्लैण्डको सवा करोड़ रुपया दान भी कर दिया गया है। सन् १९०७ में खेतिहरोंके सुभीतेके लिए हाउस आफ कामन्सने एक और कानून पास किया था। उस कानूनके अनुसार अधिकारी लोग जमींदारकी इच्छाके विरुद्ध भी उसकी पड़ती जमीन काश्तकारको दिलवा सकते हैं। काश्तकारोंको जमीन खरीदनेके लिए ऋणस्वरूप धन देनेके लिए सन १९०३ में जो कानून बना था उसके अनुसार उन्हें ६८½ वर्षके लिए ३॥) सैकड़े सालाना सूद पर धन मिलता था। सन् १९०८ में काश्तकारोंके सुभीतेके लिए इसमें कुछ और सुधार करनेका प्रयत्न किया गया था; पर उस समय उसमें सफलता न हुई। दो वर्ष बाद सन १९१० में उस कानूनके सुधारके लिए फिर एक बिल उपस्थित किया गया, जो बड़ी कठिनतासे पास हुआ और जिसके कारण काश्तकारोंकी बहुतसी शिकायतें दूर हो गईं। इन सब बातोंसे आयरिश खेतिहरोंकी स्थितिके सुधारनेमें अवश्य ही बहुत कुछ सहायता मिली, जिसके कारण भूमिसंबंधी आन्दोलन प्रायः रुक गया। बहुत दिनोंके बाद आज यह कहा जा सकता है कि आयर्लैण्डके किसानों में थोड़ी बहुत शांति विराज रही है।

---

६ राष्ट्रीय स्वतंत्रता (होमरूल) का आन्दोलन ।

यह बात पहले ही बतलाई जा चुकी है कि आयरिश पार्लमेण्ट किस प्रकार ब्रिटिश पार्लमेण्टमें जोड़ी गई थी। अँगरेज लोग कहते हैं कि जबसे ये दोनों पार्लमेण्टें एकमें मिला दी गई तबसे आयर्लैण्डका हित ही हुआ है । आयरिश लोगोंमें इस संबंधमें दो पक्ष हैं । एक पक्ष कहता है कि इस संयोगसे आयर्लैण्डकी अत्यंत हानि हुई है । दूसरा पक्ष इस हानिके संबंधमें अपना स्पष्ट मत नहीं प्रकट करता । वह केवल यही कहता है कि–" इस संयोगसे चाहे आयर्लैण्डका हित हुआ हो और चाहे न हुआ हो, राष्ट्रीयताकी दृष्टिसे देखते हुए आयरिश पार्लमेण्ट स्वतंत्र होना चाहिए और उसके अधिवेशन आयर्लैण्डमें ही होने चाहिए। इस संयुक्त पार्लमेण्टके द्वारा इंग्लैण्डके हाथसे आयरिश लोगोंका जो अनहित हुआ हो, स्वतंत्र आयरिश पार्लमेण्टके हाथसे उसकी अपेक्षा कम ही अनहित होगा और जो हित हुआ हो उसकी अपेक्षा स्वतंत्र पार्लमेण्टसे अधिक ही हित होगा । " इस वादकी साधक बाधक बातों-के फेरमें न पड़कर पहले हम यही देखते हैं कि आयरिश पार्लमेण्ट-की जो स्वतंत्रता नष्ट हो गई थी उसे फिरसे प्राप्त करनेके लिए आयरिश लोगोंने कौन कौनसे प्रयत्न किये और इस समय उनका उद्देश कहाँ तक पूरा हुआ है ।

आयरिश पार्लमेण्टके स्वतंत्र रहनेके समय उसके द्वारा चाहे जितनी भूलें हुई हों और उसकी स्वतंत्रताके नष्ट हो जाने पर आयर्लैण्डका चाहे जितना हित हुआ हो, पर आयरिश लोगोंकी फिरसे स्वतंत्र पार्ल-मेण्ट प्राप्त करनेकी उच्चाकांक्षा गत सारी शताब्दीमें कभी नष्ट नहीं हुई और विशेषतः यह बात ध्यान देने योग्य है कि आयरिश पार्लमेण्टके नष्ट होनेके समय प्रोटेस्टेण्ट सभासद पिटके लालचोंमें कितने ही क्यों

न आ गये हों; तथापि कैथोलिक और प्रोटेस्टेण्ट दोनों पंथोंके बहुतसे लोगोंके मनमें पार्लमेण्ट नष्ट होनेके दिनसे फिरसे उसकी प्राण-प्रतिष्ठा करनेकी जो उत्कट इच्छा उत्पन्न हुई वह बराबर बनी रही है । आय-रिश लोग, चाहे वे कैथोलिक हों या प्रोटेस्टेण्ट हों, स्वतंत्र आयरिश पार्लमेण्टको ही आयरिश राष्ट्रीयताका मुख्य चिह्न समझते हैं; और आयरिश राष्ट्रीयताकी उनकी कल्पना दिन पर दिन प्रबल होनेके कारण उनके साथ ही साथ स्वतंत्र पार्लमेण्ट प्राप्त करनेकी कल्पना भी बलवती होती गई है ।

सन् १८०० के उपरांत तीन वर्ष विद्रोह और दमनकी धूममें ही बीत गये । उसके उपरांत कैथोलिक लोगोंकी स्वतंत्रता और तदनन्तर टॉइथे करका प्रश्न उपस्थित हुआ और इस प्रकार पार्लमेण्टकी स्वतं-त्रताका प्रश्न पीछे पड़ा रह गया । लेकिन डेनियल ओकानेलने जब यह समझा कि जिस तरह उक्त दोनों बातोंके आन्दोलनमें हमें सफलता हुई है उसी तरह इस तीसरी बातमें भी हमें सफलता होगी, तब उसने इस आन्दोलनको हाथमें लिया, जिसे लोग थोड़ा बहुत भूल गये थे । उसके इस नये आन्दोलनका वास्तविक आरंभ सन् १८४० में हुआ । इसे अँगरेजीमें 'रिपीलका आन्दोलन' कहते हैं । इसमें संदेह नहीं कि इस आन्दोलनमें उस समयके आयलैंण्डके सर्वश्रेष्ठ और सुप्रसिद्ध नेता तथा वक्ता सम्मिलित थे। लेकिन यह बात नहीं है कि किसी सार्वजनिक हितके प्रश्नको चाहे उसका महत्त्व सदा समान ही क्यों न रहता हो, सदा लोकमतकी समान अनुकूलता ही मिलती हो । प्रत्येक आन्दोलनके लिए उपयुक्त समयकी अवश्यकता होती है । इसका अर्थ यह है कि उसके सम्बन्धमें लोकमतके अत्यंत उत्कटतासे अनुकूल होनेके लिए जिन अनेक आवश्यक बातोंका एक ही समयमें साहचर्य्य आवश्यक होता है, उनमेंसे कुछ बातोंकी कमी होने पर चाहे

वह आन्दोलन कितने ही महत्त्वका क्यों न हो, उसके लिए लोगोंमें भी उतनी खलबली नहीं होती। इस नये आन्दोलनके सम्बन्धमें भी पहले पहल यही बात हुई। उसके लिए ओकानेलने प्रयत्न अवश्य किया; लेकिन एक तो उस समय उसके सम्बन्धमें लोगोंका मत कुछ बदल गया था। पहले सन् १८३२ में धार्मिक स्वतत्रंताके संबंधमें सफलता होनेके उपरांत उसने पार्लमेण्टका प्रश्न हाथमें लिया था। उस वर्ष विलायतकी पार्लमेण्टके चुनावमें आयलैंण्डसे जो सभासद् चुने गये थे उनमेंसे कमसे कम आधे सभासद् स्वतंत्र पार्लमेण्टके पक्षपाती थे। लेकिन इस शुभ आरंभसे ओकानेलको जितना लाभ उठाना चाहिए था उतना लाभ न उठाकर उसने इस आन्दोलनको ठण्ढा हो जाने दिया; और इसी लिए लोग उससे कुछ नाराज हो गये थे। इसके उपरांत शीघ्र ही ओकानेलके लड़के और दामादने सरकारी उच्च पद तथा वेतनकी नौकरियाँ कर लीं, और स्वतंत्र पार्लमेण्टके पक्षमें रहनेके वास्ते कुछ आयरिश सभासदोंने भी उसी मार्गका अवलंबन किया। इसीसे लोग ओकानेल तथा उसके अनुयायियोंसे बुरा मानने लग गये थे। बहुतसे लोग तो यह कहने लग गये थे कि इंग्लैण्डके व्हिग अर्थात् लिबरल पक्षके लोगोंके साथ ओकानेल उचितसे अधिक स्नेह और सद्व्यवहार रखता है। सन् १८३२ के लगभग उसने 'आयरिश मित्रमंडल' नामकी एक संस्था स्थापित की थी। शीघ्र ही उसके टूट जाने पर उसने फिर 'प्रास्ताविक' नामकी एक मंडली स्थापित की। उसका उद्देश्य यह था कि यदि आयर्लण्डके लोगोंके साथ न्याय न हो, अर्थात् यदि उन्हें इंग्लैण्डके लोगोंके समान अधिकार न मिलें तो अबतकके आन्दोलनको केवल प्रस्तावना समझकर उस समयतक बराबर आन्दोलन जारी रक्खा जाय, जबतक स्वतंत्रता न मिले। लेकिन लोगोंको इस प्रकारकी शर्त लगाकर कुछ माँगना पसंद न था। इससे लोग कहने लगे कि ओका-

नेलने न्याय प्राप्त करनेके फेरमें पड़कर अंतिम ध्येय छोड़ दिया है। इस कारण सन् १८४० ई० में जब ओकानेलने फिरसे पार्लमेण्टका आन्दोलन आरंभ किया तब इस आन्दोलनमें अधिक अनुयायियोंके मिलनेकी आशा नहीं दिखाई देती थी। इसके अतिरिक्त उस समय और भी दो एक आन्दोलन हो चुके थे जिसके कारण लोगोंमें कुछ शिथिलता भी आ गई थी। उसी समय कैथोलिक लोगोंको सब प्रकारके अधिकार मिले और उन्हें बड़े बड़े उहदे मिलनेके कारण उसकी भी प्रवृत्ति कोई पद प्राप्त करनेकी ओर होने लगी; और इंग्लेण्डके प्रति जिस कृतज्ञताकी लहर आजतक उसके मनमें कभी नहीं उठी थी वह इस समय उसके मनमें उठने लगी। कैथोलिक लोग दरिद्र हो गये थे और अभी हालमें ही उनके सिरपरसे अकालकी विपत्ति टली थी, इस लिए लोगोंमें दम नहीं रह गया था। पहले, ग्रटनके समय, पार्लमेण्टकी स्वतंत्रताके लिए लड़नेके काममें सन् १७७९ में वालेण्टियर लोगोंका आन्दोलन हुआ था। उसमें डब्लिन नगरके धनिक लोग नेता थे। लेकिन आगे चलकर वालेण्टियर लोगोंके निराश होने और बिगड़ जानेके कारण उनका उत्साह ठण्ढा पड गया। अँगरेजी पार्लमेण्ट तथा अँगरेज राजनीतिज्ञोंमें दस वर्ष पहले ओकानेलकी जो धाक बँधी थी वह अब कम हो गई थी। इसी लिए लोगोंके मनमें इस बातकी आशंका उत्पन्न होने लगी कि इस नये आन्दोलनमें सफलता होगी या नहीं।

लेकिन ओकानेलमें उद्योग, धैर्य्य, नम्रता, उत्साह आदि गुण पहलेके समान ही थे, इसलिए वह पीछे नहीं हटा। एक बात उसके लिए बिलकुल ही अनुकूल थी, और वह यह कि लोगोंकी जो यह धारण हो गई थी कि दोनों पार्लमेण्टोंके एक हो जानेसे आयर्लैण्डकी हानि ही हुई है, वह धारणा अभी तक बनी हुई थी और दिन पर दिन दृढ होती जा रही थी। वे कहते थेः—"जो कुछ लाभ हुआ वह इंग्लैण्डको ही हुआ।

अँगेरज व्यापारियोंको अपने मालके लिए स्थायी ग्राहक मिले, इस बात-का भय नहीं रह गया कि व्यापारमें आयरिश लोग आनेवाले माल पर कर आदि लगाकर अड़चन डालेंगे; अँगरेजी सेनामें भर्ती करनेके लिए आदमियोंके मिलनेमें सुभीता हो गया, कर, ऋण आदि अनेक जवाबदेहीकी बातोंमें अँगरेजोंको एक अच्छा हिस्सेदार मिल गया; आयर्लैण्डमें पार्लमेण्ट रहनेके समय थोड़े बहुत अँगरेज जमींदारोंको खुद कुछ दिनोंतक आयर्लैण्डमें रहना पड़ता था, और इसलिए आयर्लैण्डमें उनका जो थोड़ा बहुत धन खर्च होता था उसके होनेके लिए भी कोई कारण न रह गया और उलटे आयर्लैण्ड-से ही हर साल प्रायः साठ लाख पाउण्डकी मालियतकी पैदावार इंग्लैण्डमें जाने लगी; सब प्रकारकी सत्ता और पद, मान तथा वेतनके स्थान केवल अँगरेजोंको देनेके लिए इंग्लैण्डके मंत्रिमण्डलके हाथमें जो अधूरे साधन थे वे अब पूरे हो गये; सरकारी खजानेसे होनेवाले खर्च-पर पहले निजकी पार्लमेण्टके द्वारा आयरिश लोग जो नजर रख सकते थे वह नजर अब नहीं रह सकती थी; राज्यका ऋण बढ़ा, सैनिक व्यय बहुत अधिक होने लगा; आयर्लैण्डके खजानेसे अनेक प्रकारसे केवल इंग्लैण्डके काममें आनेवाले और आयर्लैण्डका अहित करने-वाले लोगोंको भी तनख्वाहें और पेन्शनें मिलने लगीं, खर्चके दूसरे मदोंमें एकका धन दूसरेके खर्च करनेमें जो अव्यवस्था होती है वह यहाँ बहुत अधिक और बहुत अच्छी तरह होने लगी, आयरिश लोगोंको पार्लमेण्टके प्रतिनिधियोंका चुनाव करनेका जो अधिकार था उसमें हस्तक्षेप होने लगा और ऐसा प्रयत्न होने लगा जिसमें वहाँके मतदाताओं और प्रतिनिधियोंकी संख्या दिन पर दिन कम होती जाय; और ब्रिटिश लार्ड-सभा तो आयर्लैण्डके हितके लिए एक नई आफ़त ही खड़ी हो गई।" ये सब बातें आयरिश लोगोंके मनमें अच्छी

तरह जम गई थीं और वे समझने लगे थे कि सन् १८०० में जो असम्मत योग हुआ है उसे रद् करके पहलेकी तरह स्वतंत्र पार्लमेण्ट प्राप्त करनी चाहिए।

ओकानेलने नये आन्दोलनको सफल करनेका सारा आधार इन्हीं बातों पर रक्खा था और समझ लिया था कि हमने सत्पक्ष ही स्वीकृत किया है और न्याय हमारे पक्षमें है। पहले पहल इस नये आन्दोलनवाली सभामें अधिक लोक नहीं आते थे और उसका चंदा भी कठिनता से ही मिलता था। लेकिन वह बराबर 'कार्न एक्सचेंज' नामक लोकप्रिय संस्थाके हालमें इस नये आन्दोलनवाली सभाका प्रति सप्ताह अधिवेशन करता रहता था और चंदेकी रकम जमा करता जाता था। दस वर्ष पहलेके चुनावमें स्वतंत्र पार्लमेण्टके पक्षपाती जो चालीस आदमी चुने गये थे, नये चुनावमें उनके स्थान पर केवल बारह आदमी ही रह गये थे; उधर डबलिनके चुनावमें स्वयं ओकानेलकी हार हुई थी और वह दूसरी ओरसे चुना गया था; तथापि इन बातोंसे वह निराश नहीं हुआ। इस प्रकार उसने जो दृढ निश्चय दिखलाया था उसका फल उसे शीघ्र ही मिला। 'तरुण आयर्लैण्ड' नामक संस्थाके डेविस, डिलन, डफी आदि, कुछ प्रोटेस्टेण्ट नेता, स्मिथ ओब्रायन सरीखे प्रभावशाली लोग तथा बहुतसे उत्साही युवक वकील और बैरिस्टर आदि इस वृद्ध राजनीतिज्ञको मिल गये। सन् १८४३ में इस आन्दोलनके संबंधमें सारे आयर्लैण्डमें सभायें होने लगीं और स्वयंसवकोंके द्वारा इस अन्दोलनके लिए प्रति सप्ताह प्रायः तीन सौ पाउण्ड चन्दा जमा होने लगा। उस वर्षके फरवरी मासमें डबलिनकी म्युनिसिपैलिटीकी सभामें ओकानेलने यह प्रश्न वादविवादके लिए उपस्थित किया। उसपर वादविवाद हुआ और अन्तमें यह निश्चय हुआ कि आयर्लैण्डके लिए स्वतंत्र पार्लमेण्ट चाहिए। आयरिश राष्ट्रकी राजधानीमें स्थानिक

स्वराज्यकी संस्थाके इस प्रकारका निश्चय करनेके कारण आयरिश लोकमतकी ध्वजा नियमानुकूल रीतिसे और स्पष्ट रूपसे फहराने लगी। इस संबंधमें अभी तक जिन लोगोंका मत पूर्ण और दृढ नहीं हुआ था अब वे भी इस झण्डेके नीचे आकर खड़े हो गये। सार्वजनिक सभाओंमें हजारों और कभी कभी लाखों आदमी एकत्र होते थे। सभामें आनेवाले लोग तथा स्वयंसेवक सदा एक प्रकारके सैनिक ठाठ और ढंगसे ही रहते थे। ऐसी सभाओंमें तरुण वक्ता प्रायः इसी विषयका वक्तत्वपूर्ण विवेचन किया करते थे कि आयर्लैण्डके लिए स्वतंत्र पार्लमेण्ट चाहिए। ऐसे अवसरों पर आयर्लैण्डके प्राचीन वैभव और वर्त्तमान दुःखका उल्लेख होता था, जिससे लोगोंकी राष्ट्रीयताकी कल्पना बहुत ही दृढ और उन्नत होती थी और लोग स्वदेश-भक्तिमें तल्लीन हो जाते थे। उस समय भी ओकानेलका वक्तृत्व पहलेके ही समान था। वृद्धावस्थासे उसकी ओजस्विता, आवेश तथा तेजीमें और सहायता ही मिलती थी; जब वह बोलने के लिए खड़ा होता था तब उसका भाषण सुनकर लोग यही समझते थे कि पहले कैथोलिक लोगोंको स्वतंत्रता दिलाकर जिसने लोगोंसे 'उद्धारकर्त्ता' की पदवी प्राप्त की है, वह हम लोगोंको स्वतंत्र पार्लमेण्ट भी अवश्य ही दिला देगा। प्रस्तुत विषय पर भाषण करते हुए वह नियमानुमोदित पद्धति पर ही बार बार जोर देता था। वह प्रायः अपने भाषणमें यही कहा करता था। कि "हमलोग कानून के मुताबिक काम करनेवाले हैं, हमारा आन्दोलन और प्रार्थना दोनों ही न्यायानुमोदित हैं, हमारी सभाओंमें चाहे लाखों आदमी आवें, पर तो भी वे सब कानूनके मुताबिक काम करनेका इरादा रखते हैं। जो लोग कायदेसे आन्दोलन करते हों उनके लिए अधिकारियोंसे डरनेका कोई कारण नहीं है; लेकिन इतना होने पर भी यदि अधिकारी लोग

अविचारपूर्वक आन्दोलनमें बाधा डालेंगे और स्वयं नियमविरुद्ध व्यवहार करके लोगोंको आत्मरक्षाके लिए नियमविरूद्ध व्यवहार करनेको विवश करेंगे तो फिर लोगोंके उन व्यवहारोंका उत्तरदायित्व लोगों पर न रह जायगा।"

इस आन्दोलनको इस प्रकार बढ़ते हुए देखकर अधिकारियोंको भय होने लगा। पार्लमेण्टमें प्रश्नोत्तर आरंभ हुए। मंत्रियोंसे प्रश्न होने लगे कि इस घातक आन्दोलनको आप लोग कब तक चलने देंगे? मंत्रि-मंडल उन्हें इसी प्रकारके उत्तर देने लगा कि "ओकानेल और उसके अनुयायियोंकी माँग पुराने कानूनके विरुद्ध होनेके कारण कभी मान्य नहीं हो सकती; और यदि ये मनचले लोग मर्यादाका उल्लंघन करेंगे तो अपने हाथके समस्त अधिकारोंका उपयोग करके और यदि आवश्यकता हुई तो नये अधिकार भी प्राप्त करके उनके साथ पूरा पूरा कानूनी बरताव किया जायगा।" और तीसरे लोग यह देखनेके लिए उत्सुक हुए कि हाथाबाँही पहले किस ओरसे होती है। पार्लमेण्टमें वादविवाद आरंभ होनेके समयसे आन्दोलनमें एक प्रकारका नया तेज आ गया और देशके प्रत्येक बड़े नगर और इतिहासप्रसिद्ध स्थानमें लाखों आदमियोंकी सार्वजनिक सभायें होने लगीं। इस प्रकारकी सभा मानों एक धार्मिक मेला ही होती थी। सभाके दिन चारों ओरसे दिन भर झुंडके झुंड लोग आते थे। सभास्थलके आसपास इतनी दूकानें आकर लग जाती थीं, जितनी किसी बड़े शहरके लिए काफी हो सकती थीं; और इतने बैण्डबाजे आदि आ पहुँचते थे जितने एक पूरी सेनाके लिए यथेष्ट हो सकते थे। श्रोताओंकी संख्या बहुत अधिक होनेके कारण एक ही भाषण ऐसा नहीं हो सकता था जिसे सब लोग सुन सकें, इस लिए एक ही सभामें दस पाँच सभायें होती थीं और निश्चित प्रस्ताव स्वीकृत होते थे। लाखों आदमियोंकी तालियोंकी

गड़गड़ाहट और बाजोंकी ध्वनिके योगसे इस प्रचंड सभाकी सम्मति जगद्विख्यात होती थी। कभी कभी सभाके कामों पर अपनी प्रसन्नता दिखलानेके लिए मीलों तकके गाँवोंके लोग टेकरियों पर आग सुलगाते थे!

इधर अधिकारियोंने भी अपना प्रबंध आरंभ कर दिया था। टारा और मैलो आदि स्थानोंमें ऐसी सभाओंके हो चुकनेके उपरान्त ओकानेलने यह विज्ञाप्ति की कि क्लानटार्फमें इसी प्रकारकी सभा रविवार तारीख ५ अक्टूबर सन् १८४३ को होगी। आजतक अधिकारियोंने जो तटस्थता स्वीकृत की थी उसे उन्होंने छोड़ दिया और खुले आम ऐसी सभाओंके रोकनेकी नीतिका अवलंबन करना निश्चय करके क्लानटार्फकी सभा रोकनेकी सूचना ठीक समय पर अर्थात् शनिवारकी संध्या को दी। शुक्रवारकी संध्याको ही एक समाचारपत्रने यह प्रकाशित कर दिया कि कल सभाको रोकनेकी नोटिस दी जायगी, इस लिए चौवीस घंटेतक बराबर सब लोग उसी सार्वजनिक सभाकी चर्चा करते रहे और यही देखने लगे कि नोटिस पाकर ओकानेल क्या करता है। यद्यपि ओकानेलके व्याख्यानोंमें आत्मसंरक्षण और नियमानुमोदन आदि शब्द खूब भरे रहते थे तथापि लोग यह नहीं समझ सकते थे, कि मौका आने पर वह लाखों आदमियोंकी मदद रहते हुए बिना दोहाथ लड़े पीछे हट जायगा। ठीक समय पर यह सूचना निकालकर अधिकारियोंने लोकपक्षको अपना बल और तेज दिखलानेका स्पष्ट प्रयत्न किया था; इस लिए ओकानेलके बहुतसे अनुयायियोंने यह सम्मति दी कि इसका जवाब देना बहुत जरूरी है और यदि ऐसे समय पर पीछे हटा जायगा तो राष्ट्रकी बहुत हँसी होगी। लेकिन ओकानेलने कहा कि इस सूचनाको मानकर यदि हम लोग सभा बंद रक्खेंगे तो अधिकारियोंके नियमोल्लंघन और लोगोंके नियमपालनका अंतर समस्त संसार देख लेगा और देशके बाहर भी

लोकमतके अनुकूल आन्दोलन होगा। इस आशयका एक विज्ञापन छप-वाकर रातोंरात क्लानटार्फके आसपास दस बील मीलतक जगह जगह लगवा दिया गया कि कलकी सभा बंद कर दी गई है; लोग एकत्र न हों और लौट जायँ। दूसरे दिन इन विज्ञापनोंको देखकर हजारों आदमी घबरा गये। अनेक लोग जहाँके तहाँ धकसे रह गये। बहुतसे लोग अधिक निश्चयसे सभास्थलतक गये लेकिन जब उन्होंने देखा कि सभाके संचा-लकही वहाँ नहीं है तब वे निराश होकर लौट आये। इस अवसर पर ओकानेल लाखों आदमियोंकी नजरोंसे जो एकदम गिरा और उसकी जो लोकप्रियता कम हुई, वह सब कुछ करने पर भी फिर कभी पूर्व-स्थिति पर नहीं आई।

ओकानेलने सभा बंद कर दी थी और सरकारी सूचनाका पालन किया था; अधिकारियोंका इस बातसे संतोष होना चाहिए था; पर वह बात नहीं हुई। उन्होंने इस सभाको बंद करनेके लिए बहुत बड़ी फौजी तैयारी की थी। सभास्थलके आसपास पलटनें खड़ी की गई थीं और पास ही एक ऐसी अच्छी जगह तोपों और गोलेबारूदका भी इन्तजाम था जहाँसे अच्छी तरह उनका उपयोग हो सकता था। यदि ओकानेलने स्वयं ही वह सभा न बंद कर दी होती तो सभास्थलमें रक्तपात हुए बिना न रहता! ओकानेल चाहे जिस कारणसे पीछे हटा हो, अधिकारियोंने यही कहा कि "वह खाली बड़बड़ करनेवाला है; इस सभाका उसने बिना कारण ही प्रपंच रचा था। सभामें वह जो दृढता दिखलाता था उसका कोई अर्थ नहीं था। व्यर्थ लोगोंको धोखा देकर सरकारके साथ उसने जो उद्दण्डतापूर्ण व्यवहार किया है उसके लिए उसको और उसके साथियोंको न्यायालयमें घसीट कर जहाँ एक बार सजा दी गई तहाँ वह फिर कभी ऐसे फेरमें न पड़ेगा; और इस तरह उसे और दूसरोंको यह बात अच्छी तरह मालूम हो जायगी कि अधिकारियोंके विरुद्ध बड़बड़ करना कितना निष्फल और घातक है।"

क्लानटार्फकी सभा बंद होनेके दूसरे दिन ओकानेलने 'कॉर्न एक्स-चेंज' में अपनी साप्ताहिक सभा की। इस सभामें हजारो आदमी आये थे। वहाँ उसने लोगोंको यह बतलाया कि मैंने सभा क्यों बंद की। उसने कहा—" सरकारने जो सूचना दी थी वह बेकायदा थी, लेकिन वह सूचना देनेका विचार कायदेके मुताबिक था। वास्तवमें चाहे कानूनके विरूद्ध ही क्यों न हो लेकिन कानूनके नाम पर और कानूनी कार्रवाईका ढोंग रच कर नोटिस जारी करना दूसरी बात है, और पहलेसे नोटिस न देकर सभामें एकदमसे सिपाही भेज कर उसे भंग कर देना दूसरी बात है। यदि सरकारने यही बात की होती तो हेतु और वस्तुस्वरूप दोनोंके अनुसार उसका यह कृत्य बेकायदे होता, और तब आत्मसंरक्षणके लिए कानूनको हाथमें लेकर अपनी शक्तिका उपयोग करना लोगोंके लिए ठीक होता।" लेकिन उसकी इन बातोंसे लोगोंका विशेष समाधान नहीं हुआ। उधर मुकदमा चलानेकी बड़ी भारी तैयारी हुई और १४ अक्टबरको ओकानेल, उसका लड़का जॉन, उसके तीनों मदद-गार, 'फ्री मैन' का संपादक जॉन ग्रे, नेशनका सम्पादक गेवन डफी, दोनों कैथोलिक धर्म्मोपदेशक टिरेल और टिअरने आदि लोग पकड़े गये और जमानत पर छूटे। १५ जनवरी सन् १८४४ को मुकदमा शुरू हुआ। ज्यूरियोंके चुनावमें अधिकारियोंने कपटसे बहुत कुछ चालें चलकर और गड़बड़ मचाकर ऐसा प्रयत्न किया कि जिसमें केवल प्रोटेस्टेण्ट ज्यूरी ही चुने जायँ, और इस प्रयत्नमें उन्हें सफलता भी हुई। सभी अभियुक्तों पर यह अभियोग था कि उन्होंने सरकारको डरा-नेके उद्देश्यसे सभा करनेकी सलाह की थी, और साथ ही इसी तरहके और भी दसबीस अभियोग लगाये गये थे। उनका उद्देश्य केवल यही था कि किसी न किसी अभियोगमें उन्हें दण्ड मिले। ओकानेलने न्यायालयमें अपना निर्दोष होना आप ही प्रमाणित किया था। लेकिन

अन्य अभियुक्तोंके लिए अच्छे अच्छे बैरिस्टर मुकदमा चलाते थे। पचीस दिनतक मुकदमा चलता रहा और जैसा कि लोग पहलेसे ही समझते थे, ज्यूरियोंने अपनी यह सम्मति दी कि सब लोग दोषी हैं। लेकिन दण्ड सुनानेका काम तीन महीने तक मुलतवी रहा। इसी बीचमें ओकानेल इंग्लैण्ड गया और वहाँ उसे खूब मानपत्र और भोज मिले। मुकदमेंके संबंधमें और विशेषतः उस कपटव्यवहारके संबंधमें जो ज्यूरियोंके चुनावमें हुआ था, पार्लमेण्टमें यथेष्ट वाद विवाद हुआ। ३० मईको अभियुक्तोंसे कोर्टमें उपस्थित होनेके लिए कहा गया और फैसला सुनाया गया। ओकानेलको एक सालकी सजा और दो हजार पाउण्ड जुरमाना हुआ और सात बरस तक अच्छी चाल चलन रखनेके लिए पाँच हजार पाउण्डकी जमानत और मुचलका माँगा गया। दूसरे अभियुक्तोंको भी फुटकर सजायें दी गईं। लेकिन पीछेसे लार्ड सभामें अपील हुई और अपील कोर्टने नीचेकी अदालतका फैसला रद्द किया और ओकानेलको दोषमुक्त करके छोड़ दिया। क्लानटार्फकी सभाके उपरांत और मुकदमेके पहले आन्दोलन हो ही रहा था। अब ओकानेलने यह युक्ति निकाली कि एक ही जगह पर बड़ी बड़ी सभायें न की जायँ, बल्कि एक ही दिनमें भिन्न भिन्न सैकड़ों स्थानों पर छोटी छोटी सभायें की जाया करें। इसके अतिरिक्त सारे आयर्लेण्डके तीन सौ भाग कल्पित करके और हर एक भागसे एक एक आदमी लेकर ठीक उसी तरह तीन सौ आदमियोंकी एक सभा स्थापित की, जिस तरह आगे चलकर पार्लमेण्ट मिलने पर उसके सभासद अलग अलग प्रांतोंसे चुने जाते। उसे ‘ त्रिशतक ’(तीन सौ आदमियोंकी सभा) कहते थे। उसने अपना काम बराबर जारी रक्खा। लेकिन आगे चलकर आयरिश लोगोंमें वैमनस्य हो गया और दलबंदी हो गई। कोई कुछ कहता था और कोई कुछ। पहले जो एका था

वह टूट गया। स्वतंत्र पार्लमेण्ट माँगनेवालोंका कहना यह था कि सन् १७८२ ई० में हेनरी ग्रटनके प्रयत्नसे जो प्रस्ताव स्वीकृत हुए थे और जिन कायदोंके मुताबिक आयरिश पार्लमेण्ट स्वतंत्र हुई थी उन्हींके अनुसार अब फिर स्वतंत्र पार्लमेण्ट मिलनी चाहिए। लेकिन शार्मन क्राफर्ड आदि लोगोंने एक नया ही पक्ष निकाला। उस पक्षका कहना यह था कि स्वतंत्र पार्लमेण्ट न माँगकर ऐसी पार्लमेण्ट माँगनी चाहिए जिसे केवल आयर्लैण्डके लिए कानून बनानेका अधिकार हो। पहले पक्षके ध्येयको केवल 'रिपील' और दूसरे पक्षके ध्येयको 'सम्मत-संयोग' कहते हैं। ओकानेल उस समय विदेशमें था; उसने भी अपना पहला ध्येय छोड़ दिया और पत्रद्वारा आयरिश लोगोंको यह सूचित किया कि मैं दूसरा ध्येय स्वीकार करनेके लिए तैयार हूँ। लेकिन उसके पुराने अनुयायियोंको यह बात पसंद नहीं आई। वे समझने लगे कि ओकानेल और भी बहुत सी बातोंमें पीछे हट गया है। पहले सन् १८३४ में ओकानेल कभी कभी कहा करता था कि—"ब्रिटिश पार्लमेण्ट ही हमारे साथ न्याय करने लग जाय तो फिर हमारा काम हो जायगा और हमें कुछ कहना नहीं रह जायगा।" लोग कहने लगे कि ओकानेल पीछे हटता हटता शीघ्र ही अपने इन्हीं विचारों तक पहुँच जायगा। वे लोग यह भी प्रकट करने लगे कि 'सम्मत-संयोग' के ध्येयमें राष्ट्रीयताकी कल्पनाका पोषक कोई तत्त्व नहीं है और इसी लिए हम लोगोंको यह बिलकुल पसंद नहीं है। 'नेशन' पत्रके सम्पादकवर्गने आजतक ओकानेलका नेतृत्व स्वीकृत किया था; पर उसने भी उसके पीछे हटनेका स्पष्टरूपसे निषेध किया। इस फूटसे अँगरेजोंको खूब लाभ हुआ। टोरी और ह्विग दोनों दलोंके अँगरेजी पत्रोंने आयरिश लोगों और ओकानेल तथा राष्ट्रीयताका उपदेश करनेवाले समाचारपत्रों पर गाली

गलौजकी झड़ी लगा दी। इधर 'सम्मत-संयोग' आन्दोलनके नेताओं और ओकानेलमें मेल होनेकी कोई सम्भावना नहीं दिखाई देती थी; क्योंकि ओकानेल पर उनका विश्वास नहीं होता था। शार्मन क्राफर्ड आदि कहने लगे कि वह अपना ध्येय स्पष्ट नहीं बतलाता, सिर्फ गड़बड़ करता है; इस लिए उसे सम्मत-संयोग पक्षमें बिना लिये ही आन्दोलन किया जाय तो अच्छा है। लोगोंके सामने क्रॉफर्ड अपने ढंग पर राष्ट्रीयताकी कल्पना उपस्थित करता था, और उसे नित्य नये अनुयायी मिलने लग गये थे। उस समय वह इसी विचारसे ओकानेलसे दूर रहना चाहता था कि यदि मैं ओकानेलको अपनी सभामें मिला लूँगा तो मुझे और जो अनुयायी मिलनेवाले होंगे वे न मिलेंगे। क्रॉफर्डकी यह प्रवृत्ति देखकर ओकानेल सिर्फ उसी पर नहीं बल्कि 'सम्मत-संयोग' के ध्येय पर भी बहुत आक्षेप करने लगा, जिससे दोनोंमें मेल होनेकी आशा नहीं रह गई। ओकानेलके पीछे हटनेके कारण 'रिपील' की कल्पना तो कम नहीं हुई, पर उसका आन्दोलन घट गया। ओकानेलसे यद्यपि लोग बहुत ही अप्रसन्न थे तथापि उसके चले जाने पर उसके स्थानकी पूर्तिकरनेवाला और कोई आदमी नहीं था; और इसी लिए सब लोग केवल एक ही विषय 'रिपील' की चर्चा अवश्य करते थे, पर राष्ट्रकी कृतिमात्रमें स्पष्ट रूपसे शिथिलता दिखाई पड़ने लग गई थी।

उसी समयके लगभग राष्ट्र पर और भी कई संकट आये। राजकीय पक्षके नेताओंकी तरह अन्य व्यक्तियोंमें भी व्यक्तिगत फूट हो गई थी। ओकानेलका लड़का जॉन अपने पिताके साथ रहकर राजकीय आन्दोलनमें उसे सहायता दिया करता था। लेकिन वह स्वयं मंदबुद्धि-था और नये पक्षके लोगोंके साथ ईर्ष्या रखता था। वह डफी डेविस तथ अन्य युवकोंकी प्रत्यक्ष वा परोक्षरूपसे निन्दा करने लगा। वे लोग धर्म्मान्ध

हैं; वे ओकानेलकी जगह छीन कर उसे पदच्युत करनेकी चिन्तामें हैं; वे आयर्लैण्डमें फ्रांसके अनियंत्रित तत्त्वोंका प्रसार करना चाहते हैं; आदि आदि एक दो नहीं बल्कि सैकड़ों वृथा अभियोग उन लोगों पर लगाये जाने लगे। ओकानेलके अनुयायियोंमें ऐरे-गैरे लोगोंकी खुर्गीरकी भरती ही अधिक थी। अंडबंड बातें कहकर अपनी बुद्धिके अनुसार ओकानेलके मतका प्रसार करना ही उन लोगोंका काम था। लेकिन स्वयं उन लोगोंमें यह समझनेकी योग्यता नहीं थी कि ओकानेलकी कौनसी बातें ग्राह्य और कौनसी अग्राह्य हैं, उसकी असली और सच्ची बातें कौनसी हैं और दुराग्रह तथा विकारवशताके कारण मनमें आनेवाली तरंगें कौनसी हैं। और न उनमें इतनी शक्ति ही थी कि उन बातोंके कह-नेके साथ साथ वादविवाद करके किसीको दोनोंका भेद समझा सकें। वे खाली ‘ हाँजी ’ ‘ हाँजी ’ करना जानते थे। जो कुछ वह कहता था उसीको वे प्रमाण मानते थे; और जो उसके विरुद्ध चूं भी करता था उसकी निन्दा करने लग जाते थे। ऐसे अनुयायियो पर जितना दबाव रखना चाहिए दुर्भाग्यवश ओकानेल उन पर उतना दबाव नहीं रख सका। उलटे पार्लमेंट तथा समाचारपत्रोंसे संबंध रखनेके कारण प्रतिष्ठा पाये हुए बहुत से नीच लोगोंको भी उसने अपना आश्रय दिया था। इन लोगोंने तथा ऊपर कहे हुए अनुयायियोंने ‘ नेशन ’ आदि पत्रोंकी सम्पादकमण्डलीकी अच्छी तरह निन्दा आरंभ की। राष्ट्रीय पक्षकी इस फूटका राष्ट्रीय कार्य पर बहुत बुरा परिणाम पड़ा।

प्रायः उसी समय यह भी अफवाह उड़ी कि प्रधान मंत्री पील आयरिश लोगोंको कुछ प्रसन्न करके उनकी प्रीति सम्पादित करना चाहते हैं। सच्चे प्रेमी मनुष्यके मनमें क्रोधके उपरांत अनुराग उत्पन्न होना स्वाभाविक है; और यदि पीलके मनमें यह बात आई हो कि आयरिश लोगोंकी पीठ पर कोड़े पर कोड़े पड़नेके उपरांत अब उन्हें

कुछ ऐसे अधिकार दिये जाने चाहिएँ, जिनसे उनकी सांत्वना हो और वे प्रसन्न हो जायँ, तो इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। अब आयरिश नेता इस चिन्तामें पड़े कि प्राप्तिकी इस आशा पर कहाँ तक निर्भर रहा जाय । लेकिन पार्लमेण्टमें समय पर क्या हो और क्या न हो, इसी लिए ओब्रायन और ओकानेल आदिने यह निश्चय किया कि हमलोग उस समय पार्लमेण्टमें कमसे कम उपस्थित अवश्य रहें । पार्लमेण्ट खुली और इस बातका प्रमाण भी मिला कि पील सचमुच आयरिश लोगोंके मनका कोई काम करना चाहता है। उसने कैथोलिक विद्यालयोंको दी जानेवाली रकम बढ़ाई और लगान आदिके सम्बन्धमें जाँच करनेके लिए एक कमीशन नियुक्त करके उसकी रिपोर्टके अनुसार बिल तैयार किये। लेकिन टोरी लोगोंने यह कहना आरंभ कर दिया कि ये दान बहुत बड़े हैं और आयरिश लोगोंके आन्दोलनसे डरकर इनकी योजनाकी गई है। पार्लमेंटमें इन दानोंके साथ साथ 'रिपील' के संबंधमें भी वादविवाद हुआ। उस समय सरकारने 'रिपील' का विरोध किया और आयरिश सभासदोंने उसका समर्थन किया जिसमें खूब कहा सुनी हुई। इसी विवादमें पहले पहल ग्लैडस्टन साहबने आयर्लैण्डके साथ अपनी सहानुभूति प्रकट की और तभीसे वे पार्लमेंटके विवादोंमें आयर्लैण्डके पक्षपाती हो गये।

अब 'रिपील सभा' के नामसे भी लोग चिढ़ने लगे। 'बयासी क्लब" नामकी एक नई सभा स्थापित की गई। इस सभाका भी उद्देश्य स्वतंत्र पार्लमेंट प्राप्त करना ही था । इसकी स्थापना सिर्फ यही समझ कर की गई थी कि नाम बदल जानेसे नये लोग खुले-आम आकर इसमें सम्मिलित होवें। इस सभाका सभापति ओकानेल कैथोलिक था और उसके तीन उपसभापति प्रोटेस्टेण्ट थे । ऊपरसे नीचे तक सभाके सभी अधिकारी कैथोलिक और प्रोटेस्टेण्ट दोनों मिले जुले थे।

धार्म्मिक द्वेष अब नष्ट हो गया था। इस नये क्लबमें देश तथा पार्लमेंट-के प्रायः सभी नेता सम्मिलित थे। सन् १७८२ ई० में ग्रटनके परिश्रमसे आयरिश पार्लमेण्ट स्वतंत्र हुई थी, इस लिए उसी वर्षके नाम पर इस क्लबका नाम 'बयासी क्लब' रक्खा गया था। इस क्लबके सभासद् हरे रंगके राष्ट्रीय कपड़े पहनकर एकत्र होते थे और हाथमें राष्ट्रीय कल्पनाके द्योतक निशान लिये रहते थे। लेकिन इस क्लबके द्वारा कोई प्रत्यक्ष राष्ट्रीय कार्य्य नहीं हुआ। इसमें प्रधानतः इसी बातका विचार होता था कि ललितकला और साहित्य आदिके द्वारा राष्ट्रीयताकी कल्पनाका किस प्रकार पोषण किया जा सकता है। लेकिन आन्दोलनका क्रम जो एक बार बिगड़ा वह सदाके लिए बिगड़ गया। पार्लमेण्टके सौ आयरिश सभासदोंमेंसे पचीससे अधिक सभासद् ओकानेलको नहीं मानते थे। आगे चलकर धीरे धीरे वह स्थिति आगई जब कि 'रिपील' का कहीं नाम भी न सुनाई पड़ने लगा। सन् १८४६ और १८४७ में आयर्लैण्डमें भयंकर अकाल पड़ा और इस अकालके सामने राजकीय आन्दोलन ठण्डा पड़ गया। लेकिन अकालकी पीड़ा देखकर कुछ आयरिश युवकोंने यह समझा कि इन सब बुराइयों-की जड़ इंग्लैण्ड है, और इसी लिए वे लोग जामेसे बाहर हो गये। अकालकी पीड़ा कम करनेके लिए जो प्रयत्न चाहिए था वह तो उन्होंने किया नहीं, क्योंकि वे लोग समझते थे कि बिना जड़ काटे, बिना मूल रोगको नष्ट किये केवल रोगके चिह्नको नष्ट करनेसे कोई काम नहीं है। आजतक 'नेशन' समाचारपत्र जिस पक्षका नेता था उस पक्षने स्पष्ट रूपसे कभी यह नहीं कहा था कि इंग्लैण्डके विरुद्ध विद्रोह करना चाहिए। लेकिन नेशनके सम्पादकोंमेंसे जान मिचेलने एक स्वतंत्र समाचारपत्र निकालकर अब खुलेआम विद्रोहका उपदेश करना आरम्भ कर दिया। वह यह भी कहने लगा कि—"काश्तकार लोग

जमींदारोंको लगान देकर अपने लड़के बच्चोंको भूखों मारनेकी अपेक्षा उन्हें लगान न देना ही निश्चय करें; और यदि आवश्यकता हो तो उस निश्चयको कार्य्यरूपमें परिणत करनेके लिए अपने प्राण तक दे दें, क्यों कि इसीमें राष्ट्रका लाभ है।" उस पर मुकद्मा चला और वह चौदह बरसके लिए कालेपानी भेज दिया गया। मिचेलको यह आशा थी कि जब मुझ पर मुकद्मा चलेगा और मेरे जेल जानेकी बारी आवेगी तब लोग बलवा करेंगे; लेकिन उसकी यह आशा व्यर्थ हुई, लोग अपनी अपनी जगह चुपचाप दबके रहे। लोगोंने बहुत प्रतीक्षा की, लेकिन सुधार होनेका कोई चिह्न दिखाई न देता था। तब अंतमें डिलन, डफी, ओब्रायन आदि ऐसे नेताओंने जिन्होंने इस सम्बन्धमें बहुत दिनों तक विचार किया था, अन्तमें विवश होकर विद्रोहका मार्ग स्वीकार किया। इस विद्रोहमें उनके सफल होनेकी कोई आशा नहीं थी, लेकिन केवल इसी विचारसे वे लोग विवश होकर विद्रोहमें प्रवृत्त हुए थे कि आज तक जितना आन्दोलन हुआ है उसे अंततक पहुँचानेका और कोई मार्ग नहीं है और यदि इस समय हम लोग विद्रोहमें सम्मिलित न होंगे तो आज तकका हम लोगोंका बकना-झकना व्यर्थ हो जायगा। तदनुसार उन्होंने छोटे मोटे विद्रोह भी किये, पर सब लोग पकड़े गये और उन्हें काले पानीका दण्ड हुआ। सन् १८४८,१८५८ और १८६७ ये तीनों साल विद्रोहके थे और इस बीचका समय आयर्लैण्डके लिए बहुत ही बुरा बीता। अकाल, काश्तकारों और जमींदारोंकी मारपीट, विद्रोह और पार्लमेण्टके स्वार्थी सभासदोंके फेरमें 'राष्ट्र' तो किसीको दिखाई ही न देता था। अँगरेज अधिकारियोंका काम खाली कानूनकी पाबंदी करना ही रह गया था। इस बीस वर्षोंकी अवधिमें सन् १८६७ में विद्रोह तो मानों अपनी चरम सीमातक पहुँच गया।

पर यह बात भी देखने लायक है कि इतिहासमें भिन्न भिन्न बातोंका जोड़ किस तरह बैठता है। १८६७ के उपरांत तीन वर्षतक आयर्लैण्डमें

किसी प्रकारका आन्दोलन नहीं हुआ। लेकिन सन् १८७० में एक दम-से आयर्लैण्डमें कुछ नई ही बातें आरंभ हुईं। इस वर्षके मई महीनेमें डब्लिनके एक प्रतिष्ठित भोजनगृहमें आयरिश नेताओंकी एक सभा हुई। इस सभामें सब प्रकारके और विशेषतः कंसर्वेटिव मतके लोग आये थे। ग्लैडस्टन साहबने अभी हालमें ही प्रोटेस्टेण्ट धर्म्ममंडल तोड़ा था, इस लिए कंसर्वेटिव और प्रोटेस्टेण्ट लोग ब्रिटिश पार्लमेण्टसे नाराज हो गये थे। आयरिश लोगोंके सुख-दुःख-संबंधी कायदे-कानून बनानेके सब सूत्र अँगरेजोंके हाथमें चले गये और अब वे लोग जो नाच नचाते वही आयरिश लोगोंको नाचना पड़ता। यह बात कंसर्वेटिव लोगोंको भी बुरी जान पड़ने लगी। यद्यपि कैथोलिक लोगोंको ग्लैडस्टन साहबका यह धर्ममण्डल तोड़नेका कार्य्य अवश्य अच्छा लगा; परन्तु स्वतंत्र पार्लमेण्ट प्राप्त करनेके लिए ओकानेल और उसके अनुयायियोंके बहुत दिनों तक आन्दोलन करनेके कारण आयर्लैण्डके स्वराज्यके संबन्धमें कैथोलिक लोगोंमें एक मत था; और चाहे इस प्रकार-के भिन्न भिन्न कारणोंसे ही क्यों न हो परंतु स्वतंत्र पार्लमेण्टके संबंध-में कैथोलिक और प्रोटेस्टेण्ट लोगोंका मत इस समय एक हो गया था। उक्त सभामें कंसर्वेटिव मतके लोग ही अधिक आये थे। ओकानेलका प्रतिपक्षी आइजिक बट भी इस सभामें उपस्थित था। लेकिन समयका गुण भी बड़ा चमत्कारिक होता है। इस अवसर पर बटके मनमें भी स्वतंत्र पार्लमेण्टके लिए स्फूर्ति उत्पन्न हुई और उसने सभाका नेतृत्व ग्रहण किया। उसकी सूचना पर इस सभाने ‘ होमरूल ’ माँग-नेके संबंधमें एक प्रस्ताव स्वीकृत किया। इस निश्चयमें यह कहा गया था कि—“सारे आयर्लैण्ड राष्ट्रके लिए जिन कानूनोंकी आवश्यकता हो उनके बनानेका अधिकार रखनेका अधिकार रखनेवाली एक स्वतंत्र पार्लमेण्ट अर्थात् हाउस आफ कामन्स और हाउस आफ लार्ड्स

आयर्लैण्डको मिले। इस आयरिश पार्लमेण्टका अधिकार आयर्लैण्डके अधिकारियोंके हाथमें रहे; इंग्लैण्डका जो राजा हो, आयर्लैण्डका भी वही राजा हो; आयर्लैण्डमें कर लगाने अथवा उठानेका अधिकार केवल आयरिश पार्लमेण्टको हो, लेकिन आयर्लैण्ड ब्रिटिश साम्राज्यका एक भाग होगा; अतः साम्राज्य चलानेके लिए जो खर्च होगा उसका उचित अंश आयर्लैण्डके खजानेसे इंग्लैण्डको दिया जायगा। दूसरे राष्ट्रोंके साथ संधियाँ और निश्चय आदि सब ब्रिटिश पार्लमेण्ट ही करेगी और साम्राज्यसंबंधी सब कायदे भी वही बनावेगी।" होमरूलके संबंधमें आयर्लैण्ड और इंग्लैण्डमें आगे चलकर जो आन्दोलन हुए उनकी नींव यही 'निश्चय' है।

ऊपर कहा जा चुका है कि आइजिक बट ब्रिटिश पार्लमेण्टमें ओकानेलके प्रतिपक्षीकी हैसियतसे काम करता था; और ओकानेलकी मृत्युतक कन्सर्वेटिव लोग बटको प्रसन्न करनेके लिए उसका आदर करते थे। लेकिन ओकानेलकी मृत्युके उपरांत उन लोगोंने उसे मानना छोड़ दिया। इसके अतिरिक्त आयर्लैण्डके संबंधमें उनकी पूरी अनास्था देखकर बटने भी यह बात अच्छी तरह समझ ली कि अब उन लोगोंके साथ लगे रहनेमें कोई लाभ नहीं है। इस प्रकार वह होमरूल माँगनेके लिए प्रवृत्त हुआ और कर्म्मधर्मसंयोगसे ओकानेलके स्वयं प्रतिपक्षीके हाथसे, उसके चलाये हुए 'रिपील' के आन्दोलनका झंडा इससभामें खड़ा किया गया। सन १८७४ में जब पार्लमेण्टका नया चुनाव हुआ तब होमरूलके आन्दोलनके समर्थक चौंसठ सभासद आयर्लैण्डसे चुने गये। उनमें आइजिक बट भी था; लेकिन वह उस समय बुड्ढा हो चला था, इस लिए पार्लमेण्टका जो काम उसके द्वारा होना चाहिए था वह अच्छी तरह नहीं होता था। उसी समय सौभाग्यसे प्रसिद्ध आयरिश देशभक्त पार्नेल मैदानमें आया। सन १८७५ में मीथ नगरकी ओरसे पार्लमेण्टमें उसका

चुनाव हुआ। वह नियमानुमोदित आन्दोलन करनेवाला था, इस लिए पार्लमेण्टका काम-काज करनेकी पद्धति उसे अच्छी लगती थी; और वह इस सभामें काम करनेके लिए सब प्रकारसे योग्य भी था। पार्लमेण्टके नियम उसे कंठस्थ थे; उनका अन्वय लगाने और मीमांसा करनेमें वह पूरा पण्डित था। पार्लमेण्टके नियमोंकी सहायतासे सूचनायें उपस्थित करके और भाषण आदि करके उसने और उसके अनुयायियोंने मंत्रिमंडलकी नाकमें दम कर दिया। इन सब कामोंमें उसका मुख्य उद्देश्य यही था कि किसी न किसी तौरसे आयरिश लोगोंकी शिकायतोंकी ओर पार्लमेण्टके सभासदोंका ध्यान आकृष्ट किया जाय। मंत्रिमण्डल चाहे किसी पक्षका हो, बहुमत उसके पक्षमें रहता ही है और उसके बल पर अँगरेजोंके सुखदुःख संबंधी कानूनोंका झगड़ा जब तक जी चाहे तब तक चलाया जा सकता है। आयरिश हितका ध्यान रखनेवाले सभासद् बहुत हुए तो ८० या १०० होंगे; तब भला उनके भाषणों या सूचनाओंकी ओर कौन ध्यान देता है? आयरिश लोगोंके सुखदुःखकी परवा न करते हुए पार्लमेण्टकी गाड़ी वे लोग जिस तरह चाहते उस तरह चला सकते थे। लेकिन पार्नेलकी इस युक्तिसे मंत्रिमण्डलके नित्यक्रममें अड़चनें पड़ने लगीं। आइजिक बटको यह मार्ग पसंद नहीं था। उसका सारा जन्म शिष्टताके व्यवहारमें ही बीता था। उसका यह मत था कि पार्लमेण्टके कामोंमें बिना कारण अड़चन डालनेसे हमें तो कोई लाभ होगा नहीं; हाँ ब्रिटिश मंत्रिमण्डल बिना कारण रुष्ट अवश्य हो जायगा; और सीधी तरहसे रहने पर कभी कभी उससे जो थोड़ी बहुत प्राप्तिकी आशा रह सकती है, इस अवस्थामें वह भी न रह जायगी। लेकिन पार्नेल, उद्योगी और उत्साही था, इसलिए उसके सामने किसीकी कुछ भी न चलती थी। बट पार्लमेण्ट छोड़कर आयर्लैण्डमें जा रहा और सन् १८७९ में मर गया। पार्नेलको बिगर, माइकेल

डेविट, शॉ आदि लोगोंकी सहायता मिली। सन् १८८० में पार्लमेण्ट-का नया चुनाव हुआ, उसमें आयर्लैण्डके सब पक्षोंने मिलकर लिबरल पक्षकी सहायता की, जिससे उस पक्षके नेता ग्लैडस्टन साहबके मनमें पार्नेलके संबंधमें आदर उत्पन्न हुआ और उन्हें विश्वास हो गया कि वह काम करनेवाला और प्रभावशाली आदमी है। नई पार्लमेण्टमें लिबरल पक्ष चार ही वर्षतक अधिकारारूढ़ रहा। इस बीचमें जमीनके सम्बन्धमें आयरिश काश्तकारोंकी क्षतिपूर्तिके सम्बन्धमें प्रश्न उठे, और आयरिश लोगोंके अनुकूल कुछ कानून भी बने; लेकिन होमरूलका बिल उपस्थित करनेमें और भी दो बरस लग गये।

सन् १८८५ ई० में लार्ड करनारवन आयर्लैण्डका वाइसराय था। उस समय उसने आयरिश लोगोंसे मिलकर होमरूलके सम्बन्धमें उन्हें आधे-तीहे वचन भी दिये थे। लेकिन जब तक ग्लैडस्टन साहब सरीखे नेताने होमरूलके काममें हाथ नहीं लगाया तब तक होमरूलके आन्दो-लनने विशेष स्वरूप धारण नहीं किया। अंतको १८ अप्रैल सन् १८८६ के दिन आयर्लैण्डको स्वतंत्र पार्लमेण्ट देनेके संबंधमें एक बिल पार्लमेण्टमें उपस्थित हुआ। इस बिलका नाम होमरूल बिल नहीं था, बल्कि 'आयरिश राजकार्य्यका बिल' था, तोभी इस बिलके सम्बन्धमें इंलैण्डमें बहुत हो-हल्ला हुआ। कन्सर्वेटिव पक्षने विकारवश इंग्लैण्डके लोगोंको उत्तेजित करके ग्लैडस्टन साहबके विरुद्ध बहुत रौला मचाया; जैसा पुराने जमानेमें चार्ल्स राजाके राजत्वकालमें 'कैवेलियर' और 'राउण्ड हेड' नामके दो पक्षोंमें झगड़ा हुआ था, ठीक वैसा ही झगड़ा इस समय आयरिश होमरूलके अनुकूल और प्रतिकूल लोगोंमें खड़ा हो गया। इतना ही हुआ कि प्रत्यक्ष लड़ाई नहीं हो गई। कोई किसीका मुँह नहीं देखता था; एकके क्लबमें दूसरा घुसने नहीं पाता था; घरोंमें प्रतिपक्षियोंके जो चित्र टँगे हुए थे, वे भी उतारकर फेंक दिये गये थे!

यहाँ तक नौबत पहुँच गई। ग्लैडस्टनके पक्षमें रह कर सदा उसकी सहायता करनेवाले ब्राइट, लार्ड हारटिंगटन, चेम्बरलेन आदि राजनीतिज्ञ लोग मंत्रीके पदसे इस्तीफा देकर घर बैठे। लेकिन प्रधान मंत्री ग्लैडस्टन और आयलैंण्डके स्टेट सेक्रेटरी जान मार्लेने अपना निश्चय नहीं छोड़ा। इस बिलमें कहा गया था कि आयलैंण्डको अलग पार्लमेण्ट मिले। उसमें ऐसी योजना की गई थी कि हाउस आफ लार्ड्समें २८ सभासद तो ऐसे हों जो आजन्म सभासद रहें और ७५ ऐसे हों जो उस वर्षके लिए चुने जायँ और इनका चुनाव कुछ निश्चय आयवाले मत-दाता किया करें; और हाउस आफ कामन्समें पाँच वर्षके लिए चुने हुए २०४ सभासद रहें। यह बिल आयरिश होमरूल पक्षको मान्य था। लेकिन ७ जूनके दिन होमरूल बिलके विरुद्ध ३० मत अधिक आये, जिससे ग्लैडस्टन साहबकी हार हुई और उन्होंने प्रधान मंत्रीके पदसे इस्तीफा दे दिया। दूसरे महीने जब नया चुनाव हुआ तब उसमें अधिकांश ऐसे ही लोग चुने गये, जो होमरूलके विरुद्ध थे। लेकिन आगे चलकर सात बरसमें धीरे धीरे होमरूलके अनुकूल मत बढ़ने लगा। उस समय बालफोर स्टेट सेक्रेटरी थे, उन्होंने दमनकारक नियमोंका पालन बड़ी कड़ाईसे किया। उनकी इस कार्रवाईसे आयरिश लोग तो चुप नहीं हुए, उलटे उनके नेता पार्नेलने उन लिबरल लोगोंको भी होमरूलके अनुकूल कर लिया जो पहले उसके प्रतिकूल थे। सन् १८८८ में पार्नेल पर यह अभियोग लगाया गया कि—"वह खून-खराबी करनेके लिए उत्तेजन देनेवाले लोगोंमेंसे है, और सन् १८८२ ई० में फिनिक्सपार्कमें बर्क और कैवेंडिस नामक अधिकारियोंकी जो हत्या हुई थी वह उसीकी सम्मतिसे हुई थी।" कमीशनके द्वारा इस अभियोगकी जाँच हुई। जिन पत्रोंके आधार पर अभियोग लगाया था वे पत्र बनावटी सिद्ध हुए और उनके लिखनेवालेने आत्महत्या कर डाली। कमीशनके

सामने पार्नेलके निर्दोष प्रमाणित होने पर उसका और उसके साथ ही साथ होमरुल पक्षका भी महत्त्व बढ़ गया, लेकिन आगे चलकर शीघ्र ही पार्नेल पर कैप्टन ओसिया नामक एक गृहस्थकी स्त्रीको निकाल ले जानेके कारण दीवानीमें नालिश हुई और उसका महत्त्व एकदम कम हो गया। ग्लैडस्टन साहबने आग्रह किया कि पार्नेल होमरूलका नेतृत्व छोड़ दे, पर पार्नेल यह बात नहीं मानता था। इसके लिए झगड़े हुए और वह नेतृत्वसे अलग कर दिया गया। आगे चलकर नये चुनावमें पार्नेलके पक्षके रेडमंड आदि केवल नौ सभासद पार्लमेण्टमें चुने गये। इन बातोंसे होमरूलके कार्य्यमें फिर बड़ा भारी धक्का लगा।

लेकिन इस संकटके समय ग्लैडस्टन साहबने बहुत ही विचारशीलता और गंभीरताका काम किया। सन् १८९३ ई० में उन्होंने अपना दूसरा होमरूल बिल पार्लमेण्टके सामने उपस्थित किया। पहले बिलमें लोगोंको जो धारायें नापसंद थीं वे इस बिलमेंसे निकाल दी गई थीं। यह नई योजना इस प्रकार की गई थी कि पार्लमेण्टमें आजतक जो १०३ आयरिश सभासद बैठते हैं, वे आगेसे केवल ८० ही बैठा करें; लेकिन केवल ग्रेटब्रिटनके हितके संबंधके जो प्रश्न उठें उनके संबंधमें ये लोग कोई सम्मति न दें; और आयर्लैण्डको पहलेकी तरह नई पार्लमेण्ट दी जाय। सितंबर महीनेकी पहली तारीखको ३४ अधिक मतोंसे यह बिल हाउस आफ कामन्समें पास हुआ; लेकिन लार्ड सभा पहलेसे ही इसे तिलांजुली देनेके लिए तैयार बैठी थी; उसने ४१९ विरुद्ध और ४१ अनु-कूल मतोंसे यह अस्वीकृत कर दिया। इस प्रकार ग्लैडस्टन साहबका प्रायः आठ वर्षोंका और पार्नेलका पंद्रह वर्षोंका प्रयत्न व्यर्थ हो गया। ३ मार्च सन् १८९४ को ग्लैडस्टन साहबने वृद्ध हो जानेके कारण प्रधान मंत्रीके पदसे इस्तीफा दिया और लार्ड रोजबरीने उनका स्थान लिया। लेकिन होमरूलके संबंधमें वे कुछ पीछे हटे। उन्होंने यह प्रकट किया कि

जबतक आयरिश लोगोंको फिरसे पार्नेल सरीखा नेता न मिले तबतक यह प्रश्न उपस्थित होना सम्भव नहीं है; और ज्यों ज्यों दिन बीतते गये त्यों त्यों उनका मत होमरूलके प्रतिकूल ही होता गया। इंग्लैण्डके लोकमतका प्रवाह भी उस समय आयरिश होमरूलके विरुद्ध ही था। कान्सर्वेटिव लोगोंने भी अधिकारारूढ़ रहकर जमीन और स्थानिक स्वराज्यके संबंधमें आयरिश लोगोंकी इच्छाके अनुकूल कानून आदि बना दिये थे, जिससे उनकी न्यायपरताके सम्बन्धमें आयर्लैण्डमें किंचित् आदर भी उत्पन्न हो गया था। लेकिन सबसे मुख्य बात यह थी कि आयरिश लोगोंमें आन्दोलनके मार्गके गुण-दोषके सम्बन्धमें मतभेद हो गया था। एक पक्ष तो रेडमण्ड साहबका था, जो केवल पार्लमेण्टके आन्दोलन पर ही निर्भर रहनेवाला था, और दूसरा पक्ष 'गेलिक अमेरिकन' आदि समाचार-पत्रोंका था। इस दूसरे पक्षका कहना यह था कि ब्रिटिश सरकार और राष्ट्रका पूर्ण रूपसे बहिष्कार करके पार्लमेण्टमें बैठना छोड़ दिया जाय और केवल स्वावलंबनके तत्त्व पर निर्भर रहकर आयरिश प्रजा सब ओरसे आप ही अपने राष्ट्रका सुधार करे, अर्थात् उस पक्षमें होमरूलके संबंधमें जरा भी उत्साह नहीं था। 'फिर बैताल उसी पेड़ पर जा लटका' वाले न्यायसे 'होमरूल' या 'रिपील' का प्रश्न उन दिनों भी उसी दशामें था, जिस दशामें उन्नीसवीं शताब्दीके आरंभमें आइजिक बट, ओकानेल अथवा ग्रटनके समयमें था। उस समय यही समझा जाता था कि स्वराज्यके लिए गत वर्षोंमें जो आन्दोलन और प्रयत्न हुआ वह सब व्यर्थ गया।

आयरिश राष्ट्रको होमरूल देना सन् १७८२ वाली स्वतंत्र पार्लमेण्टकी अपेक्षा बहुत ही छोटा दान देना था। इसके लिए बहुत लोगोंको आश्चर्य हो सकता है कि उसे देनेमें भी इतना झगड़ा क्यों

खड़ा किया जाता था। लेकिन जिस तरह मछलीका निगला हुआ मानिक लौटना कठिन होता है उसी तरह हाथसे गई हुई राजकीय स्वतंत्रताका वापस होना भी कठिन है। स्वतंत्रता देने और लेनेवाले दोनोंके लिए ही यह काम बहुत कठिन होता है। माँगनेवालोंकी तो खैर कोई बात ही नहीं है, परन्तु जिन्हें देना पड़ता है उन्हें न देनेके बहुतसे कारण या बहाने सूझने लगते हैं। साधारण लोग कहने लगते हैं कि जो होना था वह तो हो गया, अब आगे बतलाओ क्या कहते हो। लेकिन ग्लैडस्टन साहब सामान्य कोटिके मनुष्य नहीं थे; उन्हें यह भोले भावका युक्तिवाद पसंद नहीं था। अपनी युवावस्थासे ही आयर्लैण्डका हाथ पकड़कर उस निराश्रित राष्ट्रके लिए उन्होंने जो लड़ना आरंभ किया था वह उन्होंने अपने जीवनके अंत तक जारी रक्खा। लेकिन केवल कालकी गतिसे ही होमरूलके प्रतिपक्षियोंमें इतना बल आ गया था, जिसका प्रतिकार ग्लैडस्टन साहब सरीखे नेता भी न कर सके थे। कालकी इसी गतिके कारण लोग कहने लगे थे कि " इस समय जो अवस्था है वही अच्छी है, उसे बनाये रखकर आयर्लैण्डके साथ जो कुछ न्याय करना हो वह किया जाय। " उस समय होमरूलका प्रश्न वादग्रस्त था। यद्यपि उस समय कन्सर्वेटिव पक्षका जोर कम नहीं हुआ था तथापि 'रेडिकल' और 'सोशियालिस्ट' पक्ष जो आगे चलकर जोर पकड़नेवाले थे, आयर्लैण्डको होमरूल देनेके पूर्ण अनुकूल थे। इससे कुछ ही दिन पहले अधिकारविभागके रूपमें एक बिल बिरेल साहबने पार्लमेण्टमें उपस्थित किया था। लेकिन आयरिश राष्ट्रीय पक्षको यह आशा हो गई थी कि जल्दी ही हमें प्रत्यक्ष होमरूल मिल जायगा; इस लिए होमरूलकी पूरी रोटीकी आशा पर उन्होंने अधिकारविभागकी आधी रोटी छोड़ दी। होमरूलकी यह सारी रोटी उन्हें कैसे और कहाँ तक मिली, यह बतलानेसे पहले हम संक्षेपमें यह बतला देना चाहते हैं कि

होमरूलके पक्षपातियोंका कथन क्या था और उसके विरोधी क्या कहते थे ।

निष्पक्ष लोग होमरूलके अनुकूल ये युक्तियाँ उपस्थित करते थे—"सन् १८०० में आयरिश पार्लमेण्ट तोड़कर ब्रिटिश पार्लमेण्टमें मिलाना मानों एक राष्ट्रका पैर दूसरे राष्ट्रके पैरमें बाँधना था। यदि यह पैर खोलकर आयर्लैण्डको पहलेकी तरह स्वतंत्र पार्लमेण्ट न देना हो तो भी कोई ऐसा मार्ग निकालना चाहिए जिससे दोनोंको सुख हो। स्थानिक पार्लमेण्ट न होनेके कारण आयरिश लोगोंके केवल स्थानिक महत्त्वके प्रश्न भी ब्रिटिश पार्लमेण्टमें उपस्थित करके ब्रिटिश सभासदोंका समय व्यर्थ नष्ट करना पड़ता है। आयरिश और ब्रिटिश दोनों राष्ट्रोंकी रीति-नीति, रुचि, पसन्द, सिद्धान्त और नियम आदि एक दूसरेसे बिलकुल भिन्न हैं। इस लिए स्थानिक कार्य्योंमें ब्रिटिश सभासदोंसे क्यों हस्तक्षेप कराया जाय ? और ऐसे पाँच सौ पराये सभासदोंके भ्रम या दुराग्रहके कारण फुटकर बातोंमें आयर्लण्डकी हानि क्यों हो ? स्थानिक अधिकारकी भी यदि अँगरेज ही देखभाल करेंगे तो फिर आयरिश लोग अपना काम आप करना और सँभालना कब और कैसे सीखेंगे ? और बहुत दिनों तक इन कामोंके दूसरोंके हाथोंमें रहनेसे आयरिश लोगोंकी काम करनेकी शक्ति क्यों न नष्ट हो जायगी और वे निर्बल क्यों न हो जाएँगे ? फुटकर और स्थानिक महत्त्वके काम आप ही करने चाहिए, उस दशामें वे चाहे जैसे हों, अच्छे ही होते हैं। इंग्लेण्डको उससे कुछ लाभ भी नहीं है। पार्लमेण्टमें आयरिश हिताहितका बिल उपस्थित होते ही व्यर्थका वितंडावाद बढ़ जाता है, बहुतसा समय नष्ट होता है और अँगरेजोंके हिताहितके बिल पड़े रह जाते हैं। ब्रिटिश राज्यके रक्षण, सेना, उसके व्यय आदिकी बातें दोनोंके हितकी हैं; इसलिए उन बातोंका विचार दोनों मिलकर करें। लेकिन यदि अपनी म्युनि-

सिपैलिटियोंके सभासदों अथवा अस्पतालों आदिकी संख्या आयरिश लोग स्वयं ही निश्चित करें तो इसमें कोई क्यों बोले ? सभ्यताका सिद्धांत यही है कि सब लोग अपना अपना काम आप करें; इस कहनेका कोई अर्थ नहीं है कि कुछ विषयोंमें स्वतंत्रता पाकर वे बाकी बातोंमें भी स्वतंत्रता माँगने लगेंगे। केवल इस लिए उन्हें युक्त अधिकार भी न देना कि वे आगे चलकर अयुक्त अधिकार माँगेंगे, न्याय नहीं है। कुछ न देनेसे आज जो असंतोष और निराशा है वह कुछ दे देनेसे दब जायगी और आगे अधिक मिलनेकी आशासे वे संतोष प्रकट करेंगे। जहाँ स्वराज्य दिया जाता है वहाँ लोग संतुष्ट और राजनिष्ठ रहते हुए ही दिखाई देते हैं। आयरिश लोग भी ऐसे ही रहेंगे क्योंकि वे जानते हैं कि शुद्ध स्वतंत्रता मिलनेके मार्गमें कौन कौन सी अड़चनें हैं। प्रत्येक राष्ट्रकी उन्नति और सम्पन्नताके लिए कुछ कुछ नियमित स्वतंत्रता आवश्यक होती है। स्वतंत्र होनेके कारण अँगरेजी उपनिवेश जिस प्रकार संतुष्ट और सम्पन्न होकर अँगरेजी साम्राज्यका हित चिंतन करते हैं और उसके संरक्षणमें सहायता करने लगे हैं, वैसे ही आयर्लैण्ड भी क्यों न करेगा ? आयरिश पार्लमेण्टको उसके अधिकार बतला देनेसे दोनों राष्ट्र सुखी होंगे और ब्रिटिश तथा आयरिशपार्लमेंटमें कोई विरोध न रह जायगा। पहलेकी स्वतंत्र पार्लमेंटमें जो दोष थे उन्हें निकाल दीजिए और उसे स्वतंत्र कर दीजिए। आयर्लैण्डमें भिन्न भिन्न धर्म हैं सही, पर अब उनकी धार्मिक-सहिष्णुता बढ़ गई है और धार्मिक विरोध दूर करनेका उत्तम मार्ग यह है कि उन्हें ऐसे काम दिये जायँ जिसमें उन सबका समान हित हो। देशहितके काम बिनाकारण दूसरोंके हाथमें रहने पर यदि आयरिश लोग आपसमें ही लड़ें और बैर बढ़ायें तो इसमें आश्चर्य्य ही क्या है ? एकताके लिए, खाली रहनेकी

अपेक्षा काममें लगा रहना अधिक उपयोगी होता है । व्यक्तिविषयक विचारोंकी अपेक्षा जब अधिक व्यापक और महत्त्वपूर्ण काम लोगोंको मिलेंगे तभी मत-भेदके गुण बचेंगे और दोष दूर होंगे। होमरूल न देनेसे इंग्लैण्ड भी सुखी नहीं है । असंतुष्ट देशोंमें केवल तलवारके भरोसे राज्य चलाया जाता है, लेकिन आयर्लैण्ड पर केवल तलवारके भरोसे इंग्लैण्ड-का राज्य नहीं रह सकता । उलटे होमरूल देनेसे आयरिश लोग संतुष्ट होंगे; शिक्षा और व्यापार बढ़ावेंगे; दरिद्रता दूर होनेके कारण इंग्लैण्ड-का माल अधिक लेंगे; संकटके समय इंग्लैण्डकी सहायता करेंगे; आज जो लोग देश छोड़कर विदेश जाते हैं वे न जायँगे; जो अँगरेज जमी-दार इंग्लैण्डमें रहते हैं वे आयर्लैण्ड चले जायँगे; देशकी जन-संख्या और शक्ति बढ़ेगी; इंग्लैण्ड पर जो यह अभियोग लगाया जाता है कि सौ बरसोंमें उसने आयर्लैण्डका मांस नोच नोच कर खालिया, उस अभियोगसे छुटकारा होगा; आयर्लैण्डको स्वयं अपनी उन्नति करनेका अवसर देने-का श्रेय इंग्लैण्डको मिलेगा और उसकी भावी स्थितिका उत्तरदायित्व इंग्लैण्ड पर नहीं रह जायगा । आज आयरिश लोगोंके मुँहसे जो गालियाँ सुननी पड़ती हैं वे न सुननी पड़ेंगी और संसार कहने लग जायगा कि एक सभ्य राष्ट्रकी हैसियतसे इंग्लैंडका जो कर्तव्य था उसका उसने पालन किया । ”

होमरूलके विरोधियोंका कहना था—“ राज्यव्यवस्थाका एकतंत्री रहना ही अच्छा है । वास्तवमें होमरूल देना ही पैरके साथ पैर बाँधना है, क्योंकि कानून बनानेका काम कुछ आयर्लैण्डमें और कुछ इंग्लैण्डमें होगा । उपनिवेश पहलेसे ही अलग हुआ करते हैं, उन्हें स्वराज्य देनेसे उनकी साम्राज्य-निष्ठा दृढ़ होती है और इस प्रकार उन्हें और इंग्लै-ण्डको एक करनेके लिए एक नया बंधन तैयार होता है । लेकिन आय-र्लैण्डको होमरूल देना मानो वह बंधन तोड़ डालना है । सब तरहसे

भिन्न दो राष्ट्रोंको यदि अलग अलग स्वतंत्र पार्लमेण्ट दे दी जायगी तो फिर उनमें स्नेह-भाव रहनेका कौनसा कारण रह जायगा ? उपनिवेश-वालोंको आयरिश लोगोंकी अपेक्षा स्वराज्यके जो अधिक अधिकार हैं उसका कारण यह है कि उनकी ओरसे ब्रिटिश पार्लमेण्टमें कोई सभासद् नहीं रहता; पर आयर्लैण्डके तो सौसे अधिक प्रतिनिधि पार्लमेण्टमें रहते हैं; तब फिर वे शिकायत क्यों करें ? सौ आद-मियोंको पार्लमेंण्टके सामने अपनी शिकायतें पेश करनेमें कभी कठिनता नहीं होनी चाहिए। यदि यह भी मान लिया जाय कि उपनिवे-शवाले स्वराज्यका दुरुपयोग करके स्वतंत्र हो गये तो भी—उसमें इंग्लैण्डकी कोई प्रत्यक्ष हानि नहीं है। अठारहवीं शताब्दीमें अमेरिका स्वतंत्र हुआ तथापि उससे इंग्लैण्डमें कोई कमी नहीं आई; परंतु होमरूलका दुरुपयोग करके यदि आयर्लैण्ड स्वतंत्र हो गया तो इंग्लैण्डको वैसा ही पश्चात्ताप करना पड़ेगा जैसा किसीको अपने दरवाजे पर ही अपने परम शत्रुका मकान बनवा देनेसे होता है। 'चैनेल आयर्लैण्ड' और 'आइल आफ मैन' के छोटे टापुओंमें भी स्वतंत्र पार्लमेण्ट है। पर वे बेचारे जरासे टापू अपनी शक्तिका दुरुपयोग करके इंग्लैण्डकी क्या हानि करेंगे ? लेकिन आयर्लैण्ड इतना बड़ा है कि वह त्रासदायक हो सकता है। यह कहना बहुत ही सहज है कि होमरूल देनेके समय आय-र्लैंडके अधिकार निश्चित कर दिये जायँ, लेकिन इस कामको प्रत्यक्ष करनेमें बहुतसी अड़चनें हैं। स्थानिक कार्य्य कौनसा है और साम्राज्य सबंधी कौनसा है, इसकी सीमा स्वयं ग्लैडस्टन साहबसे भी अच्छी तरहसे निश्चित न हो सकी थी और उसके संबंधमें आयरिश लोगोंमें भी मतैक्य नहीं होता। इसके सिवा स्थानिक विषयोंमें भी तत्त्वके प्रश्नोंका निश्चित करना ब्रिटिश पार्लमेंटके लिए ही आवश्यक है। कहनेमें तो यह बात बहुत ही ठीक जान पड़ती है कि आयरिश पार्लमेंट

अपने कर आप ही लगावे और खिराजकी रकम इंग्लैडको दे दिया करे। पर यदि कर वसूल करके आयरिश पार्लमेंट खिराज न दे तो फिर लड़ाईकी ही नौबत आवेगी। वर्तमान स्थितिमें इंग्लेंडको आयर्लैंडमें खिराज वसूल करनेमें कोई कठिनता नहीं होती। होमरूल पाकर आयरिश पार्लमेंट पहले पहल कदाचित् नम्रताका व्यवहार करे, परंतु जब उसके पुरानी स्वतंत्रताके विचार उठेंगे तब क्या सन् १७८२ और १८०० की पुनरावृत्ति न होगी? एक पार्लमेंटमें दो राष्ट्रोंके प्रतिनिधियोंका लड़ना और बात है और दो पार्लमेंटोंका परस्पर लड़ना और बात है। पहली तरहके झगड़ेका फैसला बहुमतसे हो सकता है; पर जब दो पार्लमेंटें लड़ने लगेंगी तब उनका झगड़ा निपटानेके लिए तीसरा कौन आवेगा? और फिर अपने हाथका अधिकार छोड़कर इंग्लैंड अपनी चोटी दूसरेके हाथमें क्यों दे? सन् १८०० से अर्थात् जबसे दोनों पार्लमेंटें एक हुई हैं, आयर्लैंडमें जो विद्रोह हुए उनके दमनमें अधिक कठिनता नहीं हुई। परंतु उससे पहले विद्रोहियोंको पार्लमेंटके सभासदोंका भरोसा और सहारा था जिससे वे विद्रोह बहुत ही कष्टदायक हुए और उनका दमन करना कठिन हुआ। यदि आज होमरूल दे दिया जाय तो इसका जिम्मेदार कौन है कि आयरिश लोग उसके बाद और कुछ भी न माँगेंगे। एक चीज देकर दूसरीकी माँग अपने पीछे लगा लेनेसे कभी न कभी आयरिश लोगोंकी माँगका प्रतिरोध ही करना पड़ेगा, इससे पहले ही वह प्रतिरोध करना अच्छा है। आज आयरिश लोग अँगरेजोंसे लड़ते हैं, तो कल हाथमें सत्ता आनेपर आपसमें लड़ने लगेंगे और थोड़ेसे प्रोटेस्टेंटों पर बहुतसे कैथोलिक अत्याचार करने लगेंगे और देशमें भारी विग्रह खड़ा होगा। आयरिश लोगोंकी यदि स्वतंत्र पार्लमेंट भी हो तो उससे क्या होगा? जैसा कि सन् १८९३ में ग्लैडस्टन साहबने सोचा था, यदि आयर्लैण्डको

स्वतंत्र पार्लमेंट देकर उसके कुछ सभासद इंग्लैंडकी पार्लमेंटमें भी रक्खे जायँ तो यह प्रश्न होता है कि जो लाभ स्काटलैंड, वेल्स और उपनिवेशोंमेंसे किसीको नहीं है वह केवल आयर्लैंडको ही क्यों हो ? सौ वर्षोंसे ब्रिटिश पार्लमेण्ट सभाकी न्यायबुद्धि और संरक्षणके भरोसे पर अलस्टर आदि प्रांतोंमें प्रोटेस्टेंट व्यापारियोंने जो लाखों रुपये व्यापारमें लगाये हैं, होमरूल देनेसे उन व्यापारोंको धक्का न पहुँचनेका जिम्मेदार कौन होगा ? तात्पर्य्य यह कि होमरूल देना मानों अँधेरेमें कूदना, हाथकी चिड़िया छोड़कर उड़तीहुईके पीछे दौड़ना है । और यह सब इसीलिए न कि जिसमें इंग्लैंडको लोग सभ्य राष्ट्र और उसके राज्यकर्म्मचारियोंको राजनीतिज्ञ कहें ? इसमें लाभकी अपेक्षा हानि ही अधिक है । इसलिए इस झगड़ेमें न पड़कर वर्तमान स्थितिमें आयर्लैंडके साथ जो न्याय हो सके वही किया जाय और वही अच्छा समझा जाय । ”

हाथमें आई हुई सत्ता दूसरेको देना हर एक आदमीको बहुत ही खलता है, और इसलिए उस समय वह उलटी सीधी युक्तियाँ लड़ाता है; यह नहीं देखता कि वे युक्तियाँ ठीक होंगी या नहीं । उक्त युक्तिवाद इस सामान्य सिद्धांतका एक उत्कृष्ट उदाहरण है । अस्तु ।

हम ऊपर कह आये हैं कि सन् १८९३ में ग्लैडस्टन साहबने होमरूल बिल उपस्थित किया था जो बहुमतसे नामंजूर हुआ और उनके उपरांत उनके स्थान पर लार्ड रोजबरी हुए जो पहले आयरिश होमरूलके संबंधमें उदासीन थे और पीछे उसके थोड़े बहुत विरोधी भी हो गये थे । लार्ड रोजबरीके उपरांत सर हेनरी केम्बेल बेनर्मन प्रधान मंत्री हुए और उनके उपरांत मि० एस्क्विथने उनका स्थान लिया । उस समय मंत्रिमंडलमें लार्ड मार्ली, जेम्स ब्राइस, आगस्टाइन बिरेल, हर्बर्ट ग्लैडस्टन, लाइड जोन्स, बिंटसन चर्चिल आदि थे जो ग्लैडस्टन साहबके परम

भक्त और अनुयायी थे। आयर्लैंडवाले उस समय होमरूल प्राप्त करनेके प्रयत्नमें थे और इंग्लैंडका लोकमत उसके विरुद्ध था। पर आयर्लैंडवालोंके लिए सबसे अनुकूल बात यह थी कि जबसे ग्लैडस्टन साहबका होमरूल बिल अस्वीकृत हुआ था तबसे लिबरल दल होमरूलका और भी समर्थक और पक्षपाती हो गया था और वह इस चिन्तामें था कि अवसर मिलते ही फिर आयर्लैण्डको होमरूल दिलानेका प्रयत्न किया जाय। सर हेनरी कैम्बेल बेनर्मेनकी मृत्युके उपरांत सन् १९०८ में जब मि० एस्क्विथ उनके स्थान पर प्रधान मंत्री नियुक्त हुए थे, तभी उन्होंने आयर्लैण्डको स्वराज्य दिलानेका विचार किया था। पर वे जानते थे कि हाउस आफ लार्ड्स आयर्लैण्डको स्वराज्य देनेका बहुत विरोधी है और उसके अधिकार भी बहुत अधिक हैं; अतः जब तक उसके अधिकार कम न होंगे तब तक आयर्लैण्डको होमरूल न मिल सकेगा। लार्डोंके अधिकार कम करनेके लिए सन् १९११ में उन्होंने एक बढ़िया युक्ति की। उन्होंने पहले वीटो बिल पास किया। इससे पहले यह नियम था कि हाउस आफ कामन्समें स्वीकृत हो चुकने पर यदि कोई बिल हाउस आफ लार्ड्ससे अस्वीकृत हो जाता तो वह कानून नहीं हो सकता था। अर्थात् बिना हाउस आफ लार्ड्सकी सम्मतिके कोई काम नहीं हो सकता था, पर वीटो बिलके अनुसार यह निश्चित हो गया कि यदि कोई सार्वजनिक बिल कामन्स सभासे लगातार तीन दौरोंमें पास हो जाय और हर बार लार्ड सभा उसे रद कर दे तो सम्राट्की स्वीकृति मिलनेसे ही वह कानून बन जाय; और तब उसमें फिर लार्डसभाकी स्वीकृतिकी आवश्यकता न रह जाय। उसमें एक शर्त यह भी थी कि हाउस आफ कामन्समें किसी बिलके पहले दौरेकी दूसरी आवृत्ति और तीसरे दौरेकी तीसरी आवृत्तिमें दो वर्षका अन्तर रहे। पर यह कोई ऐसी शर्त नहीं थी जिससे होमरूलके बिलमें कुछ विशेष बाधा पड़ती।

इस प्रकार हाउस आफ लार्ड्सके अधिकार कम करके मि० एस्क्किथने होमरूल बिल तैयार किया । वह समय इस बिलकी उपस्थितिके लिए बहुत ही अनुकूल था; क्यों कि सन् १९१० वाले पार्लमेंटके चुनावमें होमरूलके विरोधी यूनियनिस्ट * सभासदों तथा होमरूलके पक्षपाती लिबरल सभासदोंकी संख्या प्रायः समान ही थी, और मि० रेडमण्डका नेशनालिस्ट+ दल इनसे अलग था । यह दल जिस पक्षमें हो जाता स्वभावतः उसीकी जीत होती, और स्वयं यही पक्ष होमरूल माँगता था, इसलिए होमरूलके पक्षपाती आयलैंण्डके नेशनलिस्ट और लिबरल ये दोनों दल एक ओर थे और उनका विरोधी यूनियनिस्ट दल एक ओर । तात्पर्य्य यह कि स्वराज्यके पक्षपातियोंका पल्ला भारी था और उस समय प्रयत्नमें सफलता होनेकी बहुत कुछ सम्भावना थी । जिस समय होमरूल बिल तैयार हुआ और पार्लमेंटमें उसके उपस्थित होनेका समय आया उस समय अलस्टरवालों *

* यूनियनिस्ट दलका मत है कि आयर्लेंडके साथ मिले रहनेमें ही कल्याण है और उसके स्वतंत्र होनेमें उसके साथ साथ साम्राज्यकी भी हानि है । इस दलकी सृष्टि उस समय हुई थी जब कि सन् १८०० में आयरिश पार्लमेण्ट तोड़कर ब्रिटिश पार्लमेण्टमें मिलाई गई थी और 'यूनियन' (सम्मिलन) का कानून पास हुआ था ।

+ आयलैंण्डका नेशनलिस्ट या राष्ट्रीय दल वह है जो यह चाहता है कि आयलैंण्डके समस्त निवासियोंका एक आयरिश राष्ट्र बने और आयलैंण्डको स्वतंत्र पार्लमेण्ट प्राप्त हो ।

* अलस्टर प्रांतमें अधिकतर इंग्लैण्डसे आये हुए प्रोटेस्टेण्ट लोगोंकी ही वस्ती है । ये लोग बहुत सम्पन्न हैं और इनके पास बहुत जायदाद है । इन लोगोंके होमरूलके विरोधी होनेका कारण यह है कि इन्हें भय है कि आयलैंण्डके स्वतंत्र हो जानेपर रोमन कैथोलिक लोग बहुमतसे हमें अनेक प्रकारके कष्ट देगें और हानि पहुँचावेंगे । सौभाग्यवश भारतीय स्वराज्यके संबंधमें भारतीय मुसलमानोंको

तथा यूनियनिस्टोंने पहलेसे ही शोर मचाना और उसका विरोध करना आरम्भ किया। १२ अप्रैल १९१२ को मि० एसक्विथ हाउस आफ कामन्समें आयर्लैंडका होमरूल बिल उपस्थित करनेवाले थे। अतः इसके कई दिन पहलेसे ही यूनियनिस्ट दल तथा अलस्टरवालोंका घोर विरोध आरंभ हुआ। ९ अप्रैलको बेलफास्टमें होमरूल बिलका विरोध करनेके लिए दोनों दलोंकी एक बहुत बड़ी सभा हुई जिसके लिए बड़ी बड़ी दूरसे स्पेशल गाड़ियाँ आईं! उस समय मि० बोनरला, लार्ड लण्डनडरी, सर एडवर्ड कारसन आदिके व्याख्यान हुए और निश्चय हुआ कि होमरूल बिलका घोर विरोध किया जाय। एक ही दो दिन बाद एक बहुत बड़ी किताब भी छापकर बाँटी गई जिसमें आर्थिक, सैनिक, धार्म्मिक आदि सभी दृष्टियोंसे होमरूलकी हानियाँ दिखलाई थीं और उसका विरोध किया गया था। बिल उपस्थित होनेसे कुछ ही समय पहले जगह जगह पर खूब व्याख्यान हुए। एक स्थान पर सर एडवर्ड कारसनने सरकार पर खूब बौछारें कीं और यहाँतक कह डाला कि जबतक सरकारको आयरिश मेम्बरोंकी सहायताके विना ही बहुमत मिलता था तबतक कभी होमरूलका नाम भी सुनाई नहीं देता था; अब जब आयरिश मेम्बरोंकी सहायताकी आवश्यकता हुई है तब आयर्लैंडको होमरूल दिया जा रहा है; और यह भी कहा कि यह बिल हानिकारक ही नहीं है बल्कि अपमानकारक भी है। बोनरलाने एक अवसर पर कहा कि यदि आवश्यकता होगी तो इस बिलको रोकनेके लिए अलस्टरवाले अपने प्राणतक देदेंगे। उधर राष्ट्रीय दलके नेता मि० रेडमण्डको खूब बधाइयाँ मिलीं और उपनिवेशों आदिसे बड़े बड़े राजनीतिज्ञों और अधिकारियोंने तारद्वारा होमरूलके साथ अपनी सहानुभूति दिखलाई और उसकी सफलताकी हार्दिक कामना प्रकट की।

इस प्रकारका भय नहीं है और वे होमरूलके विरोधी नहीं, बल्कि पक्षपाती हैं।

रामराम करके १२ अप्रैल सन् १९१२ को मि० एस्क्विथने हाउस आफ कामन्समें 'आयर्लैण्डके शासनमें सुधारके लिए' बिल उपस्थित किया। उस दिन पार्लमेण्टमें इतनी भीड़ थी, जितनी पहले कई वर्षोंसे नहीं हुई थी। बिलका आशय था "आयर्लैण्डमें एक आयरिश पार्लमेण्ट हो, जिसमें सम्राट् तथा दो हाउस हों। पहला हाउस सिनेट चालीस सभासदोंका हो और दूसरा हाउस आफ कामन्स एकसौ चौंसठ सभासदोंका। पार्लमेण्टका अधिवेशन सालमें कमसे कम एक बार हुआ करे और सम्राट्की आज्ञा तथा अनुमतिसे लार्ड लेफ्टिनेण्ट उसके पास किये हुए बिलोंको स्वीकृत किया करें। आयरिश पार्लमेण्ट देशकी शांति तथा सुशासनके लिए कानून बनावे; पर राजसिंहासन या उसके उत्तराधिकार, युद्ध, जल तथा स्थल सेना, सन्धि, परराष्ट्रोंसे सम्बन्ध, सिक्के, नाप-तौल, ट्रेडमार्क, कापीराइट, पेटेण्ट, सेविंग्स बैंक तथा कुछ विशिष्ट कानूनों आदिके संबंधमें कोई कानून बनानेका उसे अधिकार न हो; और न धर्म्मसम्बन्धी किसी प्रकारका कानून बनानेका उसे अधिकार हो। शासनाधिकार पूर्ण रूपसे सम्राट्के ही हाथमें हो और उसकी ओरसे लार्ड लेफ्टिनेण्ट शासन करें।" कुछ विशिष्ट कानूनोंमें कुछ निश्चित समयके उपरांत आयरिश पार्लमेण्टको परिवर्तन आदि करनेका भी अधिकार दिया गया था। इसके अतिरिक्त अर्थ, शासन और न्याय आदि विभागोंमें भी आयरिश पार्लमेण्टको यथेष्ट अधिकार दिया गया था। इस आयरिश पार्लमेण्टका पहला अधिवेशन सन् १९१३ के सितंबर महीनेके पहले मंगलवारको होनेका था।

हाउस आफ कामन्समें इस बिल पर बराबर चार दिनतक वादविवाद होता रहा। विवादमें राष्ट्रीय दलकी ओरसे मि० रेडमण्डने इस बिलका स्वागत किया और इसे बहुत ही उपयुक्त तथा महत्त्वपूर्ण बतलाया। यूनियनिस्ट दल तथा अलस्टरवालोंकी ओरसे सरकार तथा मि० एस्-

क्विथ पर खूब बौछारें हुईं। बहुतसे दोष दिखलाये गये और बड़ी बड़ी धमकियाँ दी गईं। पर सरकारकी ओरसे कहा गया कि, इस बिलसे घबरानेकी कोई बात नहीं है; साम्राज्यके सभी भागोंके लोग चाहते हैं कि आयर्लैण्डको स्वराज्य दिया जाय। बहुत कुछ कहा-सुनीके उपरांत १६ अप्रैल सन् १९१२ को बहुतमतसे इसकी पहली आवृत्ति स्वीकृत हुई। उस दिन इसके पक्षमें ३६० तथा विपक्षमें २६६ सम्मतियाँ थीं। लिबरलोंमें एक मात्र सर कोरी ही ऐसे थे, जिन्होंने इस बिलका विरोध किया था।

३० अप्रैलको कामन्स सभामें मि० चर्चिलने उक्त बिलको दूसरी आवृत्तिके लिए उपस्थित करते हुए अलस्टरवालोंसे उसमें सम्मिलित होनेकी प्रार्थना की और कहा कि उनका इससे अलग रहना बहुत ही बुरा होगा; इस अवसर पर उन्हें नावको किनारे लगानेमें यथासाध्य सहायता देनी चाहिए। पर यूनियनिस्ट दलकी ओरसे कहा गया कि हम लोग अपने अलस्टरवाले मित्रोंको कोई ऐसी सम्मति नहीं देना चाहते, जिससे उनकी हानि हो अथवा कोई भारी झगड़ा खड़ा हो। यह भी कहा गया कि इस बिलके पास होनेसे आयर्लैण्डमें सिविल युद्ध हो जायगा। २ मईको मि० बालफोरने भी इसका खूब विरोध किया और सर एडवर्ड ग्रेने अलस्टरवालोंको समझाने बुझानेका प्रयत्न किया। कई दिनतक वादविवाद होनेके उपरांत ९ मईको दूसरी आवृत्ति भी हो गई। उस दिन इसके पक्षमें ३७२ और विपक्षमें २७१ मत थे। उस दिन हाउस आफ कामन्ससे लौटते समय मि० एस्क्विथ और मि० रेडमण्डका लोगोंने बहुत आदरसत्कार किया था।

पहले अलस्टरवाले इस बिलको किसी तरह पास ही न होने देना चाहते थे; पर जब उन्होंने रंगढंगसे देखा कि अब इसके संबंधमें लोक-

मत बढ़ता जाता है तब उन्होंने एक परिवर्तन या सुधार उपस्थित किया। १ जनवरी सन् १९१३ को सर एडवर्ड कारसनने इस बिलमें यह सुधार कराना चाहा कि इसमेंसे अलस्टरको निकाल दिया जाय; क्योंकि इससे उस प्रान्तवालोंको कोई लाभ नहीं है। आपने यह भी कहा कि यदि अलस्टरवाले इस बिलको स्वीकार न करके लड़गये तो उस समय सरकारकी क्या दशा होगी? पर मि० एस्क्विथने कहा कि, अलस्टरको इससे अलग नहीं रक्खा जा सकता; अलस्टरवालोंको उचित है कि वे सुजनतापूर्वक इसमें योग दें। मि० रेडमण्डने कहा कि इस बिलके पास होनेसे कभी युद्धकी नौबत नहीं आवेगी और प्रोटेस्टेण्ट लोगोंको विश्वास होना चाहिए कि उनकी स्वतंत्रता और अधिकारों पर आक्रपण नहीं होगा। पर मि० बोनरलाने कहा कि हमें विदेशियोंका शासन मंजूर है, पर राष्ट्रीय दलका शासन मंजूर नहीं। अन्तमें बहुमतसे कारसनका सुधार अस्वीकृत हो गया।

१४ जनवरी सन् १९१३ को प्रकाशित हुआ कि आयरिश पार्लेमेण्टके पहले अधिवेशनकी तिथि, होमरूल बिल पास हो जानेकी तिथिसे एक वर्षके अन्दर रक्खी जायगी; और दूसरे दिन १५ जनवरीको वह बिल तीसरी आवृत्तिके लिए कामन्स सभाके समक्ष उपस्थित हुआ। उस दिन बड़ी भीड़ थी। मि० बालफोरने प्रस्ताव किया कि यह बिल अस्वीकृत हो। उस दिन बीमार होनेके कारण सर कारसन नहीं आये थे। उस दिन भी खूब वादविवाद हुआ। मि० एस्क्विथने विरोधियोंको बहुत कुछ समझाया बुझाया और विरोध दूर करनेका प्रयत्न किया। बहुमतसे मि० बालफोरका अस्वीकृत-संबंधी प्रस्ताव अस्वीकृत हुआ और ३६७ पक्षके तथा २५७ विपक्षके मतोंसे उसकी तीसरी आवृत्ति भी हो गई। उस दिन राष्ट्रीय दल तथा अलस्टरवालोंमें इतना वैमनस्य हो गया था कि पुलिसको

झगड़ा रोकनेके लिए विशेष प्रयत्न करना पड़ा था। रातभर स्थान स्थान पर व्याख्यान होते रहे। यूनियनिस्ट लोग कहते थे कि जैसे होगा, वैसे इस बिलको पास होनेसे रोका जायगा और राष्ट्रीय दलके लोग उन्हें समझाने-बुझानेका प्रयत्न करते थे। मि० रेडमण्डने एक स्थान पर कहा था कि अलस्टरवालोंको हम अपना भाई समझते हैं और उनसे प्रार्थना करते हैं कि वे आकर हम लोगोंमें सम्मिलित हों। १६ जनवरीकी रातका लन्दनका दृश्य देखनेवालोंको कभी न भूलेगा।

पहले दौरेमें हाउस आफ कामन्समें आयरिश होमरूल बिल पास होते ही तुरंत हाउस आफ लार्ड्समें भेज दिया गया और वहाँ उसकी पहली और २७ जनवरीको दूसरी आवृत्ति हुई। ड्यूक आफ डेवनशायरने उसकी अस्वीकृतिके लिए प्रस्ताव किया, पर अर्ल आफ डनरेवनने बिलके पक्षमें सम्मति दी। चार दिन तक वादविवादके उपरांत ३१ जनवरीको ३२६ पक्षके तथा ६९ विपक्षके मतोंसे दूसरी आवृत्तिमें हाउस आफ लार्ड्सने आयरिश होमरूल बिल अस्वीकृत कर दिया। बिलके विरोधियोंमें लार्ड कर्जन और लार्ड लैंसडाउन भी थे। विवादके अंतमें लार्ड मार्लीने कहा था कि, सरकारको आशा है कि अलस्टरवालोंका झगड़ा शांत हो जायगा और बिल मजेमें पास हो जायगा।

७ मई १९१३ को हाउस आफ कामन्समें दूसरे दौरेकी पहली आवृत्ति, २३ जूनको दूसरी आवृत्ति और ७ जुलाईको तीसरी आवृत्ति हुई और तीनों आवृत्तियोंमें पास होनेके उपरांत नियमानुसार वह फिर हाउस आफ लार्ड्समें भेजा गया, जहाँ उसपर फिरसे विचार हुआ। बहुत कुछ वादविवाद और विरोधके उपरांत १५ जुलाईको ३०२ पक्षके और ६४ विपक्षके मतोंसे वह फिर अस्वीकृत होगया। हाउस आफ कामन्समें आयरिश होमरूल बिल तीसरी बार ९ मार्च १९१४ को

उपस्थित हुआ। उस दिन बिलके पहली बार उपस्थित होनेके दिनसे भी अधिक भीड़ थी, क्योंकि उस दिन मि० एस्क्विथ अलस्टरके संबंधमें कुछ विचार प्रकट करनेको थे। इसके संबंधमें पहलेसे ही समाचारपत्रोंमें तरह तरहकी बातें निकल रही थीं। कामन्समें अपने अपने पक्षके नेताओंका सब लोगोंने खूब स्वागत किया था। उस दिन मि० एस्क्विथने कहा था कि यद्यपि अलस्टरमें उपद्रव होनेकी सम्भावना है, तथापि बिलका न पास होना भी उतना ही भयंकर है। उपयोगिताके विचारसे ही दोनों पक्षोंमें मेल करानेका प्रयत्न किया गया था। न तो इस समय अलस्टर इसमें सम्मिलित हो सकता है और न सदाके लिए वह अलग रह सकता है। इसलिए उसे कुछ समयतक अलग रखना उचित जान पड़ता है। सरकार चाहती है कि अभी छः वर्षतक अलस्टर प्रांतको आयरिश पार्लमेण्टके अधिकारसे बाहर रक्खा जाय। इतने दिनोंमें आयरिश पार्लमेण्टके कारबार और रंग ढंगका पूरा पता लग जायगा। इस बीचमें यदि इंग्लैण्ड और स्काटलैण्डके मतदाता चाहें तो उसे और अधिक समयतक अलग रखनेकी सम्मति दे सकते हैं। अलस्टरके प्रतिनिधि इतने दिनोंतक बराबर पहलेकी तरह ब्रिटिश पार्लमेण्टमें रहेंगे। पर मि० बोनरलाने कहा कि हम सभी दशाओंमें उस बिलके विरोधी हैं। जबतक सरकार आयर्लैण्डके सभी मतदाताओंकी सम्मति न ले ले तबतक उसे इस प्रकारका परिवर्त्तन करनेका कोई अधिकार नहीं है। मि० रेडमण्डने कहा कि अब तो अलस्टरवालोंको सतुंष्ट हो जाना चाहिए; क्योंकि उनके साथ यथेष्ट रिआयत की जा रही है। आशा है कि छः वर्षमें आयरिश पार्लमेण्ट प्रमाणित कर देगी कि उसके कारण अलस्टरवालोंकी किसी प्रकारकी हानि नहीं हो सकती और लोगोंका भय दूर हो जायगा। यदि इतने पर भी अलस्टरवाले न मानें तो सरकारका कर्त्तव्य है कि वह नियमानुसार उसे ज्योंका त्यों पास करके

कानून बना दे। सर एडवर्ड कारसनने कहा कि यदि सरकार समयका बंधन निकाल दे तो अलस्टर कनवेन्शन उस पर विचार कर सकती है। इन सब बातोंके उपरांत उसकी पहली आवृत्ति हो गई। अलस्टर-वाले उस समय बहुत बिगड़े हुए थे और यहाँ तक लड़नेके लिए तैयार थे कि लेडी लण्डनडरीने आवश्यकता पड़ने पर सहायता करनेके लिए १५० सार्जण्टोंका एक दल भी तैयार कर लिया था।

जब यूनियनिस्टोंने देखा कि सरकार किसी प्रकार नहीं मानती और वह पूर्ण रूपसे आयलैंडको होमरूल देनेके ही पक्षमें है, तब उन्होंने एक नये बिलका मसौदा तैयार किया। वे चाहते थे कि सब प्रान्तोंको अपने अपने अधिकार अलग दे दिये जायँ और उनके संघ स्थापित हो जायँ। पर सरकारकी ओरसे कहा गया था कि शासन-संबंधी सूक्ष्म बातों पर विचार करनेके लिए अभी बहुत समय है। ३१ मार्च १९१४ को जब कामन्समें होमरूल बिलकी तीसरे दौरेकी दूसरी आवृत्ति होने को थी उस समय मि० वाल्टर लांगने उसे अस्वीकृत करनेका प्रस्ताव उपस्थित किया। पर वह प्रस्ताव स्वीकृत नहीं हुआ और दूसरी आवृत्ति भी हो गई।

उस समय लार्ड्स सभा भी बिलमें कुछ सुधार करनेका विचार कर रही थी। साथ ही विरोधी भी शांत होने लगे थे और उनका विरोध कम हो चला था। लार्ड्स लोग जो सुधार या परिवर्त्तन करना चाहते थे, १४ जुलाई १९१४ को उसके मसौदे पर विचार हुआ। पर सर-कारकी ओरसे अर्ल बोकम्पने उस सुधारका विरोध किया और कहा कि यदि सब लोग चाहें तो इसके निर्णयके लिए एक कान्फरेन्स की जा सकती है। तिसपर भी लार्ड्स सभामें वह परिवर्त्तन सर्वसम्मतिसे पास हो ही गया।

उस समय गुप्त रूपसे कुछ लोग आवश्यकता पड़ने पर लड़नेकी भी तैयारियाँ कर रहे थे। उन्होंने अनेक स्थानों पर गुप्त रूपसे हथियार-

लाकर छिपाये थे, जिसके कारण उपद्रवकी आशंका बनी हुई थी। अनेक स्थानों पर छिपाये हुए हथियार पकड़े भी गये थे। १९ जुलाई-को आयरिश तट पर एक नाव पकड़ी गई थी जिसमें नेशनलिस्टोंकी ३००० बन्दूकें थीं। अलस्टरवालोंके लिए भी एक सिपाही बारेकमें बन्दूकें चुराता हुआ पकड़ा गया था। होमरूलके झगड़ेके कारण मंत्रि-मंडलके चार मंत्री भी कुछ असंतुष्ट हो गये थे और इस बातकी संभावना थी कि वे मण्डलसे अलग हो जायँगे। इतना होने पर भी लिबरल पक्ष अपने विचारों पर दृढ़तापूर्वक अड़ा हुआ था। उस समय अनेक बातोंका विचार करके सम्राट् पंचम जार्जने अपने उस कर्त्तव्यका पालन किया, जो उन्हें एक नृपतिकी हैसियतसे करना चाहिए था। अर्थात् उन्होंने सब दलोंके प्रतिनिधियोंकी एक सभा करनेका विचार किया। २० जुलाई १९१४ को मि० एस्क्विथने कामन्स सभामें कहा था कि सम्राटने सरकार, अलस्टर, नेशनलिस्ट तथा विरोधी (Apposition) सब पक्षोंके दो दो प्रतिनिधि-योंकी एक कमेटी नियुक्त करके होमरूलके सम्बन्धमें निर्णय करनेके लिए उसे बकिंगहम पैलेसमें निमंत्रित किया है; इस कमेटीके प्रधान पार्लमेण्टके प्रवक्ता (Speaker) होंगे। उसी दिन हाउस आफ काम-न्समें मजदूर दलके कुछ लोगोंने अपनी एक स्वतंत्र कमेटी करके निश्चय किया कि महाराज जार्जका पार्लमेण्टके कामोंमें यह हस्तक्षेप अनु-चित है। पर लार्ड क्रूने हाउस आफ लार्ड्समें कह दिया कि इसे महा-राजका अनुचित और अनावश्यक हस्तक्षेप नहीं समझना चाहिए और न इससे पार्लमेण्टके अधिकारों पर कोई आक्रमण होगा। इस कमेटीकी योजनाका उद्देश्य यही है कि यदि सम्भव हो तो आपसमें समझौता हो जाय और बात बढ़ने न पावे। मजदूर दलकी उक्त टीका इस बातका स्पष्ट प्रमाण है कि स्वतंत्र देशोंमें प्रजाके अधिकार कितने विस्तृत होते हैं और लोकमतका कहाँतक आदर किया जाता है।

उस समय यूनियनिस्ट दल समझता था कि इस कमेटीका कोई फल न होगा। साथ ही स्थिति आदि पर विचार करनेके लिए पार्लमेण्टके गैर सरकारी लिबरल मेम्बरोंकी भी एक सभा हुई थी, जिसमें निश्चय हुआ था कि सरकार कोई ऐसी रिआयत न करे, जो राष्ट्रीय दलको मंजूर न हो। २१ जुलाईको सम्राट्द्वारा निमंत्रित प्रतिनिधियोंकी एक कान्फरेन्स हुई जिसमें मि० डिलन, बोनरला, कैप्टेन क्रेग, सर एडवर्ड कारसन, मि० रेडमण्ड, मारक्विस आफ लैन्सडाउन, मि० एस्क्विथ, मि० लायड जार्ज सभासद तथा पार्लमेण्टके स्पीकर सभापति थे। पहले सम्राट्की सेवामें सब लोग उपस्थित हुए। सम्राट्ने उनसे कहा कि यद्यपि आप लोग इसे मेरी अनधिकार चर्चा कह सकते हैं तथापि एक कारणसे मुझे आप लोगोंको आपसमें विचार करनेके लिए निमंत्रित करना पड़ता है। मुझे अनेक विश्वसनीय और प्रामाणिक व्यक्तियोंसे पता लगा है, कि यह मौका बहुत नाजुक है। इस लिए आप लोग ऐसा प्रयत्न करें कि जिससे सब काम ठीक तरहसे हो जाय और रक्तपातकी नौबत न आवे। आध घंटेतक बाकी लोगोंमें वादविवाद होता रहा; पर निर्णय कुछ भी नहीं हुआ। दूसरे दिन अनेक समाचारपत्रोंने सम्राट्के इस प्रयत्न और व्यवहारकी बहुत प्रशंसा की। उस दूसरे दिन डेढ़ घंटेतक, तीसरे दिन ढाई घंटेतक और चौथे दिन प्रायः सवा घंटेतक उन लोगोंमें वादविवाद हुआ। पर फिर भी कुछ निश्चय नहीं हुआ। इस सभाकी कार्रवाई गुप्त रक्खी गई थी। इसके उपरांत डेढ़ घंटेतक मंत्रिमण्डलमें विचार होता रहा, पर तो भी कुछ निश्चय नहीं हुआ। अलस्टरके अलग किये जाने आदिके संबंधमें, मूल सिद्धान्तोंमें ही लोगोंका मतैक्य नहीं होता था, तब भला निर्णय किस प्रकार होता? उधर सिविल युद्धके लिए लोग गुप्त रूपसे पूरी तैयारियाँ कर रहे थे। एक स्थान पर एक नावपरसे बाहरसे आई हुई १२०० बंदूकें नेशनलिस्ट वालेंटियर्सने उतारी थीं, जो मोटरों पर

यथास्थान पहुँचा दी गई थीं। उन लोगोंने पुलिसको जबरदस्ती दबा और रोक रक्खा था। वालेंटियरों और सैनिकोंमें मुठभेड़ भी हो गई थी जिसमें तीन आदमी मरे और चालीस घायल हुए थे। पीछेसे जब यह सेना लौटकर डब्लिन पहुँची तब लोगोंने उस पर पत्थर भी फेंके थे। होमरूल बिलके सुधारके संबंधमें हाउस आफ् कामन्समें जो विचार हो रहा था, इस झगड़ेके कारण तथा भावी युरोपीय युद्धकी सम्भावनासे उसमें बाधा पड़ गई। युद्धविभागने आज्ञा दे दी थी कि जो व्यक्ति नेशनलिस्ट या अलस्टरवाले वालेंटियरोंको बहकाता हुआ पाया जा-यगा उसके अपराधका विचार सैनिक न्यायालयमें होगा। यह भी कहा जाता है कि शांति-रक्षाके लिए ३०।३५ सजे सजाये और तैयार जहाज भी कई दिनोंतक आयरिश तटोंके आसपास घूमा करते थे। राष्ट्रीय दलके लोगोंने यहाँतक निश्चय कर लिया था कि यदि सरकारका होमरूल बिल पास न होगा तो हम लोग अनेक अंशोंमें स्वतंत्ररूपसे शासन प्रबंध करेंगे।

इसी बीचमें यूरोपमें भीषण महा समर छिड़ गया। उस समय इस बातकी आवश्यकता थी कि सारा ब्रिटिश साम्राज्य मिलकर इस नई भीषण परिस्थितिका सामना करे और सब लोग आपसका झगड़ा बंद कर दें। इस लिए १४ सितंबर १९१४ को पार्लमेण्टमें सरकारकी ओरसे मि० एसक्विथने कहा कि सरकारका विचार है कि आयरिश होमरूल बिल कानून बन जाय और Statute Book कानूनोंवाली किताब पर चढ़ा दिया जाय। इसके साथ ही मैं एक और बिल उप-स्थित करूँगा जिसके अनुसार युद्धकी समाप्तिसे एक वर्षके अन्दर इसके अनुसार कार्य्य न किया जायगा। उस समय भी यूनियानिस्ट दलने इसका बहुत विरोध किया था। १६ सितंबरको होमरूल बिलको स्थगित रखनेका बिल हाउस आफ लार्ड्समें भी पास हो गया और

राम राम करके होमरूल बिल Statute Book पर चढ़कर कानून बन गया।

होमरूल बिल पास तो हो गया पर इंग्लैण्डके घोर युद्धमें फँसे रहनेके कारण दो वर्ष तक आयरिश समस्याकी मीमांसा नहीं हुई। अप्रैल सन् १९१६ में जब सेनफेनर्सका विद्रोह हुआ तब अँगरेज राजनीतिज्ञोंकी आँखें खुलीं और उन्होंने समझा कि वर्त्तमान शासन-व्यवस्थासे काम न चलेगा। जिस प्रकार हो आयर्लैण्डके शासनका कोई और प्रयत्न होना चाहिए। पर उस समय मंत्रिमंडलमें कई यूनियनिस्ट सम्मिलित हो चुके थे और लिबरल मंत्रियोंका बल बहुत कुछ कम हो गया था। तो भी मि० एस्क़िथने आयर्लैण्डका झगड़ा निपटानेका काम मि० लायड जार्जको सौंपा। उन्होंने निश्चय किया कि अलस्टरके छः जिलोंको छोड़कर बाकी आयर्लैण्डको इसी समय स्वराज्य दे दिया जाय; और जो लोग इस समय आयर्लैण्डकी ओरसे ब्रिटिश हाउस आफ कामन्सके मेम्बर हैं वे ही आयरिश हाउस आफ कामन्सके मेम्बर रहें। यह अवस्था समरके एक वर्ष बाद तक रहेगी। यदि पार्लमेण्ट इस बीचमें आयरिश शासनका कोई स्थायी प्रबंध न कर देगी तो प्रीवी काउन्सिलकी आज्ञासे यह अवधि और बढ़ा दी जायगी। मि० लायड जार्जका कथन था कि अगले सार्वजनिक निर्वाचनके बाद भी कामन्स सभामें आयर्लैण्डके उतने ही प्रतिनिधि रहेंगे जितने आज हैं। पर आयरिश नेशनालिस्ट ब्रिटिश पार्लमेण्टमें बैठनेका अधिकार छोड़ना नहीं चाहते थे। इस लिए सरकारको यह निश्चय करना पड़ा कि जब तक सब पक्ष मुख्य बातों पर सहमत न हो जायँ तब तक सरकार इस सम्बन्धमें कोई और कार्रवाई न करेगी। इस प्रकार उस समय भी आयर्लैण्ड स्वराज्यसे वंचित ही रहगया।

अब सन् १९१७ आया। रूसकी अनियंत्रित शासन-प्रणालीका अंत हुआ और अमेरिका मित्र दलकी ओरसे युरोपीय महासमरमें सम्मिलित हुआ। उस समय अँगरेज राजनीतिज्ञ जोरोंसे स्वतंत्रताका सुर अलापने लगे। अमेरिकाको आयलैंडके साथ सहानुभूति थी इस लिए उसने इंग्लैंड पर इस बातका जोर डाला कि आयलैंडको स्वराज्य दे दिया जाय। इंग्लैण्डको भी आयलैंडकी कुछ चिंता लगी हुई थी, क्यों कि जबसे सेनफेनर्सका विद्रोह हुआ था तबसे इंग्लैंडको आयलैंडमें कुछ विशेष सेना रखनी पड़ती थी, अत: इस समस्याकी मीमांसाके लिए यह उपाय निकाला गया कि आयलैंडके समस्त सम्प्रदायों, पक्षों और राजनीतिक दलोंकी एक कनवेन्शन हो जिसमें मि० रेडमण्ड तथा मि० ओब्रायनके अनुयायी, अलस्टरके यूनियनिस्ट, दक्षिणी यूनियनिस्ट, सेनफेनर्स, तथा स्थानिक संस्थाओं, गिरजों, व्यापारी संघों, व्यापारियों और शिक्षा-संस्थाओं, आदि सभीके प्रतिनिधि रहें। और यह कनवेन्शन निश्चय करे कि भविष्यमें आयलैंडका शासन किस प्रकार हो। यदि सर्वसम्मतिसे यह कनवेंशन कोई सिद्धांत स्थिर करेगी अथवा पद्धति निकालेगी तो उसीके आधार पर कानून बन जायगा। जो ब्रिटिश गवर्नमेण्ट किसी समय आयरिश लोगोंमें भेद-भाव उत्पन्न करनेमें ही अपना परम पुरुषार्थ और कल्याण समझती थी वह इस समय इतनी उदार हो गई कि सब पक्षोंको मिलाकर एक करनेके प्रयत्नमें लगी; यह राजनीति और तत्संबंधी कारणोंकी ही कृपाका फल है। इस कनवेन्शनके अध्यक्षका निर्वाचन स्वयं सम्राट् करेंगे और इसकी कार्रवाई गुप्त रक्खी जायगी। मि० रेडमण्डने भी सब प्रकारसे इस प्रस्तावको स्वीकृत कर लिया और मि० ओब्रायनने भी। अलस्टरवालोंकी ओरसे सर जान लान्सडेलने कहा कि अलस्टरवाले इसमें भली भाँति विचार करेंगे, पर तो भी आशा नहीं है कि कनवेन्शनका उद्देश्य

सिद्ध होगा। सर एडवर्ड कारसनने कहा कि मैं अलस्टर वालोंका किसी दशामें—चाहे उनकी सम्मति और निर्णय कुछ भी हो—साथ न छोड़ूँगा; पर मेरी सम्मतिमें आयर्लैण्डके शासनकी सबसे उत्तम प्रणाली यह है कि वहाँ यूनियन वा संघ बना दिया जाय। तात्पर्य्य यह कि सभी राजनीतिक पक्ष आयरिश समस्याकी मीमांसा करना आवश्यक समझते हैं। इस समय जो दल इससे अलग रहेगा उसके नेताओं पर बड़ा भारी दायित्व रहेगा और यदि वह कनवेन्शन कुछ सिद्धांत स्थिर न कर सकी तो इसमें स्वयं आयरिश ही दोषी होंगे, और यही समझा जायगा कि समस्त आयर्लैण्ड स्वराज्य नहीं चाहता। आयर्लैण्डके लिए इससे बढ़कर और कोई सौभाग्यकी बात नहीं हो सकती कि अपनी शासन-पद्धति निश्चित करनेका काम स्वयं उसे मिला है, और जो शासन-पद्धति वह स्थिर करे उसे ब्रिटिश सरकार माननेके लिए तैयार है। आयरिश लोगोंकी उच्चाकांक्षाओंकी पूर्ति और स्वराज्य-पात्रताकी सिद्धि आकर इसी कनवेन्शनपर निर्भर हुई है। आशा है, आयर्लैण्ड ऐसा अमूल्य अवसर अपने हाथों नष्ट न करेगा।

७ विद्रोहका आन्दोलन।



बारहवीं शताब्दीमें आयर्लैण्ड और इंग्लैण्डका जो सम्बन्ध हुआ था वह समस्त आयरिश लोगोंको सभी अवसरों पर समान रूपसे पसन्द नहीं था। इसलिए बहुतसे लोगोंने समय समय पर अपनी बुद्धि और शक्तिके अनुसार इस सबन्धको तोड़ने तथा आयरिश राष्ट्रको पूर्ण स्वतंत्र करनेका प्रयत्न किया था। इन विद्रोहात्मक प्रयत्नोंकी अधिकताके कारण वहाँ एक कहावत सी बनगई है कि आयर्लैण्डमें प्रति पचास वर्षोंमें एक विद्रोह होता ही है। इन सब विद्रोहोंका सविस्तर वर्णन करना इष्ट भी नहीं है और वह थोड़ेमें हो भी नहीं सकता। इसलिए जिस प्रकार पिछले तीन भागोंमें आयर्लैण्डके नियमानुमोदित आन्दोलनका संक्षिप्त वर्णन किया गया है उसी प्रकार इस भागमें नियम-विरुद्ध आन्दोलनोंका संक्षिप्त वर्णन किया जाता है।

बारहवीं शताब्दीके मध्यमें राजा द्वितीय हेनरीने आयर्लैण्ड पर इंग्लैण्डका अधिकार जमाना आरम्भ किया और उसी समय, प्रायः पैंतीस वर्ष बाद, आयरिश अमीरों और रईसोंने पहला विद्रोह किया। सन् १२५९ में जिराल्डिन नामक आयरिश सरदारने विद्रोह करके अँगरेज़ोंको कतल किया। सन १३१४ में स्काटलैण्डका राजा राबर्ट ब्रूस जब अँगरेजोंसे परास्त होकर आश्रय लेनेके लिए आयर्लैण्ड पहुँचा तब उसे सहायता देने तथा आयर्लैण्डको स्वतंत्र करनेके बहानेसे सन् १३१५ में आयरिश लोगोंने फिर विद्रोह किया। इसके उपरान्त बराबर एकके बाद एक विद्रोह होने लगा। सन् १३२० में लेनस्टर प्रान्तमें विद्रोह हुआ और सन १३४८ तक किलडेर तथा डेस्माण्डका विद्रोहात्मक आन्दोलन होता रहा। सन् १४६७ में डेस्माण्ड घरानेके प्रधान पुरुष

पर राजद्रोहका अभियोग लगा जिसमें उसका सिर काट डाला गया। सन् १४८७ से १४९७ तकके दस वर्षोंमें, इंग्लैण्डकी गद्दीके हकदार बननेवाले जो दो आदमी खड़े हुए थे, उन दोनोंको आश्रय देकर आयरिश लोगोंने जहाँतक हो सका उपद्रव किये। सन् १५३७ में लार्ड थामस फिड्जरल्डका विद्रोह हुआ। यह बहादुर अमीर किलडरेके घरानेका था। १५५९ से १५६७ तक प्रसिद्ध आयरिश अमीर शेन ओनीलका उपद्रव होता रहा और १५६८ से १५८६ तक मनस्टर प्रान्तके आयरिश सरदारोंके उपद्रव होते रहे। १५३९ में प्रसिद्ध जिराल्डिनके घरानेके कई आदमियोंने विद्रोह किये। १५९८ से १६०२ तक मनस्टर प्रान्तके दंगे होते रहे। १६४१ में राजा चार्ल्सकी ओरसे आरमाण्ड सरदारके विद्रोह हुए और १६४१ से १६४८ तक अलस्टर, मनस्टर और कनाट प्रान्तके प्रसिद्ध विद्रोह और कतल हुए। १६९८–९० में राजा द्वितीय जेम्सकी ओरसे टिरकानेल नामक सरदारने उपद्रव किये। पर जबसे ये उपद्रव शान्त हुए तबसे रोमन कैथोलिक लोगोंके लिए भयंकर कानून बनने लगे और इसके उपरान्तके सौ वर्षोंतक आयर्लैण्डमें कोई बहुत बड़ा विद्रोह नहीं हुआ, फुटकर दंगे फसाद अवश्य होते रहते थे। आयरिश खेतिहरोंके दंगे फसादका आरम्भ इसी शताब्दीमें हुआ था, पर इन दंगे फसादोंका कोई विशेष राजकीय स्वरूप नहीं था।

ऊपर जितने उपद्रवोंका वर्णन किया गया है उन सबके मूलमें धर्म्म–प्रीति, जब्त हुई जमीनको फिरसे लौटानेकी इच्छा, अपमानका बदला लेनेकी उत्कण्ठा और कैथोलिक राजाओं आदिके सम्बन्धमें पक्षपात आदि अनेक बातें मिली हुई थीं। लेकिन इसके बाद जो विद्रोह हुए उनमें धर्म्मकी अपेक्षा राजकीय हेतु ही अधिक बलवान् जान पड़ता है। इसके उपरान्त राजकीय हेतुओंसे जो सबसे बड़ा विद्रोह

हुआ था वह सन् १७९८ में उल्फटोन और लार्ड एडवर्ड फिट्जरल्डने 'युनाइटेड आयरिशमेन' नामक संस्थाकी सहायतासे किया था। इसके पाँच बरस बाद सन् १८०३ में राबर्ट एमेटका छोटासा विद्रोह हुआ था। इसके बादका विद्रोहात्मक आन्दोलन फिनिअन लोगोंका था जो प्रायः सन् १८४८ से १८६७ तक होता रहा। सन् १८४८ में जो आन्दोलन हुआ था वह मुख्यतः 'तरुण आयर्लैण्ड' नामक संस्थाके तरुण नेताओंने किया था। इन नेताओंमें अनेक पत्र-सम्पादक तथा पार्लमेण्टके सभासद भी थे। इनमेंसे अधिक प्रभावशाली नेता स्मिथ ओब्रायन था जिसकी संक्षिप्त जीवनी आगे चरित्र-मालामें दी गई है। सन् १८४८ वाले आन्दोलनमें ओब्रायनके अतिरिक्त चार्ल्स डफी, डिलन, जान मिचल, थामस मीगर, जान लेलर, जान मार्टिन, मेकमेनस आदि लोग प्रधान थे। १८४९ में जोसफ ब्रेननने कार्कमें विद्रोह करनेका प्रयत्न किया और आगेके नौ वर्षोंमें फीनिअन लोगोंके विद्रोहका वास्तविक आरम्भ हुआ। उन्नीसवीं शताब्दी भर आयर्लैण्डमें फीनिअन लोगोंका ही मुख्य विद्रोहात्मक आन्दोलन होता रहा। इस आन्दोलनका थोड़ासा वर्णन हम यहाँपर दे देते हैं जिसमें पाठक यह समझ सकें कि आयर्लैण्डका नियमविरुद्ध आन्दोलन कैसा होता था।

आयर्लैंडमें फीनिअन लोगोंका आन्दोलन पहले पहल सन् १८५२ में आरम्भ हुआ। इससे पहले सन् १८४८ में आयरिश लोगोंमें दो पक्ष हो गये थे--एक पक्ष ग्रटनके ढंग पर नियमानुमोदित आन्दोलन करनेवाला और दूसरा पक्ष उल्फटोनके ढंग पर विद्रोह आदि करनेवाला था। इस दूसरे पक्षके लोगोंने सन् १८४८ में कुछ प्रयत्न किया था जो निष्फल हुआ। ऊपर कहा जा चुका है कि इस प्रयत्न में 'नेशन' पत्रके सम्पादक लोग स्मिथ ओब्रायन आदि सम्मिलित थे। उन लोगोंको कुछ दिनों तक जेलमें रहना पड़ा था; परन्तु जेलसे लौटने पर उन

लोगोंने मनमें यह बात अच्छी तरह समझ ली थी कि आयलैंडका स्वतंत्र होना यद्यपि उचित और न्याय्य है तथापि उस स्वतंत्रताको प्राप्त करनेके साधन अभी लोगोंके पास नहीं हैं, इस लिए केवल आत्मघातक प्रयत्न करनेसे कोई लाभ नहीं होगा। ओब्रायन और डफी (नेशन पत्रके सम्पादक) ओकानेलके विरुद्ध थे और आखिरी काँटे उन्होंने नाराज होकर उसका पक्ष छोड़ भी दिया था। लेकिन सन् १८५८ में आयलैंडमें फीनिअन लोगोंका जो उपद्रव हुआ, ये दोनों ही उसके प्रतिकूल थे। यह उपद्रव स्टीफेन्स नामक एक व्यक्तिने आरम्भ किया था। स्किबेरीन नामक नगरमें एक पुस्तकालय था जिसमें एक क्लब भी था और उसका नाम 'फीनिक्स राष्ट्रीय पुस्तकालय और साहित्य सभा' था। उसमें बहुतसे व्यापारी युवक सम्मिलित थे। मई सन् १८५८ में स्टीफेन्स इस क्लबमें गया था। वहाँके लोगोंकी स्वतंत्रप्रियता और उत्साह आदि देखकर उसने समझा कि इस क्षेत्रमें मेरे विद्रोहात्मक आन्दोलनके बीज अच्छी तरह अंकुरित होंगे। इस लिए उसने क्लबके नेता जेरेमिया डोनोवनसे एकान्तमें बातें करके उसे समझा दिया कि आयलैंडको स्वतंत्र करानेके लिए अमेरिकामें जोरोंसे आन्दोलन हो रहा है और यह निश्चय हो चुका है कि आयलैंडमें जितने आदमी लड़नेके लिए तैयार होंगे उतने ही अमेरिकासे भी सहायता देनेके लिए आवेंगे और इस लिए हथियार आदि भी संग्रह करके ठीक-ठिकाने पर रक्खे हुए हैं। यह सुनकर डोनोवन फूल गया; उसने क्लबके और लोगोंको मिलाकर एक गुप्तमण्डली स्थापित की और आयलैंण्डकी स्वतंत्रताके लिए लोगोंसे प्राण तक समर्पण करनेकी शपथ लेना आरम्भ किया। लेकिन जब उस गुप्त मण्डलीमें यथेष्ट आदमी सम्मिलित नहीं हुए तब स्टीफेन्सने एक ऐसी युक्ति की जिससे लोग धड़ाधड़ उसमें सम्मिलित होने लगे। उसने लोगोंसे यह कह दिया कि स्मिथ ओब्रायन, चार्ल्स डफी, सुलिवान, मिचेल आदि नेता इस षड्यंत्रके अनुकूल हैं और उन्हें इस

गुप्त मण्डलीके उद्देश्य मान्य हैं। पर वास्तवमें यह बात बिलकुल झूठी थी। धीरे धीरे यह बात सुलिवानके कान तक पहुँची और वह इस चिन्तामें पड़ा कि लोगोंको स्पष्ट रूपसे मैं यह बतला दूँ या नहीं कि इस षड्यंत्रसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। क्यों कि यदि स्पष्ट रूपसे वह प्रकट कर देता कि इस षड्यंत्रसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है तो मानों प्रकारान्तरसे वह पुलिसको इस षड्यंत्रकी सूचना देता और तब यदि अपराधियोंके साथ निरपराध भी पीसे जाते तो उसका पाप उसके सिर आता। और यदि वह इस बातको प्रकट न करता तो स्टीफेन्स खूब अच्छी तरह उसे बदनाम करता और उसके कारण बहुतसे युवक लोग फँस जाते, जिससे उसकी और भी बदनामी होती। पर अन्तमें उसने यही निश्चय किया कि इस षड्यंत्रका खुले आम विरोध करना चाहिए। तदनुसार उसने ओब्रायन और मिचेलकी तथा स्वयं अपनी ओरसे नेशन पत्रमें उस गुप्त आन्दोलनका साफ इशारा करके युवकोंको उससे सावधान रहनेका उपदेश किया। सुलिवान उस समय डफीके स्थान पर नेशन पत्रका सम्पादक था, इस लिए उसके लिखनेका अच्छा प्रभाव पड़ा और बिना कारण भ्रममें पड़ कर षड्यंत्रमें सम्मिलित होनेवाले युवक समयपर ही सावधान हो गये। लोगोंसे शपथ लेनेका काम धीरे धीरे रुका और उस समय फीनिअन आन्दोलन कम होने लगा।

२३ नवम्बर सन १८६३ को उत्तर अमेरिकाके शिकागो नगरमें फिरसे खुले आम फीनिअन आन्दोलन आरम्भ हुआ। इस आन्दोलनकी कल्पना प्रायः पाँच बरस पहलेसे ही हो रही थी। लेकिन किसी आन्दोलनके अच्छा रूप धारण करनेके लिए उसके अधिष्ठान रूपमें एक संस्थाकी आवश्यकता होती है। वह संस्था उक्त तारीखको स्थापित हुई। उस संस्थाका संस्थापक जान ओमेहान नामक एक आयरिश जिसके

साथ आयर्लैण्ड छोड़ कर आये हुए अनेक असन्तुष्ट और अमेरिकाके तत्कालीन युद्धमें लड़े हुए योद्धा आयरिश थे। इन लोगोंका प्रयत्न चाहे कितना ही भ्रमपूर्ण क्यों न हो पर तो भी इनकी स्वदेशभक्तिके सम्बन्धमें शंका नहीं हो सकती थी। उक्त तारीखको संस्था स्थापित करके ओमेहान तथा अन्य सभासदोंने आयर्लैण्ड तथा अन्य स्थानोंके आयरिश लोगोंको संबोधित करके एक घोषणापत्र निकाला। उसमें यह दिखलानेके अतिरिक्त कि आयर्लैण्डमें अँगरेजी राजसत्ता कैसे स्थापित हुई और वह कितनी घातक है, यह भी कहा गया था कि—"सन् १७८२ में इंग्लैण्डने आयरिश पार्लमेण्टको स्वतंत्रता दी और १८२९ में रोमन कैथोलिक लोगोंपरका बहिष्कार हटा कर उन्हें समान अधिकार दिये। ये दोनों काम आयर्लैण्डके सन्तुष्ट और अतएव निर्बल करनेके लिए किये गये थे। इन कामोंके लिए सच्चे देशभक्तोंको दुःख ही होना चाहिए। क्योंकि जबतक आदमी सन्तुष्ट रहता है तबतक स्वतंत्रताकी ओर उसका ध्यान नहीं जाता। और इस प्रकार राष्ट्र अल्प तथा क्षणिक सुखके लिए बड़े और स्थायी सुखको छोड़ देता है। स्वार्थत्यागसे ही राष्ट्रके लिए अधिकार प्राप्त किये जा सकते हैं, पर उन दोनों अवसरों पर उक्त दोनों काम करके इंग्लैण्डने दुष्ट बुद्धिसे वह अवसर ही न आने दिया जिसमें वे स्वतंत्रता प्राप्त करनेके लिए अपने प्राण देते।" आदि आदि बातें उस घोषणापत्रमें लिखी थीं। यह कहना कि—"केवल देहत्यागसे ही स्वार्थ-त्याग होता है और राष्ट्रके कल्याणके लिए देहत्यागसे बढ़कर और कोई स्वार्थ त्याग नहीं है" कदाचित् सिपाही पेशेवालोंको ही शोभा दे सकता है, राजनीतिज्ञोंको यह शोभा नहीं दे सकता। लेकिन उस समय फीनिअन लोगोंकी संस्थामें केवल सिपाही आदि ही सम्मिलित थे। स्वदेश-त्याग करनेवालोंके लिए फिर और कोई देश स्वदेश-तुल्य माननेके लिए नहीं रह जाता; अतः उनके लिए उनके शरीरका कोई मूल्य भी नहीं रह जाता;

और जो शरीर चारों प्रकारके पुरुषार्थ करनेका साधन है वह यदि केवल एक ही पुरुषार्थ साधनेमें नष्ट हो जाय तो भी उन्हें उसकी कोई चिन्ता नहीं होती। इसके अतिरिक्त उस समय अमेरिकामें जो आयरिश लोग एकत्र थे यद्यपि उनमें स्वदेशभक्ति थी, तथापि आसपासकी भयंकर स्थिति देखकर उनकी दृष्टि चाहे बिलकुल नष्ट न हो गई हो पर उसमें धुँधलापन अवश्य आगया था। इसलिए युद्धके सिवा और कोई दूसरा विचार उनके मनमें सहजमें आता ही न था।

फीनिअन संस्थाकी शाखायें आयर्लैंडमें शीघ्र ही फैल गईं और कुछ दिनों बाद इंग्लैंडमें भी उनका प्रवेश हुआ। इस संस्थाका 'आयरिश पीपुल' नामक एक साप्ताहिक पत्र भी डब्लिनसे निकलने लगा और उसके द्वारा स्टीफेन्स उज्ज्वल भाषामें हजारों आदमियोंको इस नये 'फीनिअन' मतकी बातें समझाने लगा। लोगोंको 'आयरिश पीपुल' यह उपदेश देता था कि नियमानुमोदित रीतिसे आन्दोलन करनेवाले लोगोंकी बातें न सुनो और न राजनीतिक बातोंमें धर्म्मोपदेशकोंका कहना मानो। प्रायः दो वर्षतक अधिकारियोंने इस समाचारपत्रको चलने दिया; पर अन्तमें सितम्बर सन् १८६५ में सरकारी आज्ञासे पुलिस अफसर 'आयरिश पीपुल' के दफ्तरमें घुसे। उन्होंने छापाखाना जब्त कर लिया और समाचारपत्र नष्ट करके उसके सम्पादकोंको कैद कर लिया। सम्पादकोंमें ओलियारी, टामस लबी आदि जो लोग थे, उनपर अलग कमीशन नियुक्त करके मुकद्मा चलाया गया और उन्हें बीस बीस बरसकी काले पानीकी सजा हुई! षड्यंत्रका नेता स्टीफेन्स जेलके अधिकारियोंसे मिलकर वहाँसे निकल भागा और इस प्रकार उसने अपना छुटकारा कर लिया। इसके उपरान्त बहुत दिनों तक गुप्त रूपसे इस बातकी जाँच होती रही कि उक्त षड्यंत्र तथा आन्दोलनमें कौन आदमी कहाँ तक सम्मिलित था। उस जाँचसे अधिकारियोंको यह

पता लगा कि आयरिश समाजमें इस संस्थाकी जड़ बहुत गहराई तक पहुँच गई है; इस लिए उन्होंने इंग्लैण्डकी सरकारके पास रिपोर्ट भेज कर नये अधिकार माँगे। इसके अतिरिक्त ओलियारी, लबी आदि लोगोंके मुकद्मोंका हाल समाचारपत्रोंके द्वारा दूर दूर तक चारों ओर पहुँच गया। उससे उन लोगोंकी असामान्य बुद्धिमत्ता, अलौकिक धैर्य्य और देशभक्ति व्यक्त हुई और लोगोंको विश्वास हो गया कि "वे लोग पापी या अपराधी नहीं थे, बल्कि प्रतिष्ठित थे। उनके उद्देश भी अच्छे थे और उनका प्रयत्न भी उचित था; और इसीलिए न्यायालयके सामने वे अपने समर्थनमें इतना भाषण कर सके थे।" इसपर इंग्लैण्डके लोग अपने मनमें सोचने लगे कि--"ऐसे अच्छे अच्छे आदमी अविचारी क्यों हो जाते हैं? वे आपसे बाहर क्यों हो जाते हैं? और जो प्राण मनुष्यके लिए संसारभरमें सबसे अधिक प्रिय है उसी प्राणको वे फूँककी तरह निकाल देनेके लिए क्यों तैयार हो जाते हैं? उधर पुलिसने तलाशी आदि लेकर युद्धमें काम आनेवाला ऐसा बहुतसा सामान ढूँढ निकाला जो लोगोंने जगह जगह पर छिपा कर रक्खा था। सिर्फ डब्लिन नगरमें भाले, बरछियाँ, गोले और कारतूस तैयार करनेके तीन कारखाने पकड़े गये। भय होने लगा कि कहीं चारों ओर विद्रोह तो नहीं हो जायगा! अधिकारियोंको सहायताके लिए नई सेना मँगानी पड़ी। १७ फरवरी सन् १८६७ को सर जार्ज ग्रेने पार्लमेण्टके सामने यह सूचना उपस्थित की कि आयर्लैण्डमें कुछ दिनोंके लिए नागरिकोंकी स्वतंत्रताका कानून रद्द कर दिया जाय, जिसमें अधिकारी लोग जिसे जी चाहे उसे पकड़कर कैद कर लें और इसप्रकार उपद्रव शान्त हो। यह सूचना कामन्स तथा लार्ड्स दोनों सभाओंमें एक ही दिनमें पास हो गई और दूसरे ही दिन उसके लिए राजाकी अनुमति भी मिल गई। इस प्रकार सारे इंग्लैण्डमें इस फीनिअन आन्दोलनका शोर मच गया और आयर्लैण्डकी ओर अँगरेजोंका ध्यान आकृष्ट हुआ।

उसी वर्ष सितम्बर महीनेमें मैंचेस्टरमें कीली और डीजी नामक दो फीनिअन कैदियोंको पुलिसके हाथसे छुड़ानेका उद्योग किया गया, जिसमें प्राण-हानि भी हुई। १८ सितम्बरको पुलिस इन कैदियोंको गाड़ीमें बैठाकर पुलिस-कोर्टसे जेलखानेकी ओर ले जा रही थी; इतनेमें फीनिअन लोगोंकी एक टोलीने हाथमें पिस्तौल लेकर आक्रमण किया। इस साहसपूर्ण कृत्यका समाचार केवल मैंचेस्टरमें ही नहीं बल्कि सारे इंग्लैण्ड और आयर्लैण्डमें फैल गया और आक्रमणकारियोंके नेता एलन और उसके साथियोंके लिए लोगोंमें कुछ अकल्पित रीतिसे आदर उत्पन्न हो गया। कहा जाता है कि उसे फाँसी हो चुकनेके उपरान्त जब उसकी रथी निकली तब उसके साथ डेढ़ लाख आदमी थे! इसी प्रकार आगे चलकर १३ दिसम्बरके दिन बैरेट नामक एक फीनिअनने बर्क नामक अपने एक मित्रको जेलसे छुड़ानेके लिए 'डाइनामाइट' से जेलकी दीवार उड़ा दी! इस प्रकारके अपराध, एकके बाद एक, होते जाते थे, इस लिए पार्लमेण्टमें आयर्लैण्डके प्रश्नकी चर्चा जोरोंसे होने लगी। प्रोटेस्टेण्ट धर्म्ममण्डलके सम्बन्धमें नया कानून बनानेवाले ग्लैडस्टन साहबने सन् १८६८ और १८६९ वाले फीनिअन आन्दोलनका जिक्र करते हुए कहा था—"आयरिश प्रश्नके सम्बन्धमें पार्लमेण्टके नवीन सिद्धान्त बनानेमें एक दृष्टिसे इस आन्दोलनका बहुत कुछ उपयोग हुआ।" यह बात नहीं थी कि फीनिअन आन्दोलनके कारण आयरिश लोगोंकी माँगों या झगड़ोंके गुण-दोष बदले या बढ़े। पर इस आन्दोलनके कारण आयर्लैण्डमें नागरिकोंकी स्वतंत्रताका कानून रद् करना पड़ा। बड़े बड़े शहरोंमें हलचल मच गई, लोगोंको प्राण और सम्पत्तिके नाशका भय होने लगा और शान्तिप्रिय नागरिकोंको अपनी रक्षाके लिए हथियार लेकर पहरा देना पड़ा। अर्थात् अपनी सदाकी शिथिलता छोड़ कर इंग्लैण्डके लोगोंको आयर्लैण्डका प्रश्न उठानेकी आवश्यकता जान पड़ने लगी। ३० मार्च सन् १८६८ को पार्लमेण्टके

अपने भाषणमें ग्लैडस्टन साहबको यह कहना पड़ा कि—"बुरी बातोंसे भी तत्त्वज्ञानी मनुष्यको किस प्रकार अच्छा परिणाम निकालना चाहिए, इसका यह एक अच्छा उदाहरण है। इससे पहले जान ब्राइटने भी नागरिकोंके अधिकारोंका कानून रद् करनेके समय इसी प्रकारकी बात कही थी और यह भी कहा था कि यह बात राजनीतिज्ञतामें बड़ा भारी कलंक लगानेवाली है कि जब तक ऐसे भयंकर अनर्थ न हों तब तक पार्लमेण्टके बड़े बड़े राजनीतिज्ञोंको न्यायान्यायके प्रश्न उठानेका ध्यान ही न हो। इसके लिए ग्लैडस्टन और ब्राइट दोनों पर ही उनके प्रतिपक्षियोंने खूब बौछारें कीं और स्पष्ट रूपसे उन पर यह दोष भी लगाया कि उनके ऐसे ऐसे भाषण ही इस प्रकारके अनर्थोंको उत्तेजना देते हैं। लेकिन सारे संसारको इस बातका विश्वास था कि ग्लैडस्टन अथवा ब्राइटको इस प्रकारके दंगे-फसादका उत्तेजक बतलाना दिनको रात बतलाना है; इस लिए उन महात्माओंको ऐसे दोषारोपणोंका उत्तर देनेकी भी आवश्यकता न पड़ी। आगेके फीनिअन आन्दोलनका सविस्तर इतिहास बतलानेकी आवश्यकता नहीं। यह आन्दोलन आगे पन्द्रह बीस बरस तक अर्थात् पार्नेलके समय तक थोड़ा बहुत होता रहा। पार्नेल पर भी यह अभियोग लगाया गया था कि वह इस आन्दोलनमें सहायता देता है। लेकिन इस आन्दोलनसे नियमानुमोदित आन्दोलनको चाहे कितनी ही अप्रत्यक्ष सहायता क्यों न मिली हो पर तो भी इन दोनों प्रकारके आन्दोलन करनेवाले मनुष्य, उनके विचार और गुण धर्म आदि एक दूसरेसे बिलकुल भिन्न थे। इस लिए पार्नेल आदि नेताओंके आन्दोलनको न तो फीनिअन आन्दोलन सदाके लिए दबा ही सका और न किसी प्रकार उसकी हानि ही कर सका।

युरोपीय महासमर छिड़नेके प्रायः तीन वर्ष बाद अप्रैल १९१६ में आयलैंण्डमें एक और छोटासा विद्रोह हुआ था। पर जैसा कि पीछे से मि० बिरेलने एक अवसर पर कहा था, इसकी गिनती राष्ट्रीय विद्रोहोंमें नहीं हो

सकती। तो भी वह एक ऐसे समयमें हुआ था जब कि इंग्लैण्ड एक घोर युद्धमें लिप्त था और उसके सामने जीवन-मरणका प्रश्न उपस्थित था। वह विद्रोह आयर्लैण्डको स्वतंत्र करनेके उद्देश्यसे हुआ था, इस लिए उसका भी संक्षिप्त विवरण यहाँ पर दे देना आवश्यक और उपयुक्त जान पड़ता है। युद्धसे कुछ वर्ष पहले आयर्लैण्डके कुछ युवकोंने शिक्षितवर्गमें गेलिक भाषाके प्रचारके निमित्त कुछ प्रयत्न आरम्भ किया था, उसीके साथ साथ प्राचीन आयरिश शिल्पकी उन्नति करना भी उनका उद्देश्य था। इस दलका नाम सेनफेन था। युद्धसे कुछ ही पहले जब होमरूलका आन्दोलन हो रहा था तब आवश्यकता पड़ने पर लड़भिड़ कर होमरूल रोकनेके लिए अलस्टर प्रान्तमें कुछ वालेंटियरोंका एक दल तैय्यार हुआ था। उनकी देखादेखी नेशनलिस्ट लोगोंकी भी एक वालेंटियर सेना तैयार हुई थी। जब युद्ध आरम्भ हुआ तब दोनों दलोंने मिलकर साम्राज्यकी सेवा करना निश्चित किया। पर सेनफेनर्सको यह वात पसन्द नहीं आई। उन लोगोंका मत था कि आयर्लैण्ड इस युद्धमें कोई सहायता न दे और तटस्थ रहे। मजदूर दलके कुछ नेता इनके पृष्ठपोषक थे जिनमें मि० रेडमण्डके शत्रु मि० लारकिन भी सम्मिलित थे। इस लिए जो सेनफेनर्स नेशनलिस्ट वालेंटियर्समें थे, वे अलग हो गये और उपद्रव करनेकी चिन्तामें लगे। इनका उपद्रव यहाँ तक बढ़ चला कि अधिकारियोंको हस्तक्षेप करनेकी आवश्यकता हुई। कई जगह तलाशीके समय सेनफेनर्सने पुलिस अफसरोंको गोली मार दी थी। इन्हीं सब उपद्रवोंके कारण सैनिक अधिकारियोंने सेनफेनदलके तीन नेताओंको छः दिनके अन्दर आयर्लैण्ड छोड़ देनेके लिए कहा। इसका विरोध करनेके लिए २० मार्चको एक सभा हुई जिसके सभासदोंने रातके समय कई जगह दंगा फसाद किया जिसमें कई आदमी मारे भी गये।

२१ अप्रैल सन् १९१६ को आयर्लैण्डके पश्चिमी किनारे पर एक

जर्मन गोताखोर और एक लड़ाईका जहाज दिखाई दिया। जहाजको तो एक अँगरेजी जहाजने रोककर डुबा दिया और गोताखोरने किनारे पहुँचकर सेनफेनर्सके नेता सर राजर केसमेण्टको उतारा। जिस प्रकार सन् १७९८ में उल्फटोन फ्रान्ससे सहायता लाया था उसी प्रकार इस बार केसमेण्ट जर्मनीसे सहायता लाया था। पर सौभाग्यवश सेनाने उसी स्थान पर केसमेण्टको पकड़कर लन्दन भेज दिया जहाँ वह टावर आफ लण्डनमें कैद कर दिया गया। २४ तारीखको डब्लिनमें फिर झगड़ा हुआ जिसमें सेनफेनर्सने कई बड़ी बड़ी इमारतों पर आक्रमण करके उन्हें अपने अधिकारमें कर लिया। उस दिन और भी कई स्थानों पर इसी तरहकी घटनायें हुई। डब्लिनमें बारेकको जाती हुई सरकारी सेना भी रोक ली गई। २४, २५ और २६ को दूसरे स्थानोंसे कुमक आई जिसने किसी प्रकार विद्रोहका दमन किया। सब नेताओंने हथियार रख दिये। कुल मिलाकर १००० विद्रोही पकड़े गये, जिनमेंसे आधेके लगभग इंग्लैण्ड भेज दिये गये। उसी समय आयर्लैण्डमें फौजी कानून भी जारी हो चुका था जिससे शान्ति होनेमें बहुत सहायता मिली। कई आदमियोंको सैनिक न्यायालयकी आज्ञासे गोली मार दी गई और बहुतोंको बड़ी बड़ी सजायें हुई। १५ मईको लन्दनमें केसमेण्ट पर शत्रुके साथ मिलकर घोर उत्पात करनेके अभियोगमें मुकद्मा चलाया गया। केसमेण्टको फाँसीकी आज्ञा हुई। केसमेण्टने अपील की थी जो १५ जुलाईको खारिज हो गई। ३ अगस्तको केसमेण्टको फाँसी होनेको थी। इससे पहले ही मि० एसक्विथकी सेवामें एक प्रार्थनापत्र उपस्थित किया गया जिसमें कहा गया था कि केसमेण्टको प्राण दण्ड न हो। उस पत्र पर छः बिशपों, २६ पार्लमेण्टके मेम्बरों और ५१ दूसरे बड़े बड़े आदमियोंके हस्ताक्षर थे। पर प्रार्थना स्वीकृत नहीं हुई और ३ अगस्तको केसमेण्टको फाँसी हो गई। यहाँ यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं कि इससे बहुत पहले आयर्लैण्डमें पूर्ण शान्ति हो गई थी।

सारासार-विचार ।



पिछले छः भागोंमें आयर्लैण्डका प्राचीन और अर्वाचीन इतिहास तथा आयरिश लोगोंके न्यायानुमोदित तथा अन्य आन्दोलनोंका वर्णन संक्षेपमें दिया गया है । इस इतिहास और इस वर्णनको ध्यानमें रखकर व्यापक और तात्त्विक दृष्टिसे जो सारासार-विचार उठ सकते हैं प्रस्तुत भागमें हम उन्हींका दिग्दर्शन करना चाहते हैं ।

आयरिश इतिहासके युगान्तर । संसारके इतिहासकी भाँति राष्ट्रके इतिहासमें भी युगान्तर होते हैं । युगान्तरका मतलब है--काल-विभाग । राष्ट्रके आयुष्यक्रमसे जिस काल-विभागमें कुछ विशिष्ट बातें होती हैं अथवा पहलेकी बातोंका परिणाम पूर्णताको प्राप्त होता है वह राष्ट्रका युग कहलाता है । इस दृष्टिसे देखते हुए आयर्लैण्डके इतिहासमें नीचे लिखे अनुसार काल-विभाग या युगान्तर होते हैं ।—(१) पहला युग पाँचवी शताब्दीतक । इस युगमें आयर्लैण्डमें अनेक जातियोंके लोगोंकी बस्ती कायम हुई, सब लोग एक ही ईसाई धर्म्ममें लाये गये और उनका राष्ट्र बना । (२) दूसरा युग बारहवीं शताब्दीतक । इस बीचमें स्वदेशी आयरिश राजाओंने अनेक युद्ध करके और पराक्रम दिखलाके ऐसे कृत्य किये जिनके लिए उनके वंशजोंने आगे चलकर पँवाड़े गाये और जिनका अभिमानपूर्वक उल्लेख किया । इन्हीं दिनोंमें खेती तथा शिल्प आदिका आरम्भ हुआ । (३) तीसरा युग सोलहवीं शताब्दीतक होता है । इस युगमें पहले आयर्लैण्डमें अंतःकलहका आरम्भ हुआ और अँगरेजोंका आयर्लैण्डमें प्रवेश हुआ । अँगरेजी सत्ता-का चढ़ाव-उतार होते होते उसकी स्थिर रूपसे स्थापना हो गई और अंतमें सोलहवीं शताब्दीमें सारे यूरोपमें धर्म-क्रान्ति हुई । इंग्लैण्डके राजा आठवें हेनरीने पोपकी सत्ता हटा दी और स्वयं खुले-आम आयर्लैण्डके

राजाकी पदवी धारण की। (४) चौथा युग सन् १७०३ तक माना जाता है। इन सौ सवासौ बरसोंमें आयर्लैंडमें स्वतंत्रता प्राप्त करनेके लिए और धर्म्म-द्वेषके कारण दो एक विद्रोह हुए। लेकिन उनमें आयरिश लोगोंकी हार हुई और उन पर फिरसे स्थायी रूपसे अँगरेजोंका अधिकार जमा। देशमें प्रोटेस्टेण्ट लोगोंकी बस्ती खूब बढ़ी और राष्ट्रके दो परस्पर विरोधी अंग स्थापित हुए; एक तो संख्यामें अधिक रोमन कैथोलिक लोगोंका और दूसरा सम्पत्ति, सत्ता और राजाश्रयके कारण प्रबल प्रोटेस्टेण्ट लोगोंका। हजारों आयरिश लोग मारे गये और हजारों देश छोड़कर भाग गये। प्रायः सारी जमीन प्रोटेस्टेण्ट अँगरेज जमींदारोंके हाथमें चली गई और कैथोलिक लोग ऊपरी काश्तकार बने। कैथोलिक लोगोंका सब ओरसे कानूनके द्वारा बहिष्कार हुआ; विद्या, सम्पत्ति तथा मान-सम्मान आदिमें वे स्वदेशमें ही पराये बने और उनकी स्थिति मूर्ख गुलामोंकी सी हो गई। व्यापारविषयक कानून भी बने, जिनके कारण देशका पुराना बचा हुआ थोड़ा बहुत शिल्प भी नष्ट हो गया। अंतमें सन् १७०३ में आयरिश पार्लमेण्टको अँगरेजी पार्लमेण्टमें मिलानेका विचार हुआ; लेकिन यह समझ कर वह विचार कार्य्यरूपमें परिणत नहीं किया गया गया, कि उससे अँगरेजोंकी हानि होगी। आयरिश इतिहासमें यह युग बड़ा ही भयानक हो गया है। (५) पाँचवाँ युग सन् १७०३ से १८०१ तक केवल अट्ठानवे वर्षोंका है। इस युगमें आयर्लैण्डमें शान्ति थी; इसी युगमें प्रोटेस्टेण्ट और रोमन कैथो-लिक लोगोंकी द्वेष-बुद्धिमें कमी आरम्भ हुई; स्वधर्म्माभिमानकी अपेक्षा स्वदेशाभिमान अधिक श्रेष्ठ समझा जाने लगा और आयरिश पार्लमेण्टके सुधारके सम्बन्धमें आन्दोलन आरम्भ हुआ। ग्रटन और फ्लड सरीखे राजनीतिज्ञ और वक्ता इसी युगमें हुए, जिनसे आयर्लैण्डका मुख उज्ज्वल हुआ; नैशनल वालेंटियर लोगोंकी पलटनें तैयार हुई और देशके लिए

लोग हर तरहका स्वार्थत्याग करनेको तैयार हुए। इसी भरोसे पर आयरिश लोगोंने सन् १७८२ में स्पष्ट रूपसे यह निश्चय कर लिया कि– "अँगरेजी पार्लमेण्ट और आयरिश पार्लमेण्टमें किसी प्रकारका सम्बन्ध नहीं है; केवल दोनों देशोंका राजा एक है।" ज्योंही आयरिश पार्लमेण्टके सुधारका वास्तविक आरम्भ होनेको था, त्योंही बीचमें फ्रान्स और अमेरिकाकी राज्यक्रान्ति देखकर बहुतसे आयरिश देशभक्तोंके दिमागमें स्वतंत्रताका विचार चक्कर मारने लगा और फ्रान्सकी सहायता लेकर सन् १७९८ में उल्फटोनने विद्रोह किया। वह विद्रोह शान्त किया गया और पार्लमेण्टकी स्वतंत्रता पर आक्रमण हुआ। पिटने लाखों रुपये घूस देकर और पदवियाँ बाँटकर आयरिश पार्लमेंटके सभासदोंको अपनी ओर मिला लिया। सन् १८०१ में आयरिश पार्लमेण्ट तोड़ दी गई और आयरिश लोगोंके प्रतिनिधि वेस्ट मिनिस्टरमें पार्लमेण्टमें बैठने लगे; डब्लिनमें केवल वाइसराय और शासन करनेवाले अन्य अधिकारी रह गये और राजकार्य्यका मुख्य केन्द्र लण्डन हो गया। (६) छठा युग सन् १८०० से १८९३ तक लिया जा सकता है। इस युगमें रोमन कैथोलिक लोगोंके साथ न्याय हुआ; उन्हें प्रोटेस्टेण्ट लोगोंके समान अधिकार मिले और उनके धनसे प्रोटेस्टेण्ट धर्म्म-मण्डलका पालन होना बंद हुआ। कैथोलिक काश्तकारोंको भूमिका स्वामित्व देनेका आन्दोलन बहुत कुछ सफल हुआ। होमरूलका प्रश्न अँगरेज राजनीतिज्ञोंने अपने हाथमें लिया और चाहे होमरूल नहीं मिला तो भी आयरिश लोगोंको स्थानिक स्वराज्यके पूरे अधिकार मिले और साम्पत्तिक स्थितिका सुधार आरम्भ हुआ। सन् १८९३ से आयर्लैण्डके इतिहासके नवीन युगका आरम्भ होना माना जा सकता है। इस युगमें होमरूलका प्रश्न फिरसे उठा और मि० एस्क्विथकी कृपासे होमरूलका बिल पास होकर कानून भी बन गया। पर

युद्धके कारण कुछ दिनोंके लिए उसका पालन रोक रक्खा गया। आयर्लैण्डको स्वराज्य मिलना निश्चय तो हो गया, पर अभी यह निश्चय नहीं कहा जा सकता कि पूर्ण स्वराज्यका सुख उसे कब भोगनेको मिलेगा। तो भी इसमें सन्देह नहीं कि उसका प्रारम्भ हो चला है। यदि इन छः युगोंके नाम रखने हों तो हमारी सम्मतिसे इस प्रकार रक्खे जा सकते हैं।—पहला क्रान्ति युग, दूसरा कीर्ति युग, तीसरा कलह युग, चौथा दास्य युग, पाँचवाँ उत्साह युग और छठा आकांक्षा युग। इस प्रकारकी युग-परम्परा और भी अनेक राष्ट्रोंके इतिहासमें दिखाई देगी। पुराना ऐश्वर्य्य अपने हाथसे गँवाकर फिरसे नया ऐश्वर्य प्राप्त करना बहुत ही कष्ट-साध्य होता है और उसके प्राप्त होनेतक कभी कभी युगोंके युग बीत जाते हैं।

आयर्लैण्ड और स्काटलैण्डकी तुलना। आयर्लैण्ड जिसप्रकार संयुक्त ब्रिटिश राष्ट्रका एक अंग है, उसी प्रकार स्काटलैण्ड और वेल्स ये दोनों राष्ट्र भी अंग हैं। ये दूसरे दोनों राष्ट्र भी पहले आयर्लैण्डकी तरह स्वतंत्र थे, परन्तु कालान्तरमें इंग्लैण्डने उन्हें जीतकर अपने राज्यमें मिला लिया। वेलस प्रान्त सन् १२८५ में इंग्लैण्डके राज्यमें जोड़ा गया, तभीसे इंग्लैण्डके युवराज 'प्रिन्स आफ वेल्स' अथवा वेल्सके राजकुमार कहे जाने लगे। स्काटलैण्ड और इंग्लैंड ये दोनों राष्ट्र सन् १६०१ में एक ही राज्यके अन्तर्गत आये और इसके सौ वर्ष बाद अर्थात् सन् १७०७ में दोनों राष्ट्रोंकी पार्लमेण्ट सभायें दोनों राष्ट्रोंके लोगोंकी सम्मतिसे एक कर दी गईं। एक ओर स्काटलैण्ड और वेल्स तथा दूसरी ओर आयर्लैण्डकी स्थितिमें एक ध्यानमें रखने योग्य अन्तर है। स्काटलैण्ड और इंग्लैण्डके बीचमें एक छोटीसी नदीके सिवा और कोई बाधा नहीं है और वेल्स प्रान्त तो बिलकुल इंग्लैण्डमें जुड़ा ही हुआ है। वह देश बिलकुल एक साथ ही लगा हुआ है और बीचकी सरहद

सैनिक आक्रमणके लिए जरा भी कठिन नहीं है। लेकिन आयर्लैण्ड और इंग्लैंडके बीचमें सत्तर मीलका समुद्र है और रास्तेमें कोई ऐसा बंदर नहीं है, जहाँ जहाज ठहर सकें। जिन दिनों खाली हवाके बहावकी सहायतासे जहाज चलते थे उन दिनों यह अन्तर और इस प्रकारकी सरहद सैनिक आक्रमणके बहुत ही प्रतिकूल होती थी। इतना होने पर भी आयर्लैण्डका राष्ट्र स्काटलैण्ड और वेल्ससे पहले ही अँगरेजोंने जीत लिया था। वेल्स और स्काटलैण्डको जीतते ही जेता और जित एक-जीव हो गये और उनमें किसी प्रकारका झगड़ा नहीं रह गया। यद्यपि इसका एक कारण अँगरेजोंकी राजकीय नीतिका अन्तर है, तथापि इन राष्ट्रोंके लोगोंका स्वभाव भी एक कारण है। इन कारणोंको समझानेके लिए राजकीय नीतिके अन्तर और आयरिश लोगोंके गुण–दोषका थोड़ासा विवेचन करना आवश्यक है। इंग्लैंडके साथ आयर्लैण्डकी तरह स्काटलैण्डका भी बहुत अधिक वैर था। तेरहवीं शताब्दीके अन्तमें अँगरेजोंने स्काटलैंड पर जो आक्रमण किये थे उनकी भी आयर्लैंडके आक्रमणकी सी ही दशा हुई। अँगरेजोंका अधिकार तो दोनों पर ही हो गया, पर नीचे लिखे हुए कारणोंसे स्काटलैंड और आयर्लैंडकी स्थितिमें बहुत अन्तर पड़ गया।–(१) स्काटलैंड और इंग्लैंडके युद्ध आयर्लैंडके युद्धोंकी अपेक्षा शीघ्र समाप्त हुए। (२) रानी एलिजबेथके पीछे स्काटलैंडका राजा ही इंग्लैंडकी गद्दी पर बैठा और इस प्रकार ये दोनों राष्ट्र एक-जीव हो गये। (३) अन्तिम युद्धोंमें स्काच लोग ही अँगरेजों पर भारी पड़ने लगे जिससे स्काटलैण्डके भीतरी भागोंमें अँगरेजोंका अधिक प्रवेश न हो सका। (४) आयर्लैण्डमें अँगरेजोंकी जीत होते ही धर्म्म-वैर आरम्भ हुआ। स्काटलैण्डके लोग प्रोटेस्टेण्ट अथवा प्रेसबिटेरोनियन पंथके थे, इस लिए अँगरेजोंके साथ उनका धर्म्म-वैर होनेका कोई कारण नहीं था। (५) आयर्लैण्डमें अँगरेजोंने कैथोलिक

लोगोंकी सारी जमीन छीन ली थी; लेकिन स्काटलैण्डमें वह बात नहीं हुई। इस लिए झगड़ेका एक मुख्य कारण उपस्थित ही नहीं हुआ। (६) स्काटलैण्डके लिए इंग्लैण्डवालोंने जो कायदे कानून बनाये थे और शिक्षा आदिके सम्बन्धमें जो सिद्धान्त रक्खे थे वे आयर्लैण्डकी अपेक्षा बिलकुल निराले और बुद्धिमत्तापूर्ण थे। क्योंकि अँगरेजोंको स्काच लोग आयरिश लोगोंकी तरह बिलकुल जंगली नहीं जान पड़ते थे। तात्पर्य यह कि केवल राजकीय परिवर्तनका लोगोंकी स्थिति पर विशेष परिणाम नहीं पड़ता; लेकिन अगर धर्म्म या भौतिक सम्पत्तिका नाश करनेवाली कोई नई परिस्थिति उपस्थित हो जाय. तो उसका परिणाम बड़े बड़े महलोंमें रहनेवाले अमीर उमरासे लेकर छोटीसी झोपड़ीमें रहनेवाले लोगों पर समान रूपसे पड़ता है और नई राजकीय परिस्थिति अप्रिय हो जाती है। सत्रहवीं शताब्दीमें आयर्लैण्डमें जो प्रचण्ड विद्रोह हुए थे, उनका आरम्भ इसी अप्रिय परिस्थितिसे दुःखी लोगोंने किया था।

आयरिश लोगोंके गुण-दोष। आयर्लैंडके लोगोंको यदि देखा जाय तो उनमें बहुतसे सद्गुण हैं; परन्तु साथ ही साथ बहुतसे दुर्गुण भी हैं। बारहवीं शताब्दीमें जब अँगरेजोंने आयर्लैंड जीता था तब आयरिश लोग बहुत कुछ जंगली स्थितिमें थे। धर्म्मोपदेशकोंके अतिरिक्त और लोगोंमें ऐसे गुण नहीं थे जो सुशिक्षाके कारण होते हैं। लड़ना और लूटमार करना ही उस समयके आयरिश लोगोंको पसन्द था। यदि यह कहा जाय कि धन कमानेका इसके अतिरिक्त और कोई साधन वे जानते ही न थे तो अत्युक्ति न होगी। खेती करना नामर्द और कमजोर आदमियोंका काम समझा जाता था। जो थोड़ा बहुत खेतीका काम था वह लड़कों और ऐरे गैरे लोगोंके सिपुर्द था। जो लोग जवान होते थे और जिनमें हथियार चलानेकी

शक्ति होती थी वे लूटमार, युद्ध, और शिकार करके अपना निवाह करते थे और नाम पैदा करते थे। आयरिश लोग शूर अवश्य होते थे, लेकिन उनके शौर्य्यका मुख्य उपयोग सदा अंतःकलह प्रदीप्त रखनेमें ही हुआ; राष्ट्रके शत्रुओंको दूर रखने या जीतनेमें उसका विशेष उपयोग नहीं हुआ। इसका कारण यही है कि उन लोगोंमें आपसमें कभी एका नहीं हुआ। आयर्लैंडके लोग अनेक शताब्दियों तक टोलियाँ बाँध कर रहते थे और प्रत्येक टोलीका मुख्य काम दूसरी टोलीके देशमें घुसकर जो कुछ अनाज, गोरू या धन मिले उसे लूट लाना था। लेकिन किसी ऐसे शत्रुको देखकर भी जो सब टोलियोंके लिए समान रूपसे नाशक होता, उनमें आपसके झगड़े मिटाकर एका करनेकी सुबुद्धि उत्पन्न नहीं होती थी। आज कल भी अँगरेजी जल तथा स्थलसेनाओंमें आधेसे अधिक प्रसिद्ध योद्धा और वीर आयरिश ही हैं। तथापि उनका युद्ध-कौशल और शौर्य्य आयरिश लोगोंके 'शत्रुके शत्रु' का नाश करनेमें खर्च होता है। सैनिक अधिकारियोंका मत है कि अँगरेजी सेनामें आयरिश लोगोंके समान शिष्टताका व्यवहार करनेवाले सिपाही दूसरे नहीं हैं। लेकिन दुर्भाग्यकी बात यह है कि उनकी इस सज्जनतासे उनके राष्ट्रीय कार्य्यको कभी विशेष लाभ नहीं हुआ। स्वदेशमें लड़ते समय आयरिश सिपाही कभी भलमनसतका बरताव नहीं करता; लेकिन जब वह अँगरेजी अधिकारीकी अधीनतासे काम करने लगता है तब उसके गुणका पूर्ण विकास हो जाता है। आयरिश लोगोंमें कवित्वशक्ति और सहृदयता भी उत्तम श्रेणीकी है और सैनिक ढंगके देशभक्ति-प्रेरित सुस्वर कड़खे और पँवाड़े भी आयरिश लोग ही कहते और बनाते हैं। पराक्रमके लिए अत्यन्त उपकारी इन कड़खों और पँवाड़ोंसे यद्यपि उनकी स्वातंत्र्यप्रियताकी अग्नि प्रदीप्त हो सकती है, तथापि एकता न होनेके कारण उस ज्वालासे परतंत्रताका जूआँ

नहीं जलाया जा सकता। धर्म्मकी दृष्टिसे देखते हुए उनमें तेजस्विता और तेजी बहुत है। लेकिन कैथोलिक लोगों पर उनके धर्म्मगुरुओं और धर्म्मोपदेशकोंका कुछ विलक्षण प्रकारका प्रभाव होता है। प्रोटेस्टेण्ट पंथको देखते हुए कैथोलिक पंथ कुछ कम सुधरा हुआ है। उसमें विधि-नियमोंका झगड़ा बहुत है और धर्म्मकी सारी इमारत शब्द-प्रमाण पर ही बनी हुई है। इस लिए धर्म्मोपदेशकों आदिके हाथमें शिष्यवर्गकी चोटी पूरी तरहसे है। अर्थात् धार्म्मिक विषयोंमें वे लोग जो आज्ञा अथवा व्यवस्था दें वही उनके शिष्यवर्गको चुपचाप मान लेनी पड़ेगी। इतना ही नहीं, बल्कि सामाजिक और राजकीय विषयोंमें भी धर्म्मगुरुकी बात ही बहुत कुछ मानी जाती है। कैथोलिक पंथ एक विशिष्ट प्रकारके विचारोंकी ओर ही झुका हुआ है और इस पंथके लोगोंमें तेजी कुछ अधिक और सहिष्णुता कुछ कम है। अतः विधर्म्मी लोगोंके साथ जब उनका सम्बन्ध होता है अथवा व्यवहार करनेका अवसर आता है तब वे नागरिकताकी दृष्टिसे सार्वजनिक हितके कामोंमें उन विदेशियोंसे उतनी सुविधायें नहीं करा सकते जितनी वास्तवमें करानी चाहिएँ। वे दैववादी होते हैं। लेकिन उद्योगसे मनुष्यका व्यक्तित्व जितना कसा और कमाया जाता है, उतना केवल दैववादसे और शब्द-प्रमाण मान कर परावलम्बी बननेसे कसा या कमाया नहीं जाता। धार्म्मिक विषयोंमें कैथोलिक लोगोंका मुख्य दोष ऊपर कहा हुआ विधि-नियमोंका बखेड़ा ही है। सामाजिक विषयोंमें अविवाहित रहनेके सम्बन्धमें धर्म्मकी आज्ञाका जो पक्षपात उनमें दिखाई देता है उसका परिणाम बहुत ही बुरा होता है। शिक्षाके विषयमें अधिकतर लोग श्रद्धा पर ही निर्भर रहते हैं; इस लिए शिक्षित लोगोंमें भी यथेष्ट चतुरता और युक्तिवादप्रियता नहीं दिखाई देती और शिक्षा एकांगी होती है। शिल्प, व्यापार आदिके सम्बन्धमें देखते हुए अविवाहित रहनेकी पद्धति और शब्द-प्रमाण भी

धन कमानेके मूल तत्त्वका विरोधी है । यदि राजकीय दृष्टिसे देखा जाय तो कैथोलिक लोगोंमें प्रगमन-शीलताकी भी बहुत कमी है । प्रोटेस्टेण्ट धर्म्ममेंके बहुतसे दोष निकल गये हैं और जबसे युरोपमें प्रोटेस्टेण्ट धर्म्मका प्रसार हुआ है तबसे वहाँ पर राजकीय सुधारों और द्रव्योत्पादक शिल्प और व्यापार आदिमें बराबर वृद्धि ही हुई है । आयर्लैंडमें कैथोलिक और प्रोटेस्टेण्ट दोनों पन्थोंके समाज पास ही पास रहते आये हैं, इस लिए वहाँ ऊपर कहे हुए गुणों और दोषोंके बहुत अच्छे उदाहरण और प्रमाण मिलते हैं । इसमें सन्देह नहीं कि कैथोलिक लोगोंके साथ बहुत दिनोंतक अत्याचार-पूर्ण नियमोंका पालन होता था; तथापि जब ये नियम टूट गये तबसे पीछेके इतिहास-में भी उक्त भेद देखनेमें आते हैं । कैथोलिक लोग एकान्त-प्रिय, तेज मगर लड़ाके, असहिष्णु, दैववादी, अल्पसंतुष्ट, मनुष्यके व्यक्तिगत गुणोंको विकसित न होने देनेवाले, अदूर-दर्शी और राजकीय विषयोंमें अनुदार होते हैं । लेकिन प्रोटेस्टेण्ट लोग सुधरे हुए, होशियार, साहसी, खुले दिलके, उत्साही, उद्योगी, उच्चाकांक्षी, राजकीय विषयोंमें प्रगतिशील, स्वतंत्रता और समताके इच्छुक और भोक्ता और रोजगार आदिमें खूब धन कमानेवाले और खर्च करनेवाले होते हैं । इस लिए आयर्लैंडके उत्तर–भागके–जहाँ मुख्यतः प्रोटेस्टेण्ट लोगोंकी बस्ती है और दक्षिण भागके जहाँ कैथोलिक लोगोंकी विशेष बस्ती है—स्वरूप आदिमें बहुत बड़ा अन्तर दिखाई देता है । आयरिश लोग धार्म्मिक होते हैं, लेकिन उनकी धार्म्मिकतामें धर्म्म-भ्रमका बहुत कुछ मिश्रण होनेके कारण उनकी धर्म्म-बुद्धि तामसी गुणोंको दबाकर सात्त्विक और राजस विकारोंकी प्रबलता स्थापित नहीं कर सकती । उनके मनपर हर एक बातका तुरन्त प्रभाव पड़ता है परन्तु वह प्रभाव गहरा नहीं होता और अधिक समय तक नहीं ठहरता । इस लिए उनकी कविता और

कला लालित्यकी दृष्टिसे तो बहुत सुंदर होती हैं, परन्तु उनमें प्रौढता, गम्भीरता और विचारोंकी गहनता अधिक नहीं होती। उनमें कल्पनाशक्ति अधिक होती है, लेकिन उसमें गम्भीर और दृढ़ संकल्पोंका जोर नहीं होता; इस लिए उनके द्वारा कोई विशेष स्थायी कार्य्य भी नहीं होता। आयरिश लोगोंके समान प्रेम-पूर्ण, विनोदी और हँसी खुशीसे दिन बितानेवाले लोग दूसरे देशोंमें बहुत कम मिलते हैं। लेकिन इन्हीं गुणोंके साथ साथ उनमें अविचारशीलता, अदूर-दर्शिता आदि दोष भी मिले हुए हैं, इस लिए उन गुणोंका जैसा फल होना चाहिए वैसा फल नहीं होता।

ऊपर कहे हुए गुणों और दोषोंसे आयरिश लोगोंको विदेशियोंकी अधीनतामें जानेमें जितनी सहायता मिली उनके कारण उतनी ही सहायता उस अधीनतामें स्थिर रहनेमें भी मिली। जबसे आयर्लैंड पर अँगरेजोंका राज्य हुआ तबसे आयरिश लोगोंको अपनी खोई हुई स्वतंत्रता प्राप्त करनेके अनेक अवसर मिले। लेकिन उन सभी अवसरों पर उनके गुणोंकी अपेक्षा दोष ही अधिक प्रभावशाली हुए। एक भी अवसर पर उन्होंने आपसमें एका करके विदेशियोंके आनेमें कठिनता उत्पन्न नहीं की। ऐसा कभी नहीं हुआ कि अँगरेजोंको अपना अधिकार बनाये रखनेमें आयरिश लोगोंके किसी न किसी वर्गकी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सहायता न मिली हो। पहले पहले स्वातंत्र्य नष्ट होनेके समय जितना एकदिल होकर और जितने जोरोंसे आयरिश लोगोंको लड़ना चाहिए था उतना एकदिल होकर और उतने जोरोंसे वे नहीं लड़े। स्कॉच और वेल्श लोग यद्यपि आयरिश लोगोंकी अपेक्षा संख्यामें कम थे और उनके साथ लड़ाई जारी रखनेमें अँगरेजोंको अधिक कठिनता नहीं होती थी, तथापि उन दोनों राष्ट्रोंके लोगोंने आयरिश लोगोंकी अपेक्षा अधिक जमकर युद्ध किया था। आयरिश लोगोंने पहले पर-राष्ट्रका

जूआँ आपसके झगड़ेके कारण ही अपने कन्धे पर रखवाया था। जिस समय यह जूआँ उनके कन्धे पर पड़ा था उस समय, चाहे आगेके परिणामका ध्यान न होनेके कारण कह लीजिए और चाहे यह कह लीजिए कि परकीयोंकी अपेक्षा स्वकीयोंका द्वेष ही आयरिश लोगोंके मनमें अधिक प्रबल था, राष्ट्रमें इतनी एकता उत्पन्न नहीं हुई थी जिसकी सहायतासे विदेशियोंके अधिकारका जूआँ तत्काल ही कन्धेपरसे फेका जा सकता। इसके उपरान्त आयर्लैंडकी अपेक्षा इंग्लैंड दिन पर दिन अधिक बढ़ा और प्रबल होता गया, जिससे यह जूआँ और भी भारी होता गया। तथापि इधर शताब्दियोंसे कभी आयरिश लोगोंने एकदिल होकर और दृढ़ निश्चय करके विदेशियोंका अधिकार हटानेका कभी कोई प्रयत्न नहीं किया। इंग्लैंडमें शान्ति विराजनेके समय और राष्ट्र पर अन्य किसी प्रकारका संकट न रहनेके समय आयरिश लोग एक होकर जो विद्रोह करते, उसके सफल होनेकी कोई सम्भावना नहीं थी। लेकिन–' जो अपने शत्रुकी होली वही अपनी दिवाली ' अर्थात् ' अपने शत्रुका संकट ही अपने लिए सबसे अच्छी सन्धि है ' वाले न्यायसे यदि आयरिश लोग काम करना चाहते, तो अँगरेजी अमलदारीका जूआँ अपनी गरदनसे हटा देनेके लिए उन्हें बहुतसे अवसर मिल सकते थे। इन सातसौ वर्षोंमें इंग्लैण्डका सारा समय सुखसे ही नहीं बीता। इस बीचमें इंग्लैण्डमें ही दो तीन बार लड़ाई हुई, राज्यासनके लिए झगड़े हुए, राजवंश उलट–पुलट गये और राज्यक्रान्तियाँ हुई। इंग्लैण्डके ये सब अवसर बहुत ही यातना और चिन्तामें बीते थे। यदि आयरिश लोग चाहते तो इन अवसरोंका स्वतंत्रता प्राप्त करनेके काममें अच्छा उपयोग कर सकते थे। लेकिन यह बात बहुत ही स्पष्ट है कि उनसे जिस प्रकार लाभ उठाना चाहिए था उस प्रकार उन लोगोंने लाभ नहीं उठाया।

राजा सातवें हेनरीके गद्दी पर बैठनेसे पहले कई वर्षोंतक इंग्लैण्डमें 'गुलाबी झण्डेका युद्ध' नामका प्रसिद्ध युद्ध होता रहा। उस समय देशके बहुतसे लड़ाके जवान कट गये थे और इंग्लैंड राष्ट्र बहुत ही निःसत्त्व और निर्वीर हो गया था। उस समय यदि आयरिश लोगोंने अपना हाथ चलाया होता तो चल गया होता। लेकिन उस समय आयर्लैण्डके लोगोंमें आपसमें ही झगड़ा हो रहा था। प्रायः नब्बे आयरिश सरदार अपने अपने सात आठ सौ अनुयायियोंके साथ एक दूसरेसे लड़ रहे थे। इतिहासकारोंने आयर्लैण्डकी उस समयकी स्थितिका जो वर्णन किया है उससे जान पड़ता है कि उन दिनों जहाँ किसी युवक योद्धाको यह मालूम हो जाता कि मेरा तलवारका हाथ अच्छा चलता है तहाँ वह अपने साथ सौ पचास आदमी ले लेता और छोटे मोटे जंगल, पहाड़ी पर या मैदानमें छोटीसी गढ़ी बाँधकर जितनी जमीन मिलती उतनी अपने अधिकारमें कर लेता और एक छोटासा सूबा खड़ा करके उसका राजा बन बैठता। भला ऐसे समयमें राष्ट्रीयताकी कल्पनाका उदय कैसे हो सकता था? इसके उपरान्त एक और अवसर उस समय था, जब कि राजा प्रथम चार्ल्सके राजत्वकालमें इंग्लैंडमें राज्यक्रान्ति हुई थी। राजा और पार्लमेंटके नेताओंमें अनबन हो गई थी और युद्ध आरम्भ हो गया था। उस समय आयर्लैण्डके लोगोंने कुछ उपद्रव अवश्य किया था, परन्तु यह उपद्रव मुख्यतः स्वदेशकी स्वतंत्रता प्राप्त करनेके लिए नहीं हुआ था। चाहे पहले पहल इस प्रकारकी कल्पना उनके दिमागमें आई हो, पर आगे चलकर यह कल्पना नहीं ठहरी।

ओनील आदि कुछ आयरिश सरदारोंने यह सोचा था कि यदि राजा चार्ल्स रोमन कैथालिक पंथ स्वीकार करेगा तो उसे आयर्लैण्डका राजा बनावेंगे और उसके लिए लड़ेंगे। तदनुसार राजाकी ओरसे विद्रोहका झण्डा खड़ा किया गया और कैथोलिक लोगोंने बसे हुए

प्रोटेस्टेंटोंकी हत्या भी की। लेकिन राजाकी ओरसे लड़नेवाले अँगरेज सरदार आरमांडको आयरिश लोगोंने यथेष्ट सहायता नहीं दी, इस लिए शीघ्र ही आयर्लैंडमें ओलीवर क्रामवेलने प्रवेश करके युद्ध आरम्भ कर दिया। इसके उपरान्त जब राजा दूसरे जेम्सको अँगरेजोंने गद्दीसे उतारा था तब भी यदि आयरिश लोग चाहते तो उस समयसे लाभ उठा सकते थे। लेकिन उस समय भी उन्होंने जैसा चाहिए वैसा प्रयत्न नहीं किया। शीघ्र ही राजा विलियमने चालाकीसे आयरिश लोगोंकी ऐसी स्थिति कर दी जिसमें वे फिर कभी सिर न उठा सकें। इसके उपरान्त दिन पर दिन आयर्लैंड पर अँगरेजोंका अधिकार दृढ़ ही होता गया। इधर इंग्लैंडकी सत्ता और सेना बढ़ी, और उधर आयरिश लोग अन्यायपूर्ण नियमोंसे पीसे जाकर निर्धन और निःसत्त्व हुए। उनके पासके हथियार आदि निकल गये और साथ ही उनकी छाती पर प्रोटेस्टेंट लोगोंकी बस्ती भी खूब हो गई, जिसके कारण उनके लिए किसी प्रकारका उपद्रव करना दुस्साध्य हो गया। यद्यपि सारे राष्ट्रके लिए इस प्रकार उपद्रव खड़ा करना असम्भव था, तथापि व्यक्तिशः राष्ट्रभक्तोंने विद्रोहका झण्डा खड़ा किया ही था। लेकिन इन विद्रोहोंके वर्णनसे इस बातका पता लग जाता है कि आयरिश लोगोंके द्वारा राष्ट्रीयताकी स्फूर्तिमें कितना उद्योग होता था। उल्फटोन और राबर्ट एमेटने जो विद्रोह किये थे उनमें लोगोंने उतनी सहायता नहीं की, जितनी करनी चाहिए थी। इसका विशेष वर्णन आगे दी हुई चरित्रमालामें उनके चरित्रोंसे लगेगा। फीनियन लोगोंने जो विद्रोह किये थे वे भी इन्हीं कारणोंसे व्यर्थ हुए। इन सब बातोंसे यह जान पड़ता है कि या तो इन नेताओंको अपने आसपासकी लोकस्थितिका पूरा पूरा पता नहीं था और या समाज ठीक समय पर विश्वासघात करता था। चाहे जो हो, पर इस बातका उल्लेख अवश्य हो सकता है कि अपने अज्ञानके

कारण अथवा लोगोंकी स्थिति न जाननेके कारण केवल उत्साहसे उत्पन्न होनेवाली आशा पर निर्भर रहकर जिन महानुभाव रणशूर आयरिश देशभक्तोंने अपने प्राण गँवाये उनकी निजकी योग्यता और देशभक्तिके सम्बन्धमें मतभेद नहीं हो सकता। मित्र और शत्रु दोनों ही उनके स्वार्थत्यागकी प्रशंसा करेंगे। लेकिन सारे समाज या राष्ट्रकी दृष्टिसे देखते हुए यही कहना पड़ता है कि उनकी कार-गुजारीके सम्बन्धमें अधिक अनुकूल मत नहीं था। इसके अतिरिक्त आयर्लैंडमें जितने रणशूर और देशभक्त लोग उत्पन्न हुए उनसे कहीं अधिक घरके भेदी देशद्रोही ही उत्पन्न हुए। एकता और दृढ़ विचा-रसे तो वहाँ कोई योजना होती ही नहीं थी; और यदि कभी कोई योजना होती भी तो उसकी खबर शत्रुको उसी समय लग जाती; इसलिए भण्डा फूट जाता और लोगोंके गलेका फंदा और भी दृढ़ हो जाता। लेकिन एक बार यह निश्चय हो जाने पर कि अब स्वतं-त्रता पूरी तरहसे नष्ट हो गई, अपने जेताओंके साथ जितना बुद्धि-मत्तापूर्ण और राजनीतिज्ञतायुक्त व्यवहार रखना चाहिए उतना आयरिश लोगोंने नहीं रक्खा। स्कॉच और वेल्श लोगोंने ज्योंही यह समझा कि हमारी स्वतंत्रता नष्ट हो गई और अब खाली युद्ध करनेसे उसके वापस मिलनेकी विशेष संभावना नहीं है, त्योंही उन्होंने बुद्धिमत्तापूर्वक अँगरेजोंके साथ मिलजुलकर रहना आरम्भ कर दिया। और उन्होंने ऐसे उपायोंकी ओर ध्यान दिया, जिनसे दोनों पक्षोंको मान्य और लाभदायक एकता हो। लेकिन आयर्लैंडने आजतक कभी उस मार्गका अवलम्बन नहीं किया। यदि आयर्लैंडवाले युद्ध करके अपने राष्ट्रको स्वतंत्र रख सकते तो उनके सुख और ऐश्वर्यका पारावार न रहता। आयर्लैं-डकी भौतिक स्थिति स्वतंत्रताके लिए बहुत ही अनुकूल है; वह चाहता तो स्वतंत्र रहकर इंग्लैंड या फ्रान्स सरीखे राष्ट्रसे स्नेह करके अपना

लाभ कर सकता था। लेकिन पहले पहल स्वतंत्रता नष्ट होनेके समय आयरिश लोगोंको जो उत्तम प्रकारकी मरदानगी दिखलानी चाहिए थी वह तो उन्होंने दिखलाई नहीं; परन्तु उसके नष्ट होने पर उनमें जो एक गौण प्रकारकी मरदानगी थी, उसकी सहायतासे उन्होंने पाँच सौ वर्षों तक मनःक्षोभ और असन्तोष बना रक्खा और इस प्रकार राष्ट्रका मन और शरीर पीस डाला। वेल्श और स्कॉच लोगोंने स्वतंत्रता नष्ट होने पर जो थोड़ासा बल खाया उसके कारण उन्हें शीघ्र ही अँगरेजोंके समान अधिकार मिल गये और कुछ समयमें वे उनके साथ एकजीव हो गये। लेकिन आयरिश लोगोंने वह बात नहीं की। यों तो उनके रोमन कैथोलिक होनेके कारण अँगरेजोंके साथ उनके एकजीव होनेके मार्गमें अधिक अड़चन थी ही। तथापि आपसमें पूर्ण एकता करके अनुकूल परिस्थितिमें भी सिर उठानेकी तैयारी न करके उन्होंने केवल इधर उधर छोटे मोटे विद्रोह किये; और जिस समय विद्रोह भी नहीं हो सकते थे उस समय षड्यंत्र, लूट-मार और गुप्त वध आदि करके देशकी अस्वस्थता और असन्तोष तथा राजकर्म्मचारियोंका क्रोध सदा बनाये रक्खा। इस कारण उन्हें स्वतं-त्रता तो मिली नहीं, उलटे उनकी दुरवस्थामें दुःखकी ही वृद्धि हुई।

आयरिश लोग अपने इन्हीं गुणों और दोषों तथा पूर्वेतिहास आदि बातोंके कारण राजनीति-प्रिय बने हुए हैं। उन्हें राजनीति जितनी प्रिय है उतनी और कोई चीज प्रिय नहीं है। शराबीके लिए जैसे शराब और जुआरीके लिए जैसे जूआ है, आयरिश लोगोंके लिए वैसे ही राज-नीति है। उसके अभावमें उन्हें और कुछ सूझता ही नहीं, और ऐसे प्रसंग बहुधा आया करते हैं। क्योंकि आयरिश राजनीति केवल विरोध करना ही है। लेकिन इस विरोधकी भी स्वभावतः कुछ मर्य्यादा है। विरोध अपने देशकी पार्लमेंटमें होना चाहिए। और फिर पार्लमेंटकी

अवस्था देखते हुए जितना विरोध पार्नेलके समयमें हो सकता था उतना अब नहीं हो सकता था। क्योंकि पार्नेल और उनके सहकारियोंने पार्लमेंटके नियमोंसे लाभ उठाकर जो धमा-चौकड़ी मचाई थी, उससे सचेत होकर पार्लमेंटने अपने वादविवादके नियम बहुत कुछ बदल दिये थे। इन नये नियमोंके कारण कोई सभासद किसी विषय पर बहुत अधिक विवाद नहीं बढ़ा सकता। यदि कोई बहुत अधिक विवाद बढ़ाने लगे तो पार्लमेंटका अध्यक्ष सभाकी सम्मति लेकर अथवा अपने अधिकारसे ही उसे रोक सकता है और यदि कोई सभासद इससे भी आगे बढ़ जाय तो वह सिपाहियोंके द्वारा पार्लमेंटसे बाहर निकलवाया जा सकता है। बहुत बोलकर लोगोंको दुःखी कर देना ही पार्लमेंटका विरोध है, और उसीके रोकनेका यह उपाय है। लेकिन यह उपाय पार्लमेंटके कामोंकी अड़चन रोकनेके लिए है। स्वयं अपने पक्षमें मनमानी अड़चनें डालनेका सबको अधिकार है और उसे कोई रोक नहीं सकता। इसी लिए सन् १९१४–१५ में जब आयर्लैण्डका होमरूल बिल पार्लमेंटमें पेश था तब आयर्लैण्डके अलस्टर प्रान्तके यूनियनिस्ट दलने अपना राजनीतिक प्रयत्न नहीं छोड़ा और होमरूलका घोर विरोध किया था। बल्कि इन्हीं लोगोंकी इस राजनीति-प्रियताके कारण होमरूल बिलके पास होनेमें इतना विलम्ब हुआ। विरोधका दूसरा मार्ग है बहिष्कार, अशस्त्रप्रतीकार अथवा उपद्रव आदि। लेकिन एक तो इस प्रकारकी बातोंके लिए एक विशिष्ट समयकी आवश्यकता होती है और उसी विशिष्ट समयमें ये बातें हो सकती हैं। सालके ३६५ दिनोंमें वे बराबर हो नहीं सकतीं। और दूसरे इस प्रकारकी घोर और अनुचित बातें सरकारी अधिकारियोंके अनुचित नियमोंसे दुःखी और क्रुद्ध होने पर होती हैं, लेकिन ऐसे नियम प्रतिदिन नहीं बनते। अपने बाकीके सब कामोंको तिलांजलि देकर स्वार्थत्याग करके सरकारके कृत्योंकी केवल

बदनामी करनेके लिए ही ये सब बातें होती हैं। लेकिन इस प्रकार केवल बदनामी करनेके लिए ही अपना काम-धन्धा छोड़ देने-वाले लोग स्वभावतः बहुत ही थोड़े होते हैं।

इसके अतिरिक्त शिक्षा और संस्कारमें जितनी वृद्धि होती है तामस भावमें उतनी ही कमी भी होती है। ऊपर विरोधके दूसरे मार्गके जो उपाय बतलाये गये हैं वे उपाय आयर्लैण्डके खेतिहर आदि कनिष्ट प्रकारके लोग ही किया करते थे। लेकिन इधर कुछ दिनोंसे आयर्लैण्डमें अँगरेजोंने शासनकी नीति कुछ बदल दी थी और खेतिहरोंके लिए कुछ सुविधायें कर दी थीं। इस लिए खेतिहरोंका असन्तोष कुछ कम हो गया था और इस दूसरे प्रकारका विरोध रुक गया था।

आयरिश लोगोंके राजनीति-प्रिय होनेका एक और कारण है और वह कारण उनका पक्षाभिमान दोष है। उदाहरणार्थ, जिस कुल या घरानेमें उनका जन्म होगा उसका अभिमान वे प्राण रहते कभी न छोड़ेंगे; दूसरा घराना चाहे कितना ही अच्छा क्यों न हो, पर उन दोनों घरानोंमें कभी एक होनेका विचार नहीं होगा। इसी लिए उनके अभि-मानको बहुतसे अवसरोंपर ठीक ठीक अर्थमें दुरभिमान कहना पड़ता है। जो बातें घरानेके लिए हैं वे ही पक्षके लिए भी हैं। किसी पक्षके नेताके मुँहसे एक बार कोई बात निकलनी चाहिए। बस फिर सबके सब उसके पीछे भेड़ोंकी तरह लग जायँगे और उसके लिए प्राण तक दे देंगे। लेकिन यदि नेताका कथन भ्रमपूर्ण हो अथवा उसके मतसे अपना मत न मिलता हो तो स्पष्ट रूपसे कहने और अपने मतका समर्थन करनेका गुण उनमें नहीं होता। उनमें यह समझनेकी भी योग्यता नहीं होती कि नेताका मत सच्चा है या झूठा। वह जो कुछ कहता है उसीको उसके अनुयायी प्रमाण मान लेते हैं; इसलिए नेताको भी अहंकार हो जाता है। नेता और अनुयायियोंका ऐसा मेल मिल जानेके कारण उन सब कामोंमें भी

विशेष उन्नति नहीं होती, जो देखनेमें अच्छी तरह चलते हुए जान पड़ते हैं। क्योंकि वास्तवमें उन्नति होनेके लिए विचारोंकी स्वतंत्रताकी आवश्यकता होती है; और आयरिश लोगोंमें इसकी कमी है। उनकी राजनीतिके सम्बन्धमें एक दूसरी बात यह है कि उनकी टीका बहुधा नाशक या प्रध्वंसनपर (Destructive) हुआ करती है। लेकिन इस विषयमें यह भी नहीं कहा जा सकता कि सब दोष उन्हींका है। जिस पक्षके लिए सरकारने निरन्तर दोष निकालनेके अतिरिक्त राजनीतिका और कोई काम न छोड़ रक्खा हो वह भला घंटनात्मक (Constructive) टीका कैसे कर सकता है ? और फिर आयरिश लोग केवल होमरूलका कष्टसाध्य ध्येय अपने सामने रख कर बैठे थे और कोई नया काम करनेके उत्तरदाता और अधिकारी इंग्लैंडके मंत्री थे। तब भला आयरिश लोगोंके संघटनात्मक कागजी घोड़े दौड़ानेसे क्या लाभ होता ? अँगरेज अधिकारी तो छोटी छोटी बातोंके बारेमें पूछते कि तुम्हें यह चाहिए ? तुम्हें वह चाहिए ? और आयरिश लोग हर एक बातके दोष दिखलाते थे और उसका विरोध करते थे। यही सिलसिला इधर बहुत दिनोंतक चलता रहा। इसी तरहकी एक मजेदार कहानी है। सास तो विधवा होकर एक अलग कोठरीमें जा बैठी और तब पहले की कसर निकालनेके लिए बहूने एक बढ़िया युक्ति निकाली। वह सासके पास जाकर सौभाग्यालंकारके प्रत्येक पदार्थके सम्बन्धमें उससे पूछती–‘ तुम्हें सेंदुर चाहिए ? ’ ‘तुम्हें चूड़ी चाहिए ? ’ सास बेचारी कुढ़ कुढ़ कर कहती कि ‘मुझे कुछ नहीं चाहिए’ और जोर जोरसे रोती। तब बहू लोगोंसे कहती कि–“देखो मैं सब चीजोंके बारेमें इससे पूछती हूँ कि तुम्हें यह चीज चाहिए, तुम्हें यह चीज चाहिए, पर यह सबके लिए ‘ नहीं ’ ‘ नहीं ’ कहती है और रोती है।” आयलैंड और इंग्लैंड-के सम्बन्धमें यद्यपि आयर्लैंड बहू और सास इंग्लैंड है, तथापि युक्ति

वही है। आयलैंडको चाहिए तो था होमरूल, पर उसे न देकर इंग्लैंड उससे पूछता था कि तुम्हें कहीं म्युनिसिपैलटी चाहिए? कहीं अधिकार चाहिए? और आयलैंड 'नहीं' 'नहीं' करता और चिल्लाता था। राम राम करके आयलैंडको होमरूल मिलना निश्चय हुआ और यह चिल्लाहट कुछ कम हुई।

असन्तोषका मर्म्म । आयरिश लोगोंके पाँच सौ वर्ष दासत्वमें और दो ढाई सौ वर्ष आन्दोलनमें बीते । तथापि गई हुई राष्ट्रीयता फिरसे प्राप्त करनेकी उनकी उच्चाकांक्षा नष्ट नहीं हुई थी । यह उच्चाकांक्षा उनके रक्तमें मिली हुई थी। क्योंकि यह उच्चाकांक्षा केवल आयलैंडमें रहनेवाले आयरिश लोगोंमें ही नहीं थी, बल्कि आयरिश वंशके उन लोगोंमें भी राष्ट्रीयताकी कल्पना थी जो सैकड़ों बरसोंसे स्वदेश छोड़ कर विदेशमें जा बसे थे और जिनका स्वदेशके साथ विशेष सम्बन्ध नहीं था। हिन्दू लोग जिस प्रकार कल्कि अवतारका होना मानते हैं उसी प्रकार आयरिश लोग भी—चाहे वे संसारके किसी भागमें रहते हों—यह मानते थे कि हमारे लिए कभी न कभी स्वतंत्रताका दिन अवश्य आवेगा और बहुधा वह दिन अब दूर नहीं है। सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दीमें प्रोटेस्टेंट शासनसे दुःखी और त्रस्त लाखों आदमी इंग्लैंडको गालियाँ देते हुए बड़े कष्टसे और विवश होकर विदेश चले गये थे। इस प्रकार स्वदेश छोड़कर आयलैंडसे जितने लोग आजतक विदेश गये उतने और किसी देशसे किसी समय और किसी कारणसे नहीं गये थे। पर विदेश जाने पर वहाँ उन्हें स्वदेशकी अपेक्षा अधिक सुख मिला। वे स्थायीरूपसे वहाँ बस गये—उन्होंने घरबार बनाया, कामधन्धा शुरू किया और धन कमाया। भला इससे अधिक और कौनसा सुख उन्हें स्वदेशमें मिलता? देश छोड़कर आयरिश लोग प्रधानतः अमेरिका और फ्रान्स गये थे और वहाँ उन लोगोंने ऐसे ऐसे राष्ट्रीय काम

किये, जिनके कारण बहुत दिनों तक उनका नाम बना रहा। अर्थात् इस नई भूमि पर उनका प्रेम हो गया। तो भी दत्तक लड़केको नये घरमें भोगनेके लिए चाहे कितनी ही सम्पत्ति और सुख क्यों न मिले, पर उसकी प्रेमपूर्ण दृष्टि अपने पहले घर पर रहती ही है। और विशेषतः जब पहले घरमें उसके माँ-बाप और भाई-बंद विपत्तिमें अपने दिन बिताते हैं तब उसके मनमें स्वभावतः उनकी सहायता करनेकी इच्छा उत्पन्न होती है। विदेशमें रहनेवाले आयरिश लोगोंकी भी यही दशा हुई। अपने पूर्वजोंकी जन्मभूमिका ध्यान उन्हें सदा बना रहा। वहाँसे वे अपने देशभाईयोंकी बराबर खबर लेते रहे, सब तरहके राष्ट्रीय आन्दोलनोंमें बराबर धनकी सहायता करते रहे, होमरूलके आन्दोलनमें अपना प्रत्यक्ष हिताहित समझकर बराबर उसकी चर्चा कान लगाकर सुनते रहे और उनमें इतना उत्साह तथा विश्वास बना रहा कि आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों, और परसों नहीं तो सौ बरस बाद, यदि आयर्लैंड अनायास राष्ट्र बन गया तो ठीक ही है और नहीं तो यदि आयर्लैंडके लिए लड़ाई करनी पड़ी तो हमारे नाती पोते ही आयरिश लोगोंकी सहायताके लिए दौड़ेंगे। सन् १७९८ के विद्रोहमें फ्रान्सके आयरिश लोग उल्फटोनकी सहायताके लिए आये थे और यह पहले ही कहा जा चुका है कि उन्नीसवीं शताब्दीमें फीनियन लोगोंने राज्यक्रान्तिके लिए जो उपक्रम किया था उसका सारा सामान अमेरिकाके आयरिश लोगोंने ही किया था। अब तक होमरूलके नेता जान रेडमण्ड प्रायः प्रतिवर्ष अमेरिकाका एक दौरा किया करते थे और आते समय राष्ट्रीय पक्षके फण्डके लिए ‘अमेरिकन आयरिश’ लोगोंके स्वेच्छापूर्वक दिये हुए चन्देकी हजारों पाउण्डकी रकम जेबमें भर लाते थे।

अमेरिकामें जाकर बसे हुए आयरिश लोगोंने केवल अपने देशके कल्याणका ध्यान ही नहीं रक्खा था, बल्कि अपनी योग्यता आदिके कारण अच्छे अच्छे अमेरिकन राजनीतिज्ञों तथा अमेरिकन प्रजाकी सहानुभूति भी सम्पादित कर ली थी। उनकी यह सम्पादित सहानुभूति सन् १९१७ के मध्यमें उस समय काम आई जब अमेरिका भी वर्त्तमान युरोपीय महायुद्धमें मित्रोंके पक्षमें सम्मिलित हुआ। अमेरिकामें प्रजा-सत्तात्मक राज्य है और वहाँके राजनीतिज्ञ तथा निवासी इसी प्रकारकी शासन-पद्धतिके समर्थक हैं। अमेरिकाके इतने दिनों तक युरोपीय महा-युद्धमें सम्मिलित न होनेका बहुतसे अंशोंमें एक कारण यह भी था कि जिस पक्षमें वह मिलना चाहता था उसमें रूस भी सम्मिलित था। और ऐसे पक्षमें सम्मिलित होकर रूसके जारकी अत्याचारी शासन-पद्धति-का पक्षपाती और समर्थक बनना अमेरिकाको स्वीकृत न था। जब रूसमें राज्यक्रान्ति हो गई तब अमेरिकाने युद्धमें मित्रोंका पक्ष लिया। उस समय अमेरिकाकी सहानुभूति और मित्रता और अधिक दृढ़ करनेके लिए कुछ अँगरेज राजनीतिज्ञ भी प्रजा सत्तात्मक शासन-पद्धतिके-गुणोंका वह सुर और भी तेजीसे अलापने लगे, जो वे पहलेसे ही अमे-रिकाको अपने पक्षमें करनेके लिए अलापते आ रहे थे। पर अमेरि-कन राजनीतिज्ञोंसे यह न देखा गया कि अँगरेज राजनीतिज्ञ सुर तो अलापें प्रजा-सत्तात्मक राज्यका और उस आयर्लैंडको स्वराज्य देनेमें आनाकानी करें, जिसके साथ उनकी इतनी अधिक सहानुभूति और इतना गहरा सम्बन्ध है। अतः उन लोगोंने अँगरेजोंको बार बार खोदना शुरू किया और उन्हें आयर्लैंडकी दशाका स्मरण दिलाया। इनमें अमेरिकाके भूतपूर्व राष्ट्रपति मि० टैफ्ट भी थे, जिन्होंने अँगरेजों-से स्पष्ट कह दिया था कि यदि तुम आयर्लैंडका झगड़ा तै कर दोगे तो अमेरिकन बड़ी ही उत्सुकतासे युद्धमें तुम्हारी सहायता करेंगे। इसी

प्रकारका संकेत और भी अनेक राजनीतिज्ञोंने किया था, जिनमें न्यूयार्क के मि० मिचलका लेख और भी स्पष्ट था। उन्होंने लिखा था कि यदि अमेरिकाको इस बातका तनिक भी सन्देह हुआ कि इंग्लैंड संसारके अन्य राष्ट्रोंको जिस स्वराज्य दिलानेकी बात कहता है वही स्वराज्य वह आयर्लैंडको नहीं देना चाहता तो इंग्लैंडका दुर्दैव ही समझना चाहिए। अमेरिकाका यह जोर पहुँचाना आयर्लैंडके हितके लिए बहुत ही अच्छा हुआ। उसी समय इंग्लैंडने आयर्लैंडको पूर्ण स्वराज्य देनेसे पहले वर्तमान युद्धके समय ही ऐसी कनवेन्शन देना निश्चय किया, जिसके द्वारा वे अपनी भावी शासन-प्राणाली निश्चय कर सकें और साथ ही वहाँके राजनीतिक कैदियोंको भी छोड़ देना निश्चय किया। युद्ध समाप्त होनेके पहले ही आयर्लैंडको स्वराज्य-सुखका अनुभव करानेमें अमेरिकाकी वही सहानुभूति सफल हुई, जो देश त्याग कर वहाँ बसनेवाले आयरिश लोगोंने सम्पादित की थी। अस्तु।

आयरिश लोगोंके मनमें बहुत दिनोंतक राष्ट्रीयताकी कल्पना थी और इसी लिए अँगरेजोंके साथ उनका बैर चला आता था। इसके अतिरिक्त बैर होनेके और भी अनेक कारण थे, जो गत पाँच सौ वर्षोंसे चले आते थे। आजकल इंग्लैंडके सभी पक्षोंके लोग यह बात खुले दिलसे स्वीकार करते हैं कि सन् १८०० ईसवी तक आयर्लैंडमें इंग्लैंडका शासन बहुत ही अन्याययुक्त और अत्याचारपूर्ण था। सन् १८०० में उन पुराने अन्यायोंमें एक और अन्याय बढ़ गया और वह यह कि अँगरेज राजनीतिज्ञोंने निन्दनीय मार्गोंका अवलम्बन करके आयरिश पार्लमेंट तोड़ दी। यदि यहाँ तकके अन्यायोंका बदला आगे उदारता करके चुका दिया जाता तो भी कोई बात नहीं थी। लेकिन वह बात तो एक ओर रही, आयरिश लोग बराबर सौ वर्ष तक यही शिकायत करते रहे कि दोनों पार्लमेंटके एक होनेसे आयर्लैंडकी लाभकी अपेक्षा

हानि ही हुई है *। आजसे सैकड़ों वर्ष पूर्व आयलैंडमें कैथोलिक लोगोंपर जो धार्म्मिक अत्याचार हुए थे यद्यपि उन अत्याचारोंके कर्त्ताओंका कब्रोंमें आज नामो-निशान भी नहीं है, तथापि उनका स्मरण और क्लेश आजतक आयरिश लोगोंके मनमें बना हुआ है। आयरिश व्यापारियोंके हाथ-पैर तोड़नेके लिए सत्रहवीं शताब्दीमें जो कायदे बनाये गये थे उसके बनानेवाले कभीके जमीनमें गाड़े जा चुके। यही नहीं बल्कि वे कायदे भी आज रद्द हो गये और इंग्लैंड अनियंत्रित व्यापारके तत्त्वका समर्थन और प्रसार कर रहा है। तो भी इस अनियं-त्रित व्यापारसे लाभ किसका होता है? जिसके हाथ-पैर पहलेसे साबुत हैं उसका। जनमते ही किसी शिशुको हाथ पैर बाँधकर अन्धेरेमें रख देना और एक दिन उसे बाहर निकालकर कहना कि-"तुम मैदानमें मेरे साथ शर्त्त लगाकर दौड़ो; और यदि तुम न दौड़े तो उसमें मेरा क्या दोष।" और अब इंग्लैण्डका आयलैंडसे यह कहना कि-"अब करो और मेरे बराबर सम्पन्न हो जाओ। यदि तुम ऐसा न करोगे तो दोष तुम्हारा ही होगा।" दोनों बराबर ही हैं। ठीक वही बात पार्लमेंटके सम्बन्धमें भी थी। आयलैंडकी स्वतंत्र पार्लमेंट टूटनेके उप-रान्त अँगरेजी पार्लमेंटमें अबतक प्रायः सौ ही सभासद आयलैंडकी ओरसे चुने हुए होते हैं और इन एकसौमें भी फूट रहती है। राष्ट्रीय पक्षके केवल पचास साठ सभासद होते थे जो यह समझ कर चुपचाप एक कोनेमें बैठे रहते थे कि बहुमतके सामने हमारी तो कुछ चलेगी ही नहीं। तब भला आयरिश लोग अपनी पुरानी स्वतंत्र पार्लमेंटका वैभव कैसे भूल सकते थे? पर अंतमें बहुतसी कठिनाइयोंके उपरान्त ईश्वर

---

* मूल मराठी पुस्तकमें इंग्लैण्ड और आयलैंडके बैरकी अच्छी विवेचनाकी गई है। पर अब उस बैरका बहुतसे अंशोंमें नाश हो गया है, अतः इस अनु-वादमें इस सम्बन्धकी बातें बहुत ही संक्षेपमें ली गई हैं।—अनुवादक।

आयरिश लोगोंके अनुकूल हुआ और उन्हें स्वतंत्र पार्लमेंट तथा स्वराज्य मिलना निश्चित हुआ।

यह बात पहले ही कही जा चुकी है कि जबसे इंग्लैंडने आयर्लैंड पर विजय प्राप्त की तबसे वहाँ बराबर यही होता रहा कि जो काम करनेके लिए आयरिश लोग कहते थे वह नहीं किया जाता था, जो कुछ वे माँगते थे वह सीधी तरहसे नहीं दिया जाता था; और जिस कामके लिए वे मना करते थे वह जबरदस्ती उन पर लादा जाता था। यह सब आयर्लैण्डमें जाकर बसे हुए मुट्ठीभर प्रोटेस्टेण्ट लोगोंके लिए होता था। आयरिश लोग धार्म्मिक स्वतंत्रता और स्वतंत्र पार्लमेण्ट ही माँगते थे; पर ये दोनों चीजें उन्हें नहीं दी गईं और उनके धनसे विधर्म्मी मण्डल और विधर्म्मी शिक्षा-पद्धति चलाई गई और सैकड़ों वर्ष तक जमींदारीकी वह पद्धति वहाँ रही जो क्षण क्षण पर उन्हें कष्ट पहुँचाती थी। आयर्लैण्डमें प्रवेश करने पर पहले सौ दो सौ वर्षों तक अँगरेजोंका जो व्यवहार था उसके लिए उन्हें अधिक दोष नहीं दिया जा सकता। क्योंकि आयरिश लोग भी उनके साथ बदमाशी करते थे। ये पहले सौ दो सौ बरस आयर्लैण्डमें अँगरेजोंकी अमलदारी होनेमें बीते और हर एक देशमें अमलदारी होनेका समय दोनों ही पक्षोंके लिए त्रासदायक होता है। कोई समझदार यह नहीं कह सकता कि अँगरेजोंको हाथमें आया हुआ देश छोड़ देना चाहिए था; और जब उसे रखना था तब उस पर अपना अधिकार जमाना भी आवश्यक था। अधिकार जमानेके लिए तलवार निकालनी और रखनी पड़ती है, पर अँगरेजोंने सदा तलवार निकाली ही रक्खी। आयरिश लोग अपनी स्वतंत्रता खोनेके लिए तैयार नहीं थे, इस लिए उन्होंने भी अँगरेजोंको कष्ट पहुँचानेमें कमी नहीं की। लेकिन सन् १६४१ में जब इस झगड़ेका सदाके लिए फैसला हो गया उस समय अँगरेजोंको यह भय करनेका

कोई कारण न रह गया कि अब आयर्लैण्ड हमारे हाथसे निकल जायगा। अब यह बात अँगरेजोंको भी खुले दिलसे स्वीकार करनी पड़ेगी कि इसके उपरान्त अँगरेजोंको जितनी सहृदयताका व्यवहार करना चाहिए था उतनी सहृदयताका व्यवहार उन्होंने नहीं किया, इतना ही नहीं बल्कि अँगरेजोंने उस समय ऐसे कानून बनाकर आयरिश लोगोंकी राष्ट्रीयता नष्ट करनेका प्रयत्न किया जो सभ्यताके नाम पर कालिमा लगानेवाले थे। और यह बात बहुत ही बुरी हुई कि अट्ठारहवीं शताब्दीमें इंग्लैण्डसरीखे राष्ट्रकी अधीनतामें रहकर आयरिश लोग दरिद्र, दीन और हीन हो गये और उनके करीब करीब कंगाल होनेकी नौबत आ गई।

सन् १७७८ से रुख कुछ बदल अवश्य गया था, परन्तु इसके उपरान्त भी अँगरेजोंने जो कुछ दिया वह बड़े ही कष्टसे दिया। उत्साहपूर्वक और स्वयं बहुत कम दिया। अनेक अवसरों पर यही हुआ कि जब आन्दोलन बहुत बढ़ गया और हाथाबाँहीकी नौबत आई तब जाकर अँगरेज राजनीतिज्ञोंने आयरिश लोगोंकी प्रार्थना स्वीकृत की। पहले कैथोलिक लोग जमीनके मालिक होकर उसे काममें नहीं ला सकते थे। सन् १७७८ से उन्हें यह अधिकार मिला; परन्तु यह ध्यानमें रखना चाहिए कि इंग्लैण्डका वह वर्ष अमेरिकाकी गड़बड़की चिन्तामें बीता था। साराटोगामें अँगरेजी सेनाके परास्त होनेके उपरान्त इधर आयर्लण्डमें कैथोलिक लोगोंके कायदेके बन्धन ढीले होने लगे। सन् १७८२ में ब्रिटिश पार्लमेण्टने यह स्वीकृत किया था कि आयरिश पार्लमेण्ट स्वतंत्र है, लेकिन उससे पहले आयरिश राष्ट्रीय स्वयंसेवकोंकी सेना कवायद सीखकर तैयार हो चुकी थी और उसने बाकायदा तौर पर ही क्यों न हो, भिन्न भिन्न प्रकारोंसे अपनी कारगुजारी और ओजस्विता दिखलाई थी। सन् १७९३ में कैथोलिक लोगोंको म्युनिसिपैलटियोंके

चुनावमें सम्मति देनेका अधिकार मिला। लेकिन उससे पहले जॉन कीओघ और उल्फटोन दोनोंने आन्दोलन करके और इंग्लैण्डमें डेपुटेशन ले जाकर देश हिला डाला था और अलस्टर प्रान्तके स्वयं प्रोटेस्टेण्ट लोगोंने भी आँखें तरेरी थीं। १८२९ में कैथोलिक लोगोंको पूरी स्वतंत्रता आवश्य मिल गई; लेकिन उससे पहले आयर्लैण्डकी स्थिति कैसी थी, उसका अच्छी तरह पता उस पत्रसे लगता है, जो उस समयके प्रधान मन्त्री सर राबर्ट पीलने लिमरिकके धर्म्माध्यक्षको एक अवसर पर लिखा था। उस पत्रमें लिखा था—" इस समय इंग्लैण्डका किसी दूसरे राष्ट्रके साथ कोई झगड़ा नहीं है। यह बात दूसरी है कि इस कारण आयर्लैण्डमें शान्ति रखनेके लिए इँग्लैण्डकी सारी सेनामेंसे पाँच षष्ठांश सेना आज छः महीनेसे हम वहाँ रक्खे हुए हैं। लेकिन प्रत्यक्ष विद्रोहकी अपेक्षा यह स्थिति कहाँ तक अच्छी कही जा सकती है? मैं तो इसे और भी निकृष्ट कहूँगा। और जब शान्तिके समय यह दशा है तब युद्ध आरम्भ होने पर क्या होगा, इसकी कल्पना कृपा कर आप ही कर लें। इंग्लैण्डके लोगोंके खर्चसे पलनेवाली सेनाका आधा भाग यदि आयर्लैंडमें ही रखना पड़ा तो यह रखना उन्हें कहाँ तक पसन्द होगा? सन् १७८२ और १७९३ में जो दशा हुई थी वह हम लोग कैसे भूल सकते हैं? आप कहेंगे कि—' उस समय इंग्लैण्डने आयरिश लोगोंकी प्रार्थनायें स्वीकृत करलीं, यही बड़ी भूल की।' परन्तु आपको इस बातका ध्यान रखना चाहिए कि उस समय वे प्रार्थनायें प्रसन्नतासे नहीं स्वीकृत की गई थीं। उनके स्वीकृत न करनेके कारण राष्ट्र पर जो पहलेसे भी अधिक भयप्रद संकट आनेवाले थे उन्हीं संकटोंसे बचनेके लिए उनकी बातें मानी गई थीं।"

लार्ड मेलबोर्नके शासन-कालमें आयर्लैण्डको थामस ड्रमण्ड सरीखा प्रधान सेक्रेटरी मिला था और उसके अच्छे दिन आये थे। उस थोड़े-

से समयमें आयरिश लोग यह समझने लगे थे कि केवल न्यायबुद्धिसे अँगरेज राजनीतिज्ञ प्रजाको सुख दे रहे हैं। उस समय ओकानेलने भी राजनीतिज्ञता दिखलाकर आन्दोलन कम कर दिया था और ऐसी नीतिका अवलम्बन किया था, जिससे अधिकारियोंको चिन्ता न रह जाय; और वास्तवमें जो अधिकार आयरिश कैथोलिक लोगोंको लिमरिककी सन्धिके समय मिलने चाहिए थे वे उस समय प्रायः १२५ वर्षोंके उपरान्त मिले। लार्ड मेलबोर्नको इंग्लैण्डके लोगोंने बहुत दुःखी कर दिया और वे अपनी इच्छानुसार आयरिश लोगोंका कल्याण न कर सके। यदि लार्ड मेलबोर्न और थामस ड्रूमण्डके इच्छानुसार सब काम हो जाते और सन् १८३५ से १८४१ तक छः वर्ष ओकानेलने स्वयं थोड़ी बहुत अप्रियता सहकर भी आन्दोलनको जो ठीक दिशामें रक्खा था और अधिकारियोंको लोकमतकी जो उचित सहायता दी थी उसका यदि उचित आदर होता तो वे अनिष्ट न होते जो पीछे सन् १८४२ से १८४८ तक हुए और अधिकारी तथा प्रजा दोनोंको वह कष्ट न भोगना पड़ता बल्कि फीनियन लोगोंके आन्दोलनमें भी जोर न आता। लार्ड मेलबोर्नको जो कष्ट भोगना पड़ा उसका फल यह हुआ कि आगे सन् १८६८ तक किसी मंत्रीने आयर्लैण्डका प्रश्न उठाकर यह कहनेका साहस नहीं किया कि–'हमें चाहे कष्ट ही पहुँचे तो कोई चिन्ता नहीं; परन्तु जो बात उचित है वह हम करेंगे ही।' न्यायकी दृष्टिसे आयर्लैण्डको सुखी करना चाहिए था, लेकिन आयर्लैण्डका प्रश्न सामने आने पर न्यायप्रिय मन्त्री भी यह समझ कर जहाँके तहाँ रह जाते थे, कि हम अधिकारारूढ़ रहकर तो कुछ कर भी सकेंगे, पर जब हम अधिकार-भ्रष्ट हो जायँगे तब क्या करेंगे ? पाँच सौ वर्षमें केवल दो ही अँगरेज राजनीतिज्ञ ऐसे हुए, जिन्होंने इस बातका आग्रह किया कि आयरिश लोगोंके कष्ट अवश्य दूर होने चाहिएँ। एक तो जॉन ब्राइट और दूसरे ग्लैडस्टन,

इनमेंसे ब्राइटके लिए उत्तरदायित्वकी रीतिसे राज्यसूत्र चलानेके प्रसंग थोड़े ही आते थे; क्योंकि वे अधिकारका सहारा नहीं लेते थे, बल्कि जो कुछ उन्हें ठीक और सरल जान पड़ता था वही वे कहते थे। हाँ ग्लैडस्टन साहब अपनी इच्छानुसार काम करके आयर्लैण्डका थोड़ा बहुत हित कर सके। प्रोटेस्टेण्ट धर्म्ममण्डलका खर्च कम करने और जमीनके सम्बन्धमें कानून बनाकर आयरिश प्रजाको जमींदारोंके अत्याचारसे अंशतः मुक्त करनेका यश उन्हींको मिला। लेकिन होमरूलके विषयमें उन्हें लार्ड मेलबोर्नसे भी अधिक कष्ट भोगना पड़ा और अन्त-में होमरूल बिलको पास होते देखनेसे पहले ही उन्हें यह संसार छोड़ देना पड़ा। इस सम्बन्धमें सबसे अधिक उल्लेखयोग्य तीसरा नाम मि० एस्क्विथका भी है, जिन्होंने अनेक युक्तियाँ लड़ाकर और बहुत कुछ लड़-झगड़ कर अंतमें आयरिश होमरूल बिल पास ही करा दिया और जिन्हें इस कामके लिए अँगरेजोंके हाथों विशेष कष्ट भी न सहना पड़ा। तो भी इसमें सन्देह नहीं कि आयरिश लोगोंको अपने अधिकार प्राप्त करनेमें बहुतसे अंशोंमें अपने आन्दोलन पर ही निर्भर रहना पड़ा।

आयरिश आन्दोलनकी मीमांसा। कहा जा सकता है कि आयरिश लोगोंका आन्दोलन सत्रहवीं शताब्दीसे आरम्भ हुआ। क्योंकि प्रायः उन्हीं दिनों उनके मनमें यह आकांक्षा उत्पन्न हुई कि यद्यपि हम लोग जीते जा चुके हैं, तथापि हमें अपनी स्थिति सुधारकर राष्ट्रीय स्वतंत्रता प्राप्त करना है। उस समयसे पहले उनके इतिहासमें कोई ऐसा विशेष उद्योग नहीं दिखाई देता जिसके लिए आधुनिक सभ्यताके ‘ आन्दोलन ’ शब्दका प्रयोग किया जा सके। इससे पहले उनके इतिहासमें जो उद्योग हुए वे प्रायः व्यक्तिगत उच्चाकांक्षाके कारण हुए थे और उन्हें विशेष सार्वजनिकस्वरूप नहीं प्राप्त हुआ था। चार आदमी—आदमी ही क्यों बल्कि जानवर भी—जहाँ इकट्ठे

रहते हैं वहाँ उनमें जीवनकलह आरम्भ होता है । स्वार्थबुद्धिकी प्रेरणासे एक व्यक्ति दूसरों पर अपना अधिकार चलानेका उपक्रम करता है और इस कारण झगड़ा आरम्भ होता है। लेकिन केवल व्यक्तिगत स्वार्थ-बुद्धिके कारण होनेवाले उद्योगोंसे मनोरंजक इतिहास नहीं बन सकता। इस प्रकारके इतिहासके तैयार होनेके लिए स्वार्थ-बुद्धिको उदात्त और सार्वजनिकस्वरूप धारण करना पड़ता है । यदि यह बात भी मान ली जाय कि सब प्रकारकी प्रवृत्तियोंकी उत्पत्ति अहंकारसे ही होती है, तो भी यह स्पष्टरूपसे मानना ही पड़ेगा कि अहंकारका विषय जितना बड़ा होगा, उसका काम भी उतना ही अधिक होगा और उसका काम जितना अधिक होगा उसका परिणाम भी उतना ही अधिक होगा। जिसके अहंकारकी दौड़ अपने और अपने बाल बच्चोंके छोटेसे संसार तक ही है उसके हाथसे कहाँ तक बड़ा काम हो सकेगा ? लेकिन इसी अहंकारके विषयका विस्तार पहले व्यक्ति, तब कुटुम्ब, तब गाँव, तब जाति, तब प्रान्त, तब देश, और तब समस्त संसार तक बढ़ाया जा सकता है। मनुष्यकी बुद्धि और कृतिमें जितने प्रमाणमें यह विस्तार उतरेगा, उसके हाथसे उतने ही प्रमाणमें बड़ा काम भी होगा । स्वराज्य और परराज्य दोनोंमें ही अहंकारका इस प्रकार विस्तार हो सकता है; लेकिन इन दोनों परिस्थितियोंमें मनुष्यमें दो भिन्न भिन्न प्रकारके गुणोंकी आवश्यकता होती है। राष्ट्रके सदा स्वतंत्र रहने पर अहंकारका विस्तार बहुत अधिक होनेके कारण इंग्लैण्ड आदिमें जिस प्रकार लोगोंके बहुत बड़े बड़े उद्योग करनेके उदाहरण मिलते हैं उसी प्रकार आयर्लैंडके इतिहासमें ऐसे लोगोंके उदाहरण मिलते हैं, जिन्हें देशकी स्वतंत्रता नष्ट हो जाने पर इतना मानसिक दुःख हुआ था जितना पहले कभी नहीं हुआ था और जिनके मन पर स्वार्थकी अपेक्षा सार्वजनिक हितका अधिक अधिकार हुआ था । सत्र-

हवीं शताब्दीके आयरिश इतिहासमें अंतःकलहके उदाहरण ही अधिक मिलते हैं, लेकिन उनमें राजकीय प्रगतिकी दृष्टिसे कोई विशेष मनोरंजक बात नहीं दिखलाई देती। सत्रहवीं शताब्दीके उपरान्त आयरिश लोगोंके मनमें राष्ट्रीयताकी कल्पनाका उदय होनेके कारण उनके उद्योगको यथार्थ अर्थमें आन्दोलन कह सकते हैं और इसी लिए उनके बादका इतिहास मनोरंजक हो गया है।

आधुनिक राजकीय तत्त्वज्ञानकी दृष्टिसे आन्दोलन दो प्रकारका होता है। एकको बाकायदा या नियमानुमोदित और दूसरेको बेकायदा या नियमविरुद्ध कहते हैं। वास्तवमें इन दोनों प्रकारके आन्दोलनोंमें साध्य तो एक ही होता है, परन्तु साधनभेदके कारण उनका स्वरूप और साथ ही नाम भी बदल जाता है। प्रत्येक आन्दोलनके साध्य-साधनका एक मार्ग होता है। इस साधनासे अन्तमें साध्य चाहे सधे और चाहे न सधे, लेकिन उसे साधनेके लिए व्यक्ति अथवा राष्ट्र उस साधनाका अपनी ओरसे उपयोग करते हैं। साधनाकी योजनामें साध्य और परिस्थितिके सम्बन्धसे और उसी प्रकार साधकके स्वभावके कारण अन्तर पड़ता है। बल्कि इन बातोंमें इस विचित्रताका सबसे मुख्य कारण स्वभाव ही कहा जा सकता है। अपनी तात्त्विक परम्पराके अनुसार हम लोग मुख्य सृष्टि-गुण तीन प्रकारके मानते हैं और वे तीन प्रकार सत्त्व, रज और तम हैं। जिस गुणका अवलेप मनुष्यके मन पर होता है उसी गुणके अनुसार वह साध्य और साधनाके औचित्यका विचार करता है। निजके और सार्वजनिक कार्य्योंमें यद्यपि बहुत बड़ा भेद है तथापि स्वभावके जो गुण दो मनुष्यके निजके व्यवहारोंमें नित्य दिखाई देते हैं, यदि यह मान लिया जाय कि वे गुण-दोष उसके सार्वजनिक व्यवहारोंमें भी दिखाई देंगे तो कोई हानि न होगी। यह बात नहीं है कि इस नियममें अपवाद न हों; अपवाद भी अनेक मिलते हैं।

लेकिन वे अपवाद इतने दृढ नहीं होते, जिनसे उक्त सामान्य नियममें बाधा पड़े । बाकायदे और बेकायदेका भेद करते हुए यह बात ध्यानमें रखनी चाहिए कि अर्वाचीन राजकीय इतिहासमें कायदोंका बंधन एक व्यवच्छेदक लक्षण बन गया है और राजसत्ताधारी व्यक्ति और वर्ग इस बन्धनको स्पष्टरूपसे मानने लगे हैं । सभ्यताके पूर्व कालमें 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाला न्याय ही चलता था । आजकलकी तरह पहले भी सब प्रकारके नियमोंका उत्पत्ति-स्थान राज-सत्ता ही था । तथापि नियमोंका स्वरूप अस्पष्ट और प्रवर्त्तन अनियमित रहनेके कारण उस समय यह अवस्था थी कि राजा जब जो कुछ कह देता था तब वही नियम हो जाता था; और यदि प्रजा न्यायानुमोदित व्यवहार करना चाहती तो भी वैसा व्यवहार करना उसके लिए बिलकुल सुलभ नहीं था । लेकिन आजकलके बदले हुए जमानेमें कानूनके लिखे जानेकी प्रथा होने और राजकर्म्मचारियों पर प्रजाका कुछ न कुछ दबाव रहनेके कारण उनका प्रवर्त्तन भी नियमित ही होता है और यह समझने तथा निश्चय करनेके लिए कि अमुक बात नियमानुमोदित है या नियम-विरुद्ध, स्थूल मानसे कुछ न कुछ साधन मिलता है ।

सत्रहवीं शताब्दीसे अब तक सार्वजनिक अहंकार-बुद्धिसे प्रेरित होकर आयर्लैण्डके नेताओंने नियमानुमोदित और नियमविरुद्ध दोनों प्रकारके आन्दोलन किये हैं । अतः अब हमें थोड़ेमें यह देखना है कि उन आन्दोलनोंसे गत तीन शताब्दियोंमें इस राष्ट्रका इतिहास कैसा हुआ और उसके लोगोंकी राजकीय स्थिति किन उपायोंसे कितनी सुधरी । आयरिश लोगोंके लिए अँगरेजोंके साथ द्वेष करनेके चाहे कितने ही कारण क्यों न हों और चाहे उनकी उच्चाकांक्षा कितनी ही अमूर्त्त क्यों न हो तो भी प्रत्यक्ष व्यवहार और राजकीय वादविवादमें बोलनेके समय यह बात नहीं है कि वे शुद्ध स्वतंत्रता या प्रजासत्ताक

राज्य ही माँगते हों । सन् १७९८ के विद्रोहके पहले आयर्लैण्डके लोकमतकी स्थिति कैसी थी, इसके सम्बन्धमें स्वयं उल्फटोनने अपने आत्म-चरित्रमें लिखा है कि इस समय अर्थात् आयर्लैण्डको स्वतंत्र पार्लमेण्ट मिलने पर और अँगरेजी मंत्रि-मण्डलकी कार्रवाई अत्यन्त कष्टदायक होने पर भी आयरिश राष्ट्रकी कभी यह इच्छा नहीं थी कि इंग्लैण्डका और हमारा सम्बन्ध बिलकुल टूट ही जाय और जब टोनने लोगोंके सामने स्वतंत्रताका प्रश्न उपस्थित किया तब लोगोंकी ओरसे उसे विशेष प्रकारकी उत्तेजना नहीं मिली । अब भी आयरिश राष्ट्रके वही जिम्मेदार नेता पार्लमेण्टके सभासद होते हैं जिन्हें आयरिश लोग लोग चुनते हैं और साधारणतः यह कहा जा सकता है कि वे लोग जो कुछ कहते हैं अथवा जो मत प्रकट करते हैं वह उसी राष्ट्रका मत होता है । ग्रटनसे लेकर आज रेडमण्ड तक 'पार्लमेण्टरी' नेताओंमेंसे किसीने भी शुद्ध स्वतंत्रताका झण्डा नहीं खड़ा किया । इसमें सन्देह नहीं कि समाजमें अनेक ऐसे फिरे हुए दिमागके लोग भी दिखाई देते हैं, जो उन नेताओंके हाथसे कुछ न होता देखकर उनके सन्तापमें अपने अविचारको भी मिला देते हैं और निराश होनेके कारण आवेशमें आकर कह बैठते हैं कि—"अच्छी बात है, जब हम थोड़ा माँगते हैं और तुम नहीं देते हो तब हम सभी ले लेते हैं, कुछ भी नहीं छोड़ते ।" परन्तु ये उद्गार सारे राष्ट्रके नहीं होते । पौराणिक अहिसत्रमें यजमानने पहले केवल अपराधी तक्षककी आहुतीका ही संकल्प किया था । लेकिन जब इन्द्रने तक्षकको अपने पीछे छिपा लिया तब 'इन्द्राय तक्षकाय स्वाहा' की दूनी आहुतीका संकल्प हुआ । इसी तरह आयरिश 'राष्ट्र' की सदाकी माँग स्वतंत्र पार्लमेण्ट तक ही थी, पर वह अँगरेज लोग देते नहीं थे । अच्छा होमरूल ही सही, पर वह भी नहीं; तब इस प्रकारके धृष्टतापूर्ण उद्गार निकलने लगे कि अब निसर्गसिद्ध स्वतंत्रता ही चाहिए, फुटकर बातोंसे

काम नहीं चलेगा। यह युक्तिवाद कि–" केवल होमरूल ही माँगा तो भी पार्लमेण्ट और राजा अड़चन डालते हैं, तब फिर न इस पार्लमेण्टकी ही जरूरत है और न इस राजाकी।"–केवल उसी समय निकलता है जब और कोई उपाय नहीं रह जाता और ज़िच्च हो जाती है। और इस दृष्टिसे देखते हुए स्वतंत्रताकी माँगके इन उद्गारोंका उत्तरदायित्व आयरिश लोगोंकी अपेक्षा होमरूल तक न देनेवाले राजकर्मचारियों पर ही अधिक है।

आयर्लैण्डके इतिहासको जो मनुष्य स्थूल दृष्टिसे देखेगा, सम्भव है कि पहले पहले वह यही समझेगा कि वह इतिहास विद्रोहों, दंगे-फसादों और विरोधके मार्गसे ही भरा हुआ है। परन्तु सूक्ष्म विचार करनेवालेको कुछ निराली ही बात दिखाई देगी। विद्रोहों और दंगे-फसादों आदिका स्वरूप ही ऐसा होता है कि मनुष्यके मन पर शान्तिके कामोंकी अपेक्षा उनका अधिक प्रभाव पड़ता है। लेकिन यह बात नहीं है कि जो बात मन पर जितनी ही जमे या नक़श हो, वह उतनी ही उपयुक्त और परिणामकारी भी हो। सृष्टिके इतिहासकी उत्पात, भूकम्प और बाढ़ आदि बातें ही अधिक ध्यानमें रहती हैं; परन्तु सृष्टिके नित्यके चरित्रक्रममें और विशेषतः उसकी प्रगतिमें उत्पात आदिका बहुत ही थोड़ा उपयोग होता है। सर्वध्वंसक भूकम्पका स्मरण हम लोगोंको खूब रहता है; परन्तु नित्य प्रति दोनों किनारों पर धीरे धीरे मिट्टीके कणोंका थर लगाकर वहाँकी जमीनको उपजाऊ बनानेवाली नदीकी कृतिको जब तक हम विशेष रूपसे स्मरण न करें तबतक क्या हमें कभी उसका स्मरण रहता है? राष्ट्रोंके इतिहासोंकी लड़ाईयाँ हमारी स्मरणशक्तिकी जितनी जगह घेरे रहती हैं उतनी जगह और कोई बात नहीं घेरती। लेकिन ऐसी लड़ाइयाँ कितनी थोड़ी मिलेंगी जिनसे इतिहासका सारा स्वरूप या मार्ग ही बदल गया हो।

फ्रान्सके ‘ सेण्ट बार्थेलोम्यू ’ की हत्याओंका स्मरण इतिहासके पाठकों-को सदा बना रहता है, लेकिन ये हत्यायें जिस कारण हुईं उस धर्म्म-सुधारके बीजको लगानेवाले व्यक्तिका नाम भी हमें नहीं मालूम रहता ! प्लासीकी लड़ाईकी तारीख हमारे यहाँके छोटे छोटे लड़कोंको भी जबानी याद रहती है। लेकिन इस लड़ाईसे भी अधिक महत्त्वकी बात दिल्लीके बादशाहका अँगरेजोंको दीवानीकी सनद देना है। तथापि उसका पता बड़े-बड़ों और सुशिक्षितोंको भी नहीं रहता। नारायणराव पेशवा पर सुमेरसिंह गारदीके वार करनेका दृश्य हमारी आँखोंके सामने खूब बना रहता है, लेकिन ओंकारेश्वरके मैदानमें मराठे राजनीतिज्ञ लोगोंकी आँखें बचाकर जो बालूके पिंड पर हाथ रखकर शपथ खाते हैं और इस प्रकार बारभाईकी जो कार्रवाई आरम्भ करते हैं उसका दृश्य कितने थोड़े लोगोंकी आँखोंके सामने रहता है ? इन सबका कारण यह है कि कार्य्य तो स्थूल होनेके कारण दिखाई देते हैं और कारण सूक्ष्म होते हैं, इसलिए वे दिखाई नहीं देते। लेकिन सच्चे तत्त्वज्ञोंकी विचारसामग्री दृश्यकी अपेक्षा अदृश्य बातोंमें और अलौ-किककी अपेक्षा लौकिक बातोंमें ही अधिक रहती है।

आयर्लैण्डमें असन्तोष चाहे कभी नष्ट न हुआ हो और आयरिश इतिहासको ऊपर ऊपर देखनेवालेको चाहे यही मालूम हो कि उसमें अराजनिष्ठा और मारकाटके सिवा और कुछ भी नहीं है, तो भी उसका ऐसा समझना भ्रमपूर्ण है। १६४१ का विद्रोह, १७९८ का विद्रोह, फीनियन लोगोंका आन्दोलन और १८४८ के दंगे फ़साद तो पाठकोंको दिखलाई पड़ें और मन पर नक्श हो जायँ, लेकिन प्रत्येक पीढ़ीमें आयरिश नेताओंने जो नियमानुमोदित आन्दोलन किये हैं वे नहीं दिखलाई पड़ेंगे; इसका दोष या तो निरीक्षकके सहज स्वाभाविक गुण पर और या उक्त कारण पर होना चाहिए, आयरिश लोगोंके इति-

हास पर नहीं। ऊपर कही हुई बातोंमेंसे सन् १६४१ का विद्रोह धर्म्मके लिए हुआ था, स्वराज्यके लिए नहीं। सन् १७९८ का विद्रोह राजकीय कारणोंसे हुआ था, लेकिन लोकसमाज उल्फटोन (१७९८) और राबर्ट एमेट (१८०३) के विशेष अनुकूल नहीं था। इसमें सन्देह नहीं कि फीनियन आन्दोलन और सन् १८४८ के दंगे फसाद भी राजकीय कारणोंसे ही हुए थे, लेकिन इन प्रसंगों पर तो लोगोंने उतनी भी सहायता नहीं की, जितनी उल्फटोनको मिली थी। विरोधके मार्ग और काश्तकारोंके दंगे-फसादमें जो मार-पीट हुई उसका कारण राजकीय स्वतंत्रताकी अपेक्षा छोटी श्रेणीका था। उस समय लोग जमींदारोंको दिक करके उनसे रिआयतें कराना चाहते थे। अर्थात्—वास्तवमें अराजनिष्ठाके साथ उसका कोई सम्बन्ध नहीं था। सन् १९१६ में सिनफेनर्सका जो दंगा हुआ था वह अवश्य बहुत बेमौके हुआ था और उसका उद्देश्य ब्रिटिश साम्राज्यको हानि पहुँचाना था। पर उसमें इतने थोड़े लोग सम्मिलित हुए थे, जिससे हम उसे राष्ट्रीय विद्रोह कह ही नहीं सकते। स्वयं नेशनलिस्ट वालंटियरोंने, सिनफेनर्स विद्रोही जिनका एक अंग थे, इस विद्रोहके दमनमें सहायता दी थी। सन् १८७६ में पूना प्रान्तमें और इससे कुछ वर्ष पहले नासिक और जुन्नर प्रान्तों तथा खानदेशमें जो दंगे हुए थे उनका जितना राजकीय स्वरूप माना जा सकता है, आयरिश लोगोंके उक्त दंगोंका उनसे अधिक राजकीय स्वरूप नहीं था। 'ओक बॉयज', 'व्हाइट बॉयज', 'हार्ट्स आफ स्टील', 'रिबन सोसायटी' आदि जो गुप्त सभायें दंगे करनेके लिए स्थापित हुई थीं उनका उद्देश्य अमीर जमींदारोंको हानि पहुँचाना और उन्हें दण्ड देकर तथा अन्य उपायोंसे गरीब खेतिहरोंकी शिकायतें सरकारके कान तक पहुँचाना था। कागजपत्रोंसे प्रमाणित होता है कि कई अवसरों पर उन्होंने अधिकारियोंके पास

राजनिष्ठापूर्ण प्रार्थनायें भी भेजी थीं। 'फ्राउड' सरीखे इतिहास-कारोंने भी जिन्हें आयरिश लोगोंसे घृणा है और तनिक भी सहानुभूति नहीं है, यह बात प्रमाणित की है। यह भी देखना पड़ता है कि लोक-मत ऐसे दंगोंके कहाँ तक अनुकूल था; और इस दृष्टिसे विचार करते हुए दिखाई देता है कि अँगरेज जमींदारोंसे आयरिश समाज कितना ही बुरा क्यों न मानता हो और गरीब खेतिहरों पर उसे कितनी ही दया क्यों न आती हो, तो भी अत्याचारको वह समाज अत्याचार ही सम-झता था और वह उसका केवल निषेध ही नहीं करता था; बल्कि प्रति-कार करनेका भी प्रयत्न करता था। इस प्रयत्नमें रोमन कैथोलिक और प्रोटेस्टेण्टका भेद नहीं रह जाता था। यद्यपि ये फसादी लोग अच्छे हेतुसे प्रेरित होकर दंगे करते थे, तो भी उनके द्वारा अनुचित कार्य्य होते थे और हानि पहुँचानेकी कुछ मर्य्यादा न रह जाती थी; इस लिए सभी समझदार और विचारशील नेता जहाँ तक हो सकता था मिलकर ऐसे अत्याचारोंका प्रतिकार करते थे।

आयर्लैंडमें अँगरेजी अमलदारीके कारण जिन लोगोंको वास्तवमें और बहुत कष्ट पहुँचा वे लोग कैथोलिक ही हैं। यदि मनमें अराजनिष्ठा रखनेका सचमुच किसीके लिए कोई कारण था तो वह कैथोलिक लोगोंके लिए ही था। क्योंकि जमीनके कानूनों, शिक्षाके कानूनों, धर्म्मके कानूनों, और नागरिताके अधिकारके कानूनों आदि सबसे उन्हींको कष्ट पहुँचा। कैथोलिक लोगोंकी तरह व्यापारसम्बन्धी कानूनोंसे प्रोटेस्टेण्ट लोगोंको भी पहले पहल अवश्य कष्ट हुआ, परन्तु उस कष्टका शीघ्र ही अन्त हो गया। और यदि आयरिश पार्लमेण्टके टूट जानेसे हानि हुई तो वह कैथोलिक और प्रोटेस्टेण्ट दोनोंकी बराबर हुई। तात्पर्य्य यह कि अँगरेजोंको शत्रु समझनेका कारण मुख्यतः कैथो-लिक लोगोंके लिए ही था। लेकिन यदि सारे इतिहास-क्रम पर दृष्टि

डाली जाय तो जान पड़ेगा कि कैथोलिक लोग विशेष अराजनिष्ठ नहीं थे। आयरिश लोगोंके साथ पूर्ण सहानुभूति रखनेवाला इतिहास-कार 'लेके' है। इस इतिहासकारने अपने आयलैंडके इतिहासमें यह स्पष्ट कहा है कि अठारहवीं शताब्दीमें कैथोलिक लोगोंमें वास्त-विक अराजनिष्ठा इतनी कम थी कि उसे देखकर सचमुच बहुत आश्चर्य होता है। इसका एक कारण यह था कि इंग्लैंडकी गद्दी पर बैठनेवाले कैथोलिक और प्रोटेस्टेण्ट दोनों राजा उन्हें समान ही जान पड़ने लगे थे। धर्म्माभिमानके कारण उन्होंने कैथोलिकपन्थी राजा द्वितीय जे-म्सका पक्ष लिया था और उसकी ओरसे वे लड़नेके लिए भी तैयार थे; परन्तु 'ब्राइन' की लड़ाईके उपरान्तका उसका विलक्षण व्यवहार देखकर उन्हें यह जान पड़ने लगा था कि हम लोगोंने व्यर्थ कष्ट उठाया। अराजनिष्ठा और भयंकर अन्दोलनके मूल कारण आयलैंण्डमें बसे हुए प्रोटेस्टेण्ट लोग ही थे; कैथोलिक लोग तो केवल धार्मिक स्वतंत्रता पाकर ही प्रसन्न हो जाते। प्रजा-स्वातंत्र्यके विचार प्रोटेस्टेण्ट ओर प्रेसबिटरे-नियन लोगोंके दिमागमें ही थे और इसीलिए पार्लमेण्ट स्वतंत्र करनेके आन्दोलनमें वे ही आगे हुए थे। तथापि यह माननेका कोई विशेष कारण नहीं था कि प्रोटेस्टेण्ट लोग ही स्वयं स्वतंत्र रीतिसे विद्रोह करेंगे। उल्फटोन स्वयं प्रोटेस्टेण्ट था और इसमें सन्देह नहीं कि कुछ अंशोंमें वह आयलैंण्डके उत्तरी भागके प्राटेस्टेण्ट और प्रेसबिटरेनियन लोगोंके मनकी बात जानता था, तथापि सन् १७९८ में फ्रेंच राजनीतिज्ञोंके सामने आयलैंडकी वास्तविक स्थिति उपस्थित करते समय उसे यह स्वीकार करना पड़ा था कि आयरिश लोग स्वयं विद्रोह नहीं करेंगे। उसे यह आशा थी कि यदि फ्रेंच सरकार आय-लैंण्ड पर चढ़ाई करके लोगोंको हथियार देगी तो बहुतसे कैथोलिक और प्रोटेस्टेण्ट उसे आ मिलेंगे। लेकिन जब प्रत्यक्ष समय आया तब यह

आशा भी विफल हो गई। क्योंकि जब फ्रेंच जहाजोंका पहला भाग आयरिश किनारेके पास आकर रुका था तब लोगोंकी ओरसे विद्रोहका झण्डा खड़ा करनेके चिह्न भी दिखाई नहीं देते थे।

आयर्लैण्डके लोकमतके स्वाभाविक नेता देशके सुशिक्षित विचारशील और सम्पन्न लोग थे। यदि प्रत्येक पीढ़ीके इन नेताओं पर दृष्टि डाली जाय तो पता लगेगा कि सौमेंसे नब्बे नेता नियमानुमोदित आन्दोलन करनेवाले थे। नियम-विरुद्ध आंदोलन करनेवाले नेताओंमेंसे लार्ड फिटजरल्ड, टोन, एमेट, मिचेल, ओब्रायन आदि प्रसिद्ध हैं। लेकिन नियमानुमोदित आंदोलन करनेवाले भी आरम्भसे अबतक बराबर होते आ रहे हैं और लोकमतकी दृष्टिसे देखते हुए दूसरे प्रकारके इन नेताओंको जितनी सहायता मिली उतनी पहले प्रकारके नेताओंको नहीं मिली। यह बात नहीं है कि पहले प्रकारके (नियम-विरुद्ध आंदोलन करनेवाले) नेता कुछ कम बुद्धिमान् थे। इसमें सन्देह नहीं कि टोन, एमेट और ओब्रायन आयर्लैंडके लिए ग्रॅटन और ओकानेलके बराबर ही भूषणभूत रहेंगे। इन नेताओंकी देश-भक्तिके सम्बधमें कभी किसीको कुछ सन्देह नहीं था। यही नहीं बल्कि उन्होंने उस भक्तिके लिए अपना शरीर तक गँवा दिया। इसके अतिरिक्त और अनेक दंगे फसाद करनेवालोंकी तरह उनकी नीति निम्न-श्रेणीकी नहीं थी, बल्कि वह बहुत ही उच्च श्रेणीकी थी। लेकिन चाहे यह कह लीजिए कि उनके काम समाजको पसन्द न थे और वह उससे सहमत न था, चाहे यह कह लीजिए कि समाजमें उनके कदमपर कदम रखकर चलनेका साहस नहीं था और चाहे यह कह लीजिए कि समाजके लिए उस समय उनके साहसका कोई उपयोग न हो सकता था, पर उनके द्वारा विशेष कार्य्य न हो सका और उन्हें प्राण देने पड़े। इसके विरुद्ध ग्रॅटन और ओकानेल सरीखे नेताओंने यद्यपि नियमानुमोदित

आन्दोलनका राज-मार्ग ग्रहण किया था, तो भी उन्हें अपने हाथसे थोड़ा बहुत प्रत्यक्ष कार्य्य करनेका यश मिला था। क्योंकि ग्रैटनको आयरिश लोग 'स्वतंत्रताका जनक' और ओकानेलको 'कैथोलिक लोकरक्षक अवतार' कहते हैं। यदि शिल्प-शास्त्रके शब्दोंमें कहा जाय तो टोन और एमेटका उपयोग आयरिश राष्ट्रकी इमारतमें महराब पर बनाये हुए बेलबूटोंकासा था और ओकानेल तथा पार्नेलका उपयोग नकाशी किये हुए पायेके पत्थरका सा हुआ। अर्थात् पहले प्रकारके देश-भक्तोंके कारण उस इमारतकी सुन्दरता और शोभा बढ़ी और दूसरे प्रकारके देशभक्तोंके कारण जिस प्रकार उसकी शोभा बढ़ी उसी प्रकार उसे आधार भी मिला।

आयर्लैण्डके नियमानुमोदित और नियमविरुद्ध आन्दोलन दोनों एक प्रकारसे मिले-जुले दिखाई पड़ते हैं। यह पहले ही कहा जा चुका है कि सब लोग अपने अपने स्वभावके अनुसार अपना अपना साधन-मार्ग निश्चित करते हैं। आयरिश आन्दोलनके प्रत्येक युगमें--(१) आदिसे अन्त तक नियमानुमोदित आन्दोलन करनेवाले, (२) आदि से अन्ततक नियमविरुद्ध आन्दोलन करनेवाले और (३) भिन्न भिन्न समयों पर प्रसंगके अनुसार दोनों प्रकारके आन्दोलन करनेवाले लोग भी दिखाई देते हैं। लेकिन पहले और दूसरे प्रकारके अर्थात् ऐसे लोग बहुत ही कम हैं जिन्होंने जन्मभर केवल एकदेशीय विचारोंके अनुसार ही अपना व्यवहार नियमित रक्खा हो और तीसरे प्रकारके लोग बहुत अधिक दिखाई देते हैं। इसका कारण भी स्पष्ट ही है। नेताओंमें ऐसे कट्टर वैदिक लोग बहुत ही कम मिलते हैं, जो कानूनके अक्षरोंको श्रुति ही मानते हों और यह समझते हों कि जरा भी उनके बाहर न जाना चाहिए अथवा उनमेंका एक स्वर भी न बदलना चाहिए। जो कानून और शासन-पद्धतिको बिलकुल व्यर्थ समझ कर उठते-

बैठते बन्दूक चलाते हों और तलवारकी मूठ पर हाथ ले जाते हों। ऐसे लोगोंको यदि नेतृत्व मिल भी जाय तो वह अधिक दिनों तक रह नहीं सकता। जो नेता कार्य्यक्षम होगा वह यह प्रतिज्ञा करनेसे पहले कि—"केवल कानूनके अक्षरोंके अनुराधसे ही मैं कदम उठाऊँगा और कानूनकी निश्चित की हुई मर्य्यादाके बाहर मैं अपने शरीरका कोई भाग या झोंक भी जाने न दूँगा।" दस पाँच बार विचार करेगा; क्योंकि मनुष्यका स्वभाव ऐसी प्रतिज्ञाके विरुद्ध है और भूल करना मनुष्य-धर्म्म है। दूसरी बात यह है कि इस प्रकारकी प्रतिज्ञा करनेवाले नेताओं पर सब लोगोंका समान विश्वास नहीं रहता। 'गणेश-थोपड़ी' आदि खेलोंमें यदि कोई खिलाड़ी यह प्रतिज्ञा करे कि—"मैंने आज तक कभी मार नहीं खाई और आगे भी कभी न खाऊँगा।" तो लोग उस पर हँसेंगे और उसे कोई अपने साथ खेलने न देगा। क्योंकि खेलमें कभी न कभी वह पकड़ा जाकर चोर बनेगा ही, और उसे चपत खाना ही पड़ेगा। तीसरे वर्गके नेताकी बात अलग है। वह कभी इस बातकी भी प्रतिज्ञा नहीं करता कि अपने जीवनमें मैं कभी नियमानुमोदित मर्य्यादाके बाहर पैर भी नहीं रक्खूंगा और अविचार, आवेश अथवा वृथाभिमानके कारण सहसा उसके द्वारा उस रेखाका उल्लंघन भी नहीं होता। उसका प्रामाणिकतापूर्वक सदा इस बातका प्रयत्न रहता है कि कानूनकी मर्य्यादाका उल्लंघन न हो, लेकिन जब राजनीतिक आन्दोलन अच्छा स्वरूप धारण कर लेता है और कानून भी अपनी मर्य्यादाका उल्लंघन करके आगे कदम बढ़ाने लगता है तब वह केवल परिणामके भयसे अपना पैर पीछे नहीं हटाता। उसे आरम्भसे ही इस बातका निर्विकल्पक ज्ञान रहता है कि हम नियमानुमोदित रीतिसे व्यवहार कर रहे हैं और यह बात उसके मनके समाधानके लिए यथेष्ट होती है। तथापि किसी अवसर पर यदि उसे इस

बातका सविकल्पक ज्ञान भी हो कि परिस्थिति बदलनेके कारण केवल औपचारिक रीतिसे हमारे द्वारा कानूनकी मर्य्यादाके उल्लंघनकी सम्भावना है तो वह इस भयसे कि व्यक्तिशः हमें अनिष्ट फल भोगना पड़ेगा, अपने अंगीकृत कार्य्यसे पीछे नहीं हटता। इस लिए प्रत्येक प्रगमनशील राष्ट्रमें ऐसे नेता अवश्य दिखलाई देते हैं, जो नियमतः और हेतुपुरःसर नियमानुमोदित रीतिसे व्यवहार करते हैं; लेकिन केवल अपवादतः या उपाधि-दोषके कारण जान बूझकर या अनजानमें जिनसे नियमविरुद्ध व्यवहारकी भूल हो जाती है। उनके द्वारा यह अपवाद प्रायः उसी समय होता है जब संसारको यह दिखलानेकी आवश्यकता होती है कि अमुक कानूनकी प्राण-प्रतिष्ठा चाहे राजसत्ताके कारण ही क्यों न हो, पर उसकी उत्पत्ति सदोष है और इस लिए उसे न मानना चाहिए। और ऐसे कृत्यके लिए नीति-शास्त्रकी सम्मति भी मिलती है। लेकिन जिन लोगोंके द्वारा ऐसे अपवाद हो जाते हैं, उन्हें इन अपवादोंके कारण 'नियमविरुद्ध व्यवहार करनेवाले' बतलाना भूल है। प्रसिद्ध अँगरेज देशभक्त हैम्पडनने 'शिप मनी' नामक कर देनेसे इंकार किया था और दक्षिण आफ्रिकामें देशभक्त कर्म्मवीर गांधीने रजिस्टरेशन आदिके कानूनोंको मानकर उनके द्वारा अपने देशवासियोंकी अप्रतिष्ठा करानेकी अपेक्षा जेल जाना अधिक उत्तम समझा था। लेकिन यह बात सभी लोगोंको माननी पड़ेगी कि ये दोनों नियम-विरुद्ध आन्दोलन करनेवाले नहीं कहे जा सकते। यदि उक्त तत्त्वोंका आयरिश इतिहास पर उपयोग करके देखा जाय तो पता लगेगा कि आयरिश नेताओंमेंसे उन्हींके पक्षमें प्रचण्ड बहुमत था जो नियमशः नियमानुमोदित आन्दोलन करनेवाले ही थे और केवल नियमविरुद्ध आन्दोलन करनेवाले नेता बहुत ही थोड़े थे। यहाँ 'नेता' शब्द ऐसे मनुष्योंके लिए लाया गया है जिन्होंने थोड़ा बहुत लोकमत तैयार किया था, अथवा

जो यथार्थमें कुछ दिनों तक लोकमतके निदर्शक गिने जाते थे। ऐसे आदमीको कोई नायक या नेता नहीं कहता जो मौके बे-मौके इसी उद्देश्यसे हथियार उठाता हो कि लोग हमारे तलवार-के हाथ देखकर हमारी प्रशंसा करें। चार्लमांट, ग्रॅटन, फ्लड, क्यूरन, डेनियल ओकानेल, जॉन किओघ, आइजिक बट, पार्नेल, डिलन, ओब्रा-यन, रेडमण्ड आदि आयरिश नेता नियमानुमोदित आन्दोलन करने-वाले थे और उनमेंसे कई नेताओंको जेल भी जाना पड़ा था। लेकिन केवल इतनेसे ही कभी किसीने यह नहीं कहा कि वे नियमविरुद्ध आन्दोलन करनेवाले थे। जिस प्रकार गेंद-बल्लेके खेलमें स्वयं चाला-कीसे प्रतिपक्षीका बल्ला गिरा देने या 'अम्पायर' से पूछ कर उसकी भूलसे लाभ उठानेकी होशियार खिलाड़ियोंकी युक्ति होती है, उसी प्रकार दक्ष और कुशल राजकर्म्मचारियोंकी यह एक निश्चित और अनुभवसिद्ध युक्ति है कि वे किसी न किसी प्रकारसे जिस प्रजा-पक्षीय नेताको तंग करना चाहते हैं उनके सम्बन्धमें यह फैसला करा लेते हैं कि उसके अंगका प्रत्यक्ष भाग नहीं तो कमसे कम उसकी झोंक अवश्य कानूनकी मर्य्यादाके बाहर गई है और इस प्रकार उसके मत्थे नियमविरुद्ध आन्दोलन करनेकी छाप लगा देते हैं। लेकिन केवल इतनेसे ही वह नेता नियम-विरुद्ध आन्दोलन करनेवाला नहीं ठहर सकता; जिसकी प्रवृत्ति सदा नियमानुमोदित आन्दोलन करनेकी ओर ही रहती हो। सन् १७८२ के लगभग आयर्लैंडमें राजकीय आन्दोलन बहुत जोरों पर आया था। अमेरिकामें परास्त होनेके कारण इंग्लैंड निर्बल और भय-भीत हो गया था। पास ही फ्रान्समें शासनके उलटने-पलटनेका रंग दिखाई देने लगा था जिससे अँगरेज राजनीतिज्ञोंको यह आशंका होने लगी थी कि कहीं इंग्लैंडका तख्त भी तो न डगमगायगा; आयर्लैण्डमें धार्म्मिक-पीड़न चरम सीमातक पहुँचनेके उपरान्त सहिष्णुताका उदय

हुआ था और कैथोलिक तथा प्रोटेस्टेंट दोनों पक्ष यह समझने लगे थे कि यह धार्मिक भेद मानना मूर्खतापूर्ण है; और प्रोटेस्टेंट लोगोंने स्वयं-सेवक सैनिकोंकी पलटनें और तोपखाने सिखलाकर तैयार कर लिये थे। ऐसे अवसर पर ग्रॅटनने स्वभावतः यहाँतक कह डाला था कि यदि इंग्लैंडने आयरिश पार्लमेण्टको स्वतंत्रता देना स्वीकार किया तो अच्छी बात है, नहीं तो फिर जो होना होगा सो होगा; और कदाचित् इंग्लैंडके हठके कारण युद्ध भी हो जाता तो इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि ग्रॅटन एकाध पलटनका कर्नल बनकर लड़ता, अथवा कमसे कम नेता-की हैसियतसे वह पार्लमेंटमें इस देश-भक्त सेनाकी प्रशंसा और उसके कार्य्योंका समर्थन अवश्य करता। लेकिन ऐसे अवसर पर किसीने यह नहीं कहा कि वह नियमविरुद्ध आन्दोलन करनेवाला है। आयलैंडके अनभिषिक्त राजा ओकानेलका सारा जीवन अँगरेजोंके दोष दिखलाने, न्यायालयोंमें सरकारके विरुद्ध लड़ने, महती सार्वजनिक सभायें करने, समाजमें खलबली मचाने, समितियाँ, सभायें और संस्थायें स्थापित करने और पार्लमेंटमें सरकार पर टूटकर आक्रमण करनेमें ही बीता; और ऊपर बतलाई हुई निश्चित युक्तिसे सरकारने उस पर बेकाय-दगीकी छाप लगानेका दो तीन बार प्रयत्न भी किया और अन्तमें एक बार वह प्रयत्न सफल भी हुआ; जिसके कारण कुछ दिनोंतक उसे कारागारमें रहना पड़ा। लेकिन स्वयं उसने न्यायानुमोदित आन्दोलनका बाना कभी नहीं छोड़ा। यही नहीं बल्कि उसे रखनेके लिए उसने अपनी जन्मभरकी सारी लोकप्रियताको तिलांजली दे दी और ऐसे अवसर पर जब कि उसके एक शब्द पर प्राण देनेके लिए उसके हजारों अनुयायी तैयार थे उसने लोगोंसे यह कहकर कि—" शान्तिका भंग मत करो। " और सिर्फ एक सिपाहीका हुकुम मानकर अपने आपको गिरिफ्तार करा दिया और अन्तमें कारागार भी भोगा। यद्यपि वह सभामें बोलनेके समय कभी

कभी बहुत आवेशमें आकर बेसुध सा हो जाता था, तथापि उसकी यह प्रतिज्ञा थी कि यदि अन्यायपूर्वक मनुष्यके एक बूँद लहूके गिरनेसे भी सारे राष्ट्रकी राजकीय मुक्ति होती हो, तो भी उस मुक्ति पर लात मारनी चाहिए और उस रक्त-बिन्दुको गिरनेसे बचाना चाहिए । कभी किसी-ने यह नहीं कहा कि वह नियमविरुद्ध आन्दोलन करनेवाला है । यह बात प्रसिद्ध ही है कि पार्नेल, डिलन, ओब्रायन आदि नेताओंको सर-कारने दण्ड देकर कारागारमें भेजा था । सौमें नब्बे अँगरेज यही समझते थे कि लैण्ड लीग और नेशनल लीगकी उत्तेजनासे ही आयर्लैंडमें बहुतसे अपराध होते हैं और पार्नेल आदि नेता गुप्तरूपसे इन अपरा-धोंमें सहायता देते हैं । लेकिन कोई न्यायी इतिहासकार पार्नेलको नियम-विरुद्ध आन्दोलन करनेवाला नहीं कहेगा । नियमविरुद्ध आन्दोलन करनेवाले लोगोंमेंसे लार्ड फिडजरल्ड, उल्फटोन, राबर्ट एमेट, शीअर बन्धु, मिचेल, स्मिथ ओब्रायन और माइकेल डेविट आदि प्रसिद्ध हैं । इनमेंसे टोन, ओब्रायन और माइकेल डेविट दूसरे वर्गकी अपेक्षा तीसरे वर्गमें ही अधिक आते हैं । क्योंकि उल्फटोनने सार्वजनिक काम-का जो आरम्भ किया वह विद्रोहका झण्डा खड़ा करके नहीं किया । यद्यपि वह स्वयं प्रोटेस्टेण्ट था, तो भी उसने कैथोलिक लोगोंके अधि-कारका प्रश्न उठाकर नियमानुमोदित आन्दोलन आरम्भ किया । इस आन्दोलनमें उसने जॉन किओघको अच्छी सहायता दी थी, और कैथोलिक लोगोंकी ओरसे डेपुटेशन लेकर वह विलायत गया था । वह बहुत ही चलता हुआ और बुद्धिमान् था और उसने बैरिस्टरीकी परीक्षा दी थी । यदि सन् १७७६ में अमेरिकामें और १७८९ में फ्रान्समें राज्यक्रान्ति न हुई होती और फ्रान्स तथा इंग्लैण्डमें युद्ध होनेकी सम्भावना न होती, तो बहुधा वह विद्रोहके झमेलेमें न पड़ता । स्मिथ ओब्रायनके आरम्भके अनेक वर्ष नियमानुमोदित आन्दोलनमें ही बीते थे, लेकिन डेनिअल

ओकानेलके नियमानुमोदित आन्दोलनका खेदकारक परिणाम देख कर ही उसके साथके युवकोंको केवल परिस्थितिके कारण नियमविरुद्ध मार्गका अवलम्बन करनेकी उत्तेजन मिली थी। जिस समय माइकेल डेविटके सार्वजनिक आयुष्यक्रमका आरम्भ हुआ था, प्रायः उसी समय आयर्लैण्डमें फीनिअन लोगोंके विद्रोहात्मक आन्दोलनकी लहर आई थी और अपनी युवावस्थाके उत्साहके कारण वह भी उस लहरमें पड़ गया था। परन्तु दस वर्ष तक काले पानीकी सजा भुगतकर लौटने पर लैण्ड लीगका नियमानुमोदित आन्दोलन उसीने आरम्भ किया और पार्नेलको उस आन्दोलनमें सम्मिलित करके आन्दोलनको जोर पहुँचाया। एक माइकेल डेविट ही क्या, बल्कि फीनिअन आन्दोलनके फेरमें युवावस्थामें पड़े हुए बहुतसे आयरिश लोग विद्रोहके मार्गका शौक छोड़ कर नियमानुमोदित आन्दोलनसे कार्य्य सिद्ध करनेके लिए पार्नेलके साथ हो गये और उन्हींके जोर पर तथा व्यावहारिक कर्त्तृत्वकी सहायतासे पार्नेलको ब्रिटिश पार्लमेण्टमें आयर्लैण्डका प्रश्न हाथमें लेना पड़ा।

आन्दोलनके इस अंगके सम्बन्धमें एक और बात ध्यानमें रखने योग्य है। वह यह कि यद्यपि आयर्लैण्डमें समय समय पर गुप्त मण्डलियोंका प्रसार हुआ, तथापि वह प्रसार कभी अधिक दिनों तक नहीं ठहरा और जब इन गुप्त मण्डलियोंका काम खुले आम आरम्भ होता था तब उसके थोड़े ही दिनों बाद इस उद्योगके सम्बन्धमें लोकमतकी प्रतिकूलता व्यक्त होती थी। अन्य मार्गोंका अवलम्बन करनेवाले जो लोग यह प्रतिकूलता व्यक्त करते हैं उन्हें यह निषेध आलंकारिक शब्दोंमें और ऐसी रीतिसे प्रकट नहीं करना पड़ता, जिसमें यह निषेध सरकारी अधिकारियोंकी दृष्टिमें पड़े। देशके एक वर्गके लोगोंके व्यवहारके सम्बन्धमें दूसरे वर्गके लोगोंके निषेध व्यक्त करनेके अनेक दूसरे शिष्ट-मान्य मार्ग हैं। क्योंकि किसी बुराईके

राजकीय आंदोलनके अन्तर्गत होनेसे ही क्या होता है? काम जो बुरा है वह बुरा ही है। रेंड़ीका तेल ओषधि ही क्यों न हो, पर जो चीज बदबूदार है वह बदबूदार ही है। कुनैनकी गोली खानेके समय यद्यपि यह समझा जाता है कि कदाचित् इससे हमारा बुखार कम हो जायगा तथापि उसे यह सार्टीफिकेट कोई नहीं देगा कि—"यह बहुत मीठी होती है।" गुप्त मण्डलियों और षड्यंत्रोंके कारण साहसी मनुष्योंको यद्यपि यह जान पड़ता है कि हमारे स्वदेशाभिमानकी लहर धीमी पड़ती है, लेकिन साथ ही उन्हें वे त्रुटियाँ भी दिखाई पड़ने लगती हैं जो ऐसी संस्थाओंके हाथमें आंदोलनका नेतृत्व चले जानेके कारण होती हैं। स्वतंत्र कमीशन नियुक्त करके पार्नेल और उनके सहकारियों पर जो मुकद्मा चलाया गया था उसके प्रमाणों आदिसे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उत्कट विचारके उन नेताओंने भी पहलेसे ही इस बातका ध्यान रखा था कि देशके आंदोलन पर गुप्त मण्डलियोंका गुप्त पाश न पड़े और आंदोलनको उस धोखेसे बचाया था। पार्नेलके शिष्य और रेडमण्डके प्रतिपक्षी विलियम ओब्रायनने, जिसके लिए कुछ दिनों पहले आयरिश कनवेन्शनमें बड़ी मारपीट हुई थी; अपनी एक पुस्तक प्रकाशित की थी। उसमें उसने गुप्त मण्डलियोंके विरुद्ध अपना मत स्पष्ट रूपसे प्रकट किया था। ओब्रायन कानूनको देवता माननेवाला आदमी हरगिज नहीं था, तो भी उसका यह सिद्धान्त अवश्य था कि कानूनका ध्यान रखनेकी जिस प्रकार मर्य्यादा है उसी प्रकार देशभक्तिके नामसे होनेवाले कामोंकी भी मर्य्यादा है। फीनिअन विद्रोहके समय ओब्रायन छोटा था, लेकिन उसका बड़ा भाई उस षड्यंत्रमें सम्मिलित था, इस लिए अद्भुत-रम्य युवावस्थाकी देशभक्तिसे प्रेरित होकर उत्पन्न होनेवाला शौक पूरा करनेके लिये वह भी इसमें सम्मिलित हो गया था। लेकिन आगे चलकर जब वह सयाना हुआ तब उसने कहा-

" यदि राष्ट्रीय स्वतंत्रताके प्रचण्ड और विशाल कार्य्य तथा विद्रोहके साधनोंका परस्पर मिलान किया जाय तो यह बात अच्छी तरह मनमें बैठ जाती है कि केवल गुप्त मण्डलियोंके द्वारा देशको स्वतंत्रता दिलानेकी कल्पना बिलकुल अविचारपूर्ण और पागलपनकी है। "

आयलैंण्डमें सन १८४० से १८५० तक राष्ट्रीय आन्दोलनके उद्यके समय 'नेशन' पत्रकी सम्पादक-मण्डलीके लिए भी कानूनकी मर्य्यादाका उल्लंघन करनेका प्रसंग आया था। लेकिन राष्ट्रीय मतके बुद्धिमान् प्रसारक चार्ल्स गबन, डफी और डेविसने उन लोगोंकी दाल नहीं गलने दी जो उन पर अत्याचार करनेवाले थे। ए० एम० सुलिवानने, जो किसी समय 'नेशन' पत्रका सम्पादक था, आयलैंण्डके लोगोंके मनकी स्थितिका वर्णन 'नवीन आयलैंण्ड' नामक पुस्तकमें किया है। वह वर्णन आयलैंण्डकी आजकी स्थितिके लिए भी प्रयुक्त हो सकता है, अतः उसे हम यहाँ दे देते हैं। वह कहता है—"आयलैंण्डमें सभी तरहके स्वभावके लोग हैं। इसमें सन्देह नहीं कि उनमेंसे बहुतसे लोगोंके मनमें उतावलेपनके कारण अथवा निराशा और देशभक्तिके आवेशमें नियमविरुद्ध प्रयत्न करनेकी भी तरंग उठती है। लेकिन यदि समस्त आयरिश समाजका लोकमत देखा जाय तो यही जान पड़ता है कि उनका निश्चय यही है कि इस समय हाथकी राजकीय सत्ता और उसकी सहायतासे मिलनेवाले लोकमत तथा इसी प्रकारके दूसरे शस्त्रोंका उपयोग करके ही राष्ट्रीय स्वतंत्रता प्राप्त करनी चाहिए। " उसके इस कथनका सबसे अच्छा प्रमाण वर्त्तमान युरोपीय महासमरके समय अँगरेज अधिकारियोंको मिल गया जब कि कैसरकी आयलैंण्डमें विद्रोह खड़े होनेकी आशा विफल हो गई और आयलैंण्डवालोंने इंग्लैण्डको न्याय-पक्षमें समझ कर सब प्रकारसे उनकी सहायता करना अपना परम देशभक्ति-पूर्ण कर्त्तव्य समझा और यह समझ कर

उस कर्त्तव्यका पालन किया कि इसी पर हमारी सारी भावी स्वतंत्रता, वैभव और सुख निर्भर है ।

तथापि इस इतिहाससे एक और महत्त्वपूर्ण बात प्रमाणित होती है। वह यह कि केवल कानूनको ही श्रुतिके समान मान कर चलनेसे किसी नेताका ठीक तरहसे काम नहीं चल सकता । अठारहवीं शताब्दीमें आयर्लैण्डमें ऐसे अनेक निर्लज्ज लोग हो गये हैं जो यह समझते थे कि देशहितसरीखी अमूल्य वस्तु बेचकर चार पैसे पैदा करनेके लिए ही ईश्वरने हमें देश दिया है और इसके लिए वे ईश्वरका आभार मानते थे । इसी कारण उन्नीसवीं शताब्दीमें भी जान सेडलिअर, विलियम किओघ, एडमण्ड ओप्लहरटी आदि अनेक ऐसे लोग हो गये हैं, जिन्होंने केवल अपनी बात बनाने और उन्नति करनेके लिए ही नियमानुमोदित देशसेवाका ढोंग रचा था । इस प्रकारके लोग देशका नाम लेकर और उसे अपवित्र करके जो काम करते हैं, उसकी आवश्यक प्रतिक्रिया षड्यंत्रकारियों और अत्याचारके समर्थक साहसी युवकोंके द्वारा ही होती है । लेकिन वास्तविक प्रगतिका सबसे अधिक उपयुक्त मार्ग सदा इन दोनों छोरोंके बीचमें ही कहीं होता है । प्रत्येक अत्याचारका निषेध करना बहुत ही आवश्यक है; तथापि उस निषेध पर सहजमें ही यह आक्षेप किया जा सकता है कि केवल निषेध करनेके समान सहज और अपने बचावका और कोई काम नहीं है । जो लोग केवल अपनी रक्षाके लिए ही अत्याचारका निषेध करते हों उनका निषेध कौड़ी कामका भी नहीं है । वास्तविक मूल्य पार्नेल आदि ऐसे ही लोगोंके निषेधका है, जिन्होंने अत्याचारप्रिय युवकोंके मनसे असद्-उद्देश्य निकाल कर उनके धैर्य, देशभक्ति और उद्योग-प्रियताका उप-योग करनेके लिए उनके सामने सदुद्देश्य रक्खा, उनके सच्चे गुणोंको हानि न पहुँचाते हुए उनके मनसे तामस विचार उसी तरह निकाल दिये,

जिस प्रकार सुंदर फूलोंवाले पोधेको हानि न पहुँचाते हुए क्यारियोंमेंसे निरर्थक और हानिकारक घास-फूस आदि निकाल देते हैं, जिन्होंने शारीरिक तथा नैतिक सामर्थ्यका मेल मिलानेके लिए अपने प्राणोंकी भी चिन्ता नहीं की और आवश्यकता पड़नेपर जिन्होंने जेल जाना भी स्वीकार किया। चाहे हिन्दुस्तानमें हों और चाहे आयर्लैण्डमें हों, जब इस प्रकारके ओजस्वी परन्तु सदय, उत्साही परन्तु विचारी, अत्याचार-शत्रु परन्तु साहसी और अपने बचावकी चिन्ता न करते हुए निषेधके काममें प्रवृत्त होनेवाले और एक बातके निषेधके साथ ही साथ उसकी अपेक्षा देशसेवाकी दूसरी अच्छी बातोंका प्रचार करनेवाले लोग होंगे तभी अत्याचार रुकेगा।

आयर्लैण्डमें लोकमतके नेता। प्रत्येक देशमें लोकमतके नेता प्रायः ऐसे ही दिखलाई देते हैं, जो प्रायः मध्यम स्थितिके वर्गमें उत्पन्न हुए हैं। इसका एक कारण यह है कि सच्चे सुशिक्षित लोग मुख्यतः इसी वर्गमें होते हैं। यह कहनेमें कोई हानि नहीं है कि कनिष्ठ श्रेणी और अशिक्षित वर्गकी बहुधा समव्याप्ति ही होती है और अशिक्षित मनुष्योंके मनमें देशहितसरीखे व्यापक और उन्नत विचारोंकी बातोंका सहसा आना कठिन ही होता है। इस वर्गके लोग स्वराज्यकी अपेक्षा सुराज्यका मूल्य ही अधिक समझते हैं। वे लोग उसी अधिकारीको पसन्द करते हैं, जिसके शासनसे तुरन्त सुख मिले; फिर उनका राजा और महाराज सब कुछ वही है। सुराज्य और स्वराज्यका भेद मार्मिक और रसिक मनुष्य ही समझ सकते हैं। यह बात अशिक्षित लोग नहीं समझ सकते कि बिना स्वराज्यके यदि सुराज्य हो भी, तो वह अधिक समय तक नहीं ठहर सकता। यह नहीं कहा जा सकता कि आयर्लैण्डमें ब्रायन और कारमेक राजासे लेकर और हिन्दुस्तानमें अजातशत्रु धर्म्मराजसे लेकर महाराज पंचम जार्ज तकके

भिन्न भिन्न शासन-कालोंमें करोड़ों खेतिहरोंकी प्रत्यक्ष स्थिति और सुख दुःख आदिमें समय समय पर जो अन्तर पड़ा कार्य्य-कारण सम्बन्धसे उनका सूत्र ठेठ राजातक ले जानेका ज्ञान उन्हें कभी हुआ हो। कन्धे पर लाठी रखकर दिनरात खेतीके कामोंमें लगे रहनेवाले खेतिहरोंको यदि बिना कष्टके पेट भर रोटी मिल जाय तो उनकी दिवाली हो जाती है। जिस राजाके शासन-कालमें उन्हें पेट भर रोटी मिलती है वह राजा यदि स्वदेशी हो तो उन्हें उसका विशेष हर्ष नहीं होता और यदि विदेशी हो तो उसका विशेष विषाद नहीं होता। यह तो कनिष्ठ और अशिक्षित वर्गकी स्थिति हो गई। मान-मरतबे और धन सम्पत्ति आदिके कारण जो वर्ग श्रेष्ठ माना जाता है, उसकी बात भी एक प्रकारसे इसी कनिष्ठ वर्गके समान होती है। कनिष्ठ वर्गके लिए शिक्षा दुर्लभ होती है और सहजमें उसे वह मिल भी नहीं सकती; इस लिए उसके मनमें देशके सम्बन्धमें व्यापक और उन्नत विचार नहीं आते, लेकिन श्रेष्ठ वर्गके लिए शिक्षा सब प्रकारसे सुलभ होती है; लेकिन उनके पास बिना शिक्षाके भी पेट भरनेके साधन होते हैं, इस लिए उनमेंसे बहुतोंको शिक्षाकी न तो आवश्यकता ही होती है और न उसका महत्त्व ही मालूम होता है। उन्हें इस बातका भी भय होता है कि हमारे मान-मरतबे और धन-सम्पत्ति आदिमें कहीं धक्का न लगे, हमारी वर्त्तमान उत्तम स्थिति कहीं बिगड़ न जाय और धीरे धीरे हम निर्जीव न हो जायँ। और यदि उनमें देश-कार्य्य-संबंधी व्यापक बातों पर विचार करनेकी योग्यता भी हो तो भी उन विचारोंके कार्य्यरूपमें परिणत होने और देशकार्य्य-में उनके नेता बननेमें उनकी स्वार्थ-बुद्धि अड़चन डालती है। देश-कार्य्यके आन्दोलनोंमें इस श्रेष्ठ वर्गके लोग यदि नेता बनकर सम्मिलित भी हों तो ज्योंही वह आन्दोलन बढ़ेगा और विजयश्रीका मुहँ दिखाई देने लगेगा त्योंही वे पीछे हटने लगेंगे। वेदान्तमें जब बुद्धिमानका

उदाहरण देना होता है तब जोंक (तृण-जलौका-न्याय) का उदा-हरण देते हैं। जोंक जब घास पर चलने लगती है तब वह अपना पिछला पैर उसी समय उठाती है जब अगला पैर किसी तिनके पर बहुत मजबूतीसे जमा लेती है। यह नहीं कहा जा सकता कि जोंक प्रगमन-शील प्राणी नहीं है, लेकिन उसके मनमें प्रगतिकी अपेक्षा अपने आधार और सुरक्षितताका विचार अधिक प्रबल होता है। अपनी मान-मर्य्यादाके फेरमें पड़े हुए और अनिष्टमें भी जो कुछ घी मिल जाय वही अपनी रोटी पर चुपड़ लेनेवाले देशके 'श्रेष्ठ' वर्गके लोगोंकी भी राजनीतिमें इसी जोंककी सी दशा होती है। वे लोग समझते हैं कि– "इस समय जो कुछ है उससे अधिक अच्छा भी और कुछ हो सकता है; परन्तु जो कुछ है वह भी एक प्रकारसे अच्छा ही है।" लेकिन मध्यम स्थितिके लोगोंकी बात इन दोनों वर्गोंसे अलग होती है। कनिष्ठ वर्गकी अपेक्षा वे अधिक सुशिक्षित होते हैं और श्रेष्ठ वर्गके लोगोंकी तरह उनका पैर मान-मर्य्यादा और धन सम्पत्तिके कीचड़में फँसा हुआ नहीं होता। अतः देशके लोकमत और राष्ट्रीय आन्दोलनके नेता होनेके वे पूर्ण रूपसे योग्य होते हैं। प्रत्येक देशमें एक बार प्रस्थापित राजनीतिकी रुख इस प्रकार बदलनेमें बहुत ही कठिनता होती है जिसमें प्रजाका अधिक लाभ हो। और यह बात भी नहीं होती कि राजकीय आन्दोलनकी नदीमें चार हाथ चलाकर और परम्पराके प्रवाहकी धार तोड़कर किनारे तक पहुँचनेका साहस करनेवाले अच्छे तैराक कभी बीचमें ही न डूब जाते हों। तथापि इस कामके करनेके लिए तैराक पर स्वार्थका बोझा जितना ही कम हो उतना ही अच्छा होता है। सार्व-जनिक आन्दोलनमें मध्यम स्थितिके लोग जो धनुषसे छोड़े हुए तीरके समान कार्य्यक्षम होते हैं उसका कारण यही है कि तीरके फलकी तरह उनका मस्तिष्क शिक्षाके कारण तीक्ष्ण रहता है और तीरके पंख-

की तरह उनके शरीरका भार हलका होता है। इसी लिए राष्ट्रीय कार्य्योंमें वे लक्ष्यवेध ठीक और शीघ्र कर सकते हैं।

आयर्लैण्डका क्या, और हिंदुस्तानका क्या, जिस देशका इतिहास देखिए, उक्त सिद्धान्तकी सत्यता प्रत्यक्ष हो जाती है। आयर्लैण्डके कनिष्ठ वर्गके लोगोंने जहाँ तक कष्ट भोगा जा सकता था वहाँ तक कष्ट भोगा और जब उनसे कष्ट नहीं भोगा गया तब उन्होंने सिर्फ डंडोंसे अक्षम्य रक्तपात करके अपना शोक-क्षोभ ऐसी रीतिसे शान्त किया, जो उनके तथा दूसरोंके लिए घातक था। ओक बॉयज, व्हाइट बॉयज, पीप आफ डे बॉइज, हार्ट्स आफ स्टील, रिब्बन सोसायटी, डिफेण्डर्स आदि अनेक प्रकारके विद्रोही और उपद्रवी लोग आयर्लैण्डमें हुए। प्रायः ये सब स्वयं ही नहीं समझते थे कि हमें क्या चाहिए; और जब वे समझते थे तब उनकी माँग बहुधा उनकी तत्कालीन स्थितिमें कष्ट देने वाली एकाध फुटकर बातके सम्बन्धमें ही होती थी। यह नहीं कहना चाहिए कि उन्होंने राष्ट्रीयता प्राप्त करनेके लिए रक्तपात किया था; उनके कष्ट वास्तविक थे। लेकिन उनके दंगे-फसादसे अनेक बार निरपराधी लोग भी मारे जाते थे और तबेलेकी बला बन्दरके सिर जाती थी। उनके द्वारा राष्ट्रीय आन्दोलन नहीं होता था। उधर आयर्लैण्डके श्रेष्ठ वर्गके धनिक और जमींदार अपनी जमींदारीकी आमदनीसे ही चैन करते थे। राष्ट्र-कार्य्यका उन्हें स्वप्नमें भी ध्यान नहीं होता था। वास्तवमें जमींदारों और विशेषतः सुशिक्षित जमींदारोंको ही राष्ट्र-कार्य्यमें नेता बनना चाहिए था। लेकिन आयर्लैण्डके ये लोग बहुत ही अत्याचारी और व्यसनी थे। इनके यहाँ लड़नेवाले बकरे, शिकारी कुत्ते, घुड़दौड़के घोड़े, बड़े बड़े जुआरी, मस्त पहलवान और लड़नेवाले, फरमायशी खाना पकानेवाले बावर्ची और शराबके घड़े ही दिखाई पड़ते थे। इन्हें कोई अच्छी पुस्तक या सुशिक्षित स्नेही या

सात्त्विक और धार्मिक आश्रित अथवा सलाहकार नाम मात्रको भी न मिलता था। लेकिन लोग कहते हैं कि मुफ्तका माल मुफ्तमें ही जाता है। आयरिश जमींदार गरीब काश्तकारों पर अत्याचार करके लाखों रुपये लेते थे और उनका उक्त रीतियोंसे अपव्यय होता था। उन्हें शराबके नशेमें कलका ध्यान ही नहीं रहता था, तब जिस राष्ट्रकार्य्यको देखनेके लिए कई कई पीढ़ियों तक नजर दौड़ानेकी आवश्यकता होती है भला वह राष्ट्र-कार्य्य उन्हें कैसे दिखाई देता? उक्त वर्णन पढ़कर हिन्दुस्तानके नवाबों और अनेक ऐसे पुराने ऐयाश अमीर घरानोंका स्मरण होता है जो अब नष्ट हो गये हैं और जिनके लिए बहुत ही दुःख होता है। जिन लोगोंको स्वाभाविक रूपसे नेता बनना चाहिए था उनकी यह दशा होनेके कारण और आरम्भमें आयरिश लोगोंमें बिना नेताके आगे कदम बढ़ानेकी योग्यता और धैर्य्य न होनेके कारण उन्हें दूसरी श्रेणीके उन नेताओंका पल्ला पकड़ना पड़ता था जो केवल स्वार्थके कारण राजनीतिक कामोंमें पड़ते थे और उनके पीछे चलनेसे उन्हें सदा गड्ढेमें गिरना पड़ता था। आयर्लैण्डकी यह स्थिति अठारहवीं शताब्दीके मध्य तक थी। परन्तु आगे चलकर वह धीरे धीरे बदल गई। धर्म्म-सहिष्णुता बढ़ने लगी, कैथोलिक लोगोंके विरुद्ध बने हुए कानूनोंके बन्धन ढीले पड़ने लगे, शिक्षाका प्रचार होने लगा और इस प्रकार धीरे धीरे राष्ट्रीयताकी कल्पनाका अंकुर फूटने लगा। इस समय मध्यम वर्गके सुशिक्षित लोग राष्ट्रीय कार्य्योंमें नेता बनने लगे और तबसे वे ही अबाधित रूपसे नेता बने रहे। इन बातोंके कारण बदली हुई परिस्थितिमें जमींदारोंका महत्त्व कम होने लगा। मध्यम और कनिष्ठ वर्गके लोगोंमें मेल हो जानेके कारण ऐसे कानून बनने लगे जो जमींदारोंके अत्याचार और लोभमें अड़चन डालने लगे, तब उनकी आँखोंका धुंध दूर हुआ और वे भी राष्ट्रीय कार्य्यमें कुछ कुछ मन लगाने लगे।

आयर्लैण्डमें गत डेढ़सौ वर्षोंसे राष्ट्रीय कार्य्योंका नेतृत्त्व स्वतंत्र पेशे-वाले लोगोंके हाथमें ही रहा है और उनमें बैरिस्टर वकील और विद्या-व्यसनी लोग ही प्रधान हैं। ग्रॅटन, फ्लड, शील, क्यूरन, ओकानेल, आइजिक बट आदि नियमानुमोदित आन्दोलन करनेवाले और टोन, शीअर बन्धु आदि नियमविरुद्ध आन्दोलन करनेवाले सब बैरिस्टर ही थे। राबर्ट एमेट कालिजसे निकाला हुआ अंडर ग्रॅजुएट था; ल्यूकस चिकित्सक (एम. डी.) था, स्विफ्ट, मालिनो, बर्क्ले, बर्क आदि नेता अपनी विद्वत्ताके कारण जगत्-प्रसिद्ध थे। टामस मूर प्रसिद्ध कवि हो गया है। बड़ा डिलन, डेविस डफी, सुलिवान, ओब्रायन, ओकोनर, मेकार्की आदि प्रसिद्ध विद्वान् समाचारपत्र-सम्पादक और लेखक थे। जान किओघ अच्छा व्यापारी और पार्नेल अच्छा जमींदार था। स्वयं सम्पन्न होने पर भी देशकार्य्यमें नेता बनानेवाले अर्ल आफ चार्ल मांट, लार्ड फिटजरल्ड, स्मिथ ओब्रायन सरीखे लोगोंके नाम बहुत कम मिलते हैं और इसका कारण ऊपर बतलाया जा चुका है। आयर्लैण्डके इतिहासके आरम्भमें ओनील, एड-मण्ड आदि शूर राजा लड़ाई और विद्रोह करके इतिहासका नाम बदनाम कर गये; लेकिन उनका समय अँगरेजी राजसत्ताके पूर्णरूपसे स्थापित होनेसे बहुत पहले था और इसीलिए राष्ट्रीय आन्दोलनके इस सम्बन्धमें हमने विशेष रूपसे उनका नाम नहीं लिया। स्विफ्ट, मालिनो, आदिने प्रत्यक्ष राजकीय आन्दोलनमें कभी नेतृत्व ग्रहण नहीं किया था; परन्तु इनके लेख विद्वतापूर्ण, सारगर्भित और कड़े होते थे और उनके कारण समाजमें बड़ी खलबली मच जाती थी। मालिनो शास्त्रज्ञ और सच्चा तत्त्ववेत्ता था; तथापि उसमें उज्वल देश-भक्ति थी, इसलिए उसने सन् १६९८ में ‘ अँगरेजी कानूनोंसे आय-र्लैण्डकी क्या स्थिति हुई ’ नामक पुस्तक लिखी और राजाको समर्पित

की। उसके कारण इंग्लैण्डमें बड़ी खलबली मची और उस पुस्तकको राजद्रोही ठहराकर ब्रिटिश पार्लमेण्टने आज्ञा दी कि वह चौराहे पर जला दी जाय। स्विफ्ट राजनीतिज्ञ नहीं बल्कि धर्म्मोपदेशक था; तथापि उसने 'ड्रेपिअरके पत्र' नामक जो लेख प्रकाशित किये थे उनमें अँगरेजी शासन पर खूब बौछार की थी। इस लिए उसके लेखक पर मुकद्मा चलाना निश्चित हुआ और आयर्लैण्डके वाइसरायने इश्तहार दिया कि जो व्यक्ति उन पत्रोंके लेखकका पता लगा देगा उसे तीन हजार रुपया इनाम दिया जायगा। डा० ल्यूकसके लेख भी राजद्रोहात्मक और विद्रोहपूर्ण ठहराये और चौरस्ते पर जलाये गये थे। अधिकारियोंने इस बातकी कसम खा ली थी कि जिस तरह होगा उस तरह उसे अपराधी ठहराकर जेल भेजेंगे। इसलिए उसे कुछ दिनों तक आयर्लैण्ड छोड़कर इंग्लैण्डमें रहना और वहीं अपना चिकित्साका व्यवसाय करना पड़ा था। उसके सम्बन्धमें ग्रॅटनने कहा है कि—"आयर्लैण्डमें राष्ट्रीय स्वतंत्रताकी कल्पनाकी नीव उसीने डाली थी। आयर्लैण्डके उस खाली समयमें स्विफ्टके उपरांत भयंकर शब्द 'स्वतंत्रता' का उच्चारण करनेवाला ल्यूकस ही हुआ।" एडमण्ड बर्क इंग्लैण्डमें रहता था। तो भी आयरिश लोकमतके प्रधान नेताओंमें उसकी गिनती होती थी। अमेरिकामें स्वतंत्रताके लिए जो युद्ध हुआ था, बहुतसे अंशोंमें उसका कारण बर्क ही था और आगे चलकर फ्रान्समें राज्यक्रांति करनेवाले लोगों पर उसने जो क्रोध दिखलाया था उसके कारण उसकी उस कीर्तिमें बट्टा नहीं लगता जो उसे स्वतंत्रताके भक्त और मित्र होनेके कारण प्राप्त हुई थी। ग्रॅटन सदा अपना व्यवहार ऐसा रखता था जिसमें पार्लमेण्टमें एक पक्ष सदा उसके देशके कार्य्यके अनुकूल रहे और कभी झगड़े-फसादमें न पड़कर नियमानुमोदित रीतिसे आन्दोलन करता था।

लेकिन सन् १७८२ के लगभग जब आयरिश पार्लमेण्टकी स्वतंत्रताका प्रश्न बहुत जोरों पर था तब यही राजनीतिज्ञ यह कहनेके लिए तैयार हो गया था कि यदि आयर्लैण्डकी प्रार्थना इंग्लैण्ड स्वीकृत न करेगा, तो फिर जो होना होगा सो होगा । अधिकारियोंकी दृष्टिसे देखते हुए जन्मभर नियमानुमोदित रीतिसे और नम्रतापूर्वक व्यवहार करने-वाले इस राजनीतिज्ञने जब इंग्लैण्डकी कठिनाइयोंसे लाभ उठाकर पार्लमेण्टके स्वतंत्र होते ही प्रतिबन्धक व्यापारके कानूनों-को रद्द करनेकी बात उठाई थी, तब लिबरल पक्षके इस मित्रको ' कृतघ्न ' और ' भयंकर विद्रोही ' कहनेमें इंग्लैण्डवालोंने कसर नहीं की; क्योंकि इसी सुप्रसिद्ध अवसर पर इसी नम्र राजनीतिज्ञने इंग्लैण्डके प्रति इस प्रकार उत्कृष्ट शब्दोंमें कहा था—" किसीका चाहे कितना ही बड़ा उपकार क्यों न होता हो, तो भी किसी पुरुषसे अपनी सदसद्विवेक बुद्धि, स्त्रीसे अपना पातिव्रत और राष्ट्रसे अपनी स्वतंत्रता नष्ट करनेके लिए कहनेके समान अधमता संसारमें और कोई नहीं है ।" सन् १७९८ के आयरिश-विद्रोहके समय इस नम्र राजनीतिज्ञ पर ' युनाइटेड आयरिशमैन ' नामक गुप्त मण्डलीमें सम्मिलित रहनेके अभि-योग पर मुकद्मा चलनेकी पूरी तैयारी हो गई थी। लेकिन वह प्रसंग बड़ी कठिनाइयोंसे टला । अधिकारियोंके सन्देहका केवल इतना ही आधार था कि इस गुप्त मण्डलीका नीलसन नामक एक नेता ग्रटनके पास उससे यह पूछनेके लिए गया था कि-"क्या आप इस मण्डलीके सभासद होंगे ? " और उस सभाके उद्देश्य आदि जो उसने ग्रटनके टेबुल पर रक्खे थे वे उसी तरह पड़े रह गये । लेकिन ग्रटनने उसी समय स्पष्ट कह दिया था कि-" मैं सभासद नहीं होऊँगा । " सन् १७९८ और १८०१ वाले विद्रोहोंका निषेध भी उसने स्पष्ट रूपसे किया था । परन्तु केवल गुप्त पुलिसकी रिपोर्ट उसके विरुद्ध थी । अधिकारियोंने

वह रिपोर्ट प्रसिद्ध कर दी और इसलिए राजाने प्रिवी कौन्सिलमेंसे उसका नाम निकाल दिया। इतना ही नहीं, बल्कि सन् १७८२ में जिन लोगोंने उसे मानपत्र दिया था और उसके चित्र सभामंडपमें लगाये थे उन्हीं राजभक्त परन्तु विचारशून्य और डरपोंक लोगोंने उसकी तसबीरें मकानसे निकाल कर फेंक दीं, उसे दिया हुआ मानपत्र फेर लिया और जिस रास्तेका नाम उसके नाम पर रक्खा था उस रास्ते परसे उसके नामकी तख्ती निकाल कर फेंक दी! लेकिन यह मनुष्य वास्तवमें इतना निःस्पृह बुद्धिमान् और तेज मगर कानूनका ध्यान रखकर बोलनेवाला और कायदे-कानूनको माननेवाला था कि आगे चलकर जब वह पार्लमेंटका सभासद् हुआ तब बड़े बड़े अँगरेज राजनीतिज्ञ भी उसे देखकर आदरसे उसके सामने मस्तक झुकाते थे। फ्लड लोकपक्षका नेता माना जाता है। पार्लमेण्टके वादविवादमें उसकी कड़ी टीका और राजकर्म्मचारियोंकी शिकायत कभी कभी ग्रटनसे भी आगे बढ़ जाती थी। उसकी बातोंसे खयाल होता था कि यह विद्रोहका नेता भी होगा। तथापि सन् १७८०-८२ में जब आयरिश स्वयंसेवकोंकी सेवामें सैनिक भाव संचार करनेका समय आया तब वह ठीक मौके पर पीछे हट गया। मंत्रिमण्डलमें अथवा उसकी अधीनतामें बड़ी तनख्वाहकी नौकरी पानेकी आशा जन्मभर उसके मनमें बनी ही रही। शील और क्यूरन वक्ता थे। वे लोकपक्षकी ओरसे पार्लमेण्टमें सदा ही अधिकारियोंका विरोध करते थे और लोकमतके नेता माने जाते थे। तथापि शीलने आगे चलकर न्यायाधीशका पद स्वीकार किया और क्यूरन सन् १८०१ वाले विद्रोहके इतना प्रतिकूल था कि जब उसकी लड़कीके प्रेमी और भावी दामाद् राबर्ट एमेट पर विद्रोहका मुकदमा चला तब उसने उसका वकालतनामा लेना भी नामंजूर कर दिया! इन दोनों ही वक्ताओंने अनेक राजकीय अपराधियोंकी ओरसे बहुत अच्छी वकालत की थी,

तथापि समझमें नहीं आता कि उक्त कारणोंसे उनके उक्त व्यवहारोंके लिए हम उन्हें क्या कहें। केवल आइजिक बटको हम सच्चा नरम-दलका आदमी कह सकते हैं, क्योंकि उसने स्वयं कभी नियमानुमोदित मार्गका अतिक्रमण नहीं किया और वह पार्नेलके विरोधके मार्गका भी विरोधी था। तथापि दूसरे पक्षसे देखते हुए नरम दलके इस नेताने फीनिअन सरीखे भयंकर आन्दोलनमें मिले हुए और षड्यंत्रकारियोंके मुकदमोंकी बहुत जोरोंसे पैरवी की थी; उसने प्रार्थना की थी कि फीनिअन लोगोंको एक दमसे क्षमा कर दिया जाय और जब बीस वर्षके अनुभवसे ब्रिटिश पार्लमेण्टसे आयरिश लोगोंको अधिकार मिलनेका उसका सुख-स्वप्न टूट गया तब उसने उतरती उमरमें आयरिश पार्लमेण्टको स्वतंत्र करनेके आन्दोलनमें नेतृत्व ग्रहण किया। डेनियल ओकानेलके सम्बन्धमें तो यह कहना बहुत ही कठिन होता है कि वह नरम दलका था या गरम दलका। क्योंकि उसने अपना सारा जीवन न्यायाधीशों और अधिकारियोंकी फजीहत करने और उनके कामोंकी कड़ी टीका करनेमें ही बिताया। सैकड़ों संस्थायें स्थापित करके हजारों व्याख्यान देकर और लाखों आदमियोंकी सार्वजनिक सभायें करके देशके कोनेकोनेमें उसने ऐसा असन्तोष फैला दिया था कि मानों वह राज्य-क्रान्तिकी तैयारी ही कर रहा है और इस प्रकार राष्ट्रीय आन्दोलनको वह बहुत जोरों पर ले आया था। स्वतः द्वन्द्वयुद्ध करके उसने एक बार अपने प्रतिपक्षीके प्राण भी लिए थे। वह उन लोगोंमेंसे था, जो खुलकर यह कहा करते थे कि लोग तो स्वयं कभी अधिकारियों पर आक्रमण नहीं करेंगे, पर अधिकारी यदि अपनी मर्य्यादा छोड़ कर खुराफात करेंगे तो ईश्वरकी कृपासे और राष्ट्रके भाग्यसे जो हो जाय वही अच्छा है। उसने सैनिक शब्दोंकी सहायतासे राष्ट्रीय आन्दोलनके अंगों और उपांगोंके नाम भी रक्खे थे। तथापि यह पहले ही कहा जा

चुका है कि नियमानुमोदित कार्य्यके लिए जब क्लानटार्फ नामक इतिहास-प्रसिद्ध स्थानमें लाखों आदमियोंकी अपूर्व सार्वजनिक महासभा करनेका संकल्प हो चुका था, तब उसने सभासे एक दिन पहले सन्ध्याके समय केवल वह जरासा कागज देखकर उक्त सभा रोक दी थी, जो सरकारकी आज्ञासे सभा रोकनेके सम्बन्धमें निकाला गया था; और मुकदमा चलने पर जब उसको सजा हो गई तब उसे एक अदना सिपाहीके पीछे पीछे जेल जाना पड़ा था। उसका यह सिद्धान्तिक बचन भी सभी लोग जानते हैं कि यदि निरपराधके रक्तकी एक बूँद गिरनेसे भी राष्ट्रीय मोक्ष मिलनेकी सम्भावना हो तो उसके लिए रक्त-पात न करो। उसके कार्य्य-क्रममें भिन्न भिन्न समयोंमें ब्रिटिश पार्लमेण्टसे न्याय कराने और स्वतंत्र पार्लमेण्ट माँगनेकी दो विरोधी बातोंका समावेश हुआ था। डेविस, डिलन, डफी और सुलिवान ये नेता 'नेशन' पत्रके सम्पादक थे। उन लोगोंने इस पत्रके द्वारा आयरिश लोगोंको सर्वोत्तम प्रकारका राष्ट्रीय धर्म्म सिखलाया था। वे ओकानेलको नरम दलका बतलाते और उसकी निन्दा करते थे। तथापि राष्ट्रीय धर्म्मका मुख्य उपदेशक डेविस स्वयं मार काट और षड्यंत्र आदिका विरोधी था।

तथापि यह बात ध्यानमें रखनी चाहिए कि ऐसा कोई नहीं था, जो कानूनको श्रुति वचनके समान ही मानता हो। 'नेशन' पत्रके सम्पादक डफी पर तीन बार मुकदमा चला था। परन्तु अन्तमें वह अमेरिकामें जाकर एक उपनिवेशका प्रधान मन्त्री बना और पीछे सरकारने उसे 'सर' का खिताब भी दिया। डफीके बाद सुलीवान पहले 'नेशन' पत्रके सम्पादक-मण्डलमें था और अन्तमें वह उसका प्रधान सम्पादक बना। उसने भी अपने पत्रके द्वारा राष्ट्रधर्म्मकी बहुत अच्छी तरह शिक्षा दी थी। परन्तु उसके समयमें जो फीनिअन आन्दोलन हुआ था उसमें वह सम्मिलित नहीं था; और जब उसे मालूम हुआ

कि रासा आदि फीनिअन लोगोंने अपनी गुप्त मण्डलीमें मेरा नाम भी सम्मिलित कर लिया है तब उसने अपने समाचारपत्रमें स्पष्ट रूपसे गुप्त मण्डलका विरोध किया और अनेक युवकोंका मन उस आंदोलनसे फेर दिया। माइकल डेविट फीनिअन मण्डलमें सम्मिलित था। परदेशसे आयर्लैण्डमें अस्त्र शस्त्र आदि लानेके प्रयत्नमें वह पकड़ा गया था, जिससे उस पर मुकदमा चला और वह दस वर्षके लिए काले पानी भेज दिया गया। वहाँसे लौट कर उसने लैण्ड-लीगका आंदोलन किया और फिर इस आंदोलनके लिए भी उस पर मुकदमा चला। तथापि आगे चलकर पार्नेलकी तरह उसने भी अपने आपको गुप्त मण्डलसे अलिप्त ही रक्खा। पार्नेलके समान अँगरेजी राज्यसे द्वेष करने वाला और कोई हुआ था या नहीं, इसमें सन्देह ही है। लैण्ड लीग तथा नेशनल लीग आदिके कामोंमें फीनिअन लोगोंके साथ खुले आम सम्बन्ध रखकर नियमानुमोदित आन्दोलनमें जहाँ तक हो सकता वह उन लोगोंसे सहायता लेनेमें कसर नहीं करता था। तथापि जब 'टाइम्स' पत्रने उस पर हाइडपार्कमें होनेवाले खूनके साथ सहानुभूति रखनेका मिथ्या अभियोग लगाया, तब उसे बहुत ही बुरा मालूम हुआ और उसने भरी पार्लमेण्टमें कहा कि इस अभियोगकी खुले-आम तहकीकात होनी चाहिए और तब कमीशनके सामने उसके वकीलने सिद्ध कर दिया कि किसी गुप्त वधकी मंत्रणामें वह सम्मिलित नहीं था। पार्नेलके उपरान्तके आयरिश नेताओंने खुले आम और सार्वत्रिक बहिष्कार आरम्भ किया। तथापि हाइडपार्ककी हत्याके उपरान्त गत तीस वर्षोंमें आयर्लैण्डमें इस प्रकारका कोई विशेष राजनीतिक अत्याचार नहीं हुआ।

आयरिश लोकमतके जितने नेता हो गये हैं यदि उन सबका वृत्तान्त देखा जाय तो एक और बातका भी पता चलेगा। भिन्नभिन्न आयरिश

नेताओंके भिन्नभिन्न कार्य्योंके जो उदाहरण हमने दिये हैं उनसे प्रकट होगा कि सार्वजनिक कार्य्य करनेवाले व्यक्तियोंकी नीतिको सदा एक ही नाम नहीं दिया जा सकता। शासन-विधान वास्तवमें ऐसा ही है कि राजनीतिकी तरह उसे भी अनेक रूप धारण करने पड़ते हैं और अपने चारित्र्यके मूल तत्त्वका ध्यान रखकर काम करनेवाले शासन-विधायककी कृतिको भी देश काल और प्रसंगके अनुसार भिन्नभिन्न रूप धारण करते हुए देखा जाता है। एक तो स्वयं शासन-विधायकोंके स्वभावमें, बुद्धि और कार्य्य-क्षमतामें उनकी अवस्थाके अनुसार अन्तर पड़नेकी सम्भावना होती है और संसारके किसी राष्ट्रमें ऐसा एक भी शासन-विधायक न मिलेगा, समाजमें उपस्थित किया हुआ जिसका पहला भाषण या लेख वैसा ही हो, जैसा कि उसका अन्तिम भाषण या लेख हो। उसकी देश-सम्बन्धिनी चिन्ता, निर्लोभता और योग्यता आदि सभी बातें उसके चरित्रके आरम्भसे अन्त तक एक ही तरहकी कायम रह सकती हैं; लेकिन जिस सार्वजनिक कृत्यको लोग अच्छा कहते हैं उसीको वे कल बुरा कहने लगेंगे और शायद फिर उसीको परसों अच्छा कहने लगेंगे। दूसरी बात यह है कि परिस्थिति बदलनेके कारण अथवा अपनी भूल आप ही समझ कर मनुष्य कभी कभी अपना मत बदलता है और यदि वह प्रामाणिक और निर्भय होता है तो वह स्पष्ट रूपसे यह कहनेमें जरा भी नहीं हिचकता कि मैंने अपना मत बदल दिया है। इसी प्रकार बहुतसे काम करनेवाले आदमियोंकी मुख्य दृष्टि कार्य्य पर रहती है और वे अपनी सुसंगतताकी प्रसिद्धिकी अपेक्षा कार्य्यसिद्धिका ही विशेष ध्यान रखते हैं। ग्लैडस्टन साहब पार्लमेण्टमें प्रवेश करनेके समय 'टोरी' थे, पर अन्तमें वे पक्के 'लिबरल' हो गये। चेंबरलेन साहबकी- बात इससे बिलकुल ही उलटी हुई। लार्ड रोजबरी पहले आयरिश होमरूलके पक्षपाती थे, पर आगे चलकर वे बड़े भारी साम्राज्यवादी और होमरूलके शत्रु बन गये। यह कोई नहीं

कह सकता कि ये सब परिवर्त्तन केवल अपने हितके विचारसे अथवा मनोधैर्य्यके अभावके कारण हुए। आयरिश नेताओंमेंसे प्रायः हर एक पर विसंगतताका आरोप लाया जा सकता है और यदि इस विसंगतताके दो ही उदाहरण देने हों तो डेनिअल ओकानेल और आइजिक बट दिये जा सकते हैं। साथ ही सार्वजनिक काम करनेवालेका लोग जो अनेक अवसरों पर आदर करते हैं वे उसके द्वारा होनेवाली प्रत्यक्ष कार्य्य-सिद्धिका आदर करते हैं, उसके प्रयत्न और परिश्रम का आदर नहीं करते। क्योंकि परिणामरहित प्रयत्न और फलरहित कर्म्मकी यद्यपि एक प्रकारकी विशेष योग्यता होती है, तथापि उसके समझनेके लिए सर्वसाधारणका मन यथेष्ट संस्कृत नहीं होता। यह कहना सहज है कि कर्म्मके फलकी चिन्ता न करो, पर इस बातको प्रत्यक्ष आचरणमें लाना बहुत ही कठिन होता है और जनताके लिए तो वह और भी कठिन होता है। एक बात यह भी है कि सार्वजनिक कार्य्य करनेवालेकी विजयश्री और प्रसिद्धिका तेज अधिक समयतक समान रूपसे नहीं ठहरता, उस पर बराबर पालिश करते रहनेकी आवश्यकता होती है। लेकिन न तो ऐसे कार्य्य या प्रसंग ही किसीके हाथकी बात हैं, जिनसे कीर्त्ति बनाये रखनेके लिए बराबर पालिश की जाया करे और न यश ही किसीके अधिकारमें है। इसलिए इतिहासमें दो प्रकारके नेता मिलते हैं। एक प्रकारके नेताओंके द्वारा उनके जीवनमें एकाध ऐसा भारी काम हो जाता है कि उस समय उसके कारण उन्हें अनुपम कीर्त्ति प्राप्त होती है। लेकिन यह यश स्थायी नहीं होता; शीघ्र ही नसीब पलटा खाता है और आगे चलकर चाहे वे जन्मभर रगड़ते या पचते ही क्यों न रहें, पर कोई उनके प्रति साधारण कृतज्ञता भी प्रकट नहीं करता। दूसरे प्रकारके नेताओंकी यह बात है कि चाहे उनमें अलौकिक कृत्य करनेकी योग्यता न होनेके कारण कहिए और चाहे उन्हें वैसा अवसर न मिलनेके कारण कहिए, यद्यपि उनके कार्य्योंसे

लोगोंकी आँखोंमें चकाचौंध नहीं हो जाती, तथापि उनके यशोनिर्झरका पानी बारहों मास बना रहता है और उन्हें जन्मभर इस बातका यश मिलता रहता है कि वे लौकिक दृष्टिसे अथवा अपने ही मनसे थोड़ा बहुत देशकार्य्य करते रहते हैं। पहले प्रकारके नेता एक दृष्टिसे देखते हुए अवतारी होते हैं और उनके अवतारवाले कामके समाप्त होनेके उपरान्तका समय, उनके लिए भी और लोगोंके लिए भी, एक प्रकारसे बुरी ही तरहसे बीतता है। आयरिश इतिहासमें इस प्रकारके दो तीन स्पष्ट उदाहरण हैं। सन् १७८२ में जब ग्रटनके प्रयत्नसे आयरिश पार्लमेण्ट स्वतंत्र हुई, तब उसकी अवस्था लगभग तीस वर्षकी थी। लेकिन कुछ ऐसा विलक्षण संयोग हुआ कि एक ही समयमें देशमें राष्ट्रीय आंदोलन जोरों पर आया, प्रोटेस्टेण्ट लोगोंका धार्म्मिक वैर नष्ट हुआ और अमेरिकामें अँगरेज परास्त हुए। उस समय ग्रटन सरीखे चलते हुए राजनीतिज्ञ और वक्ताने पार्लमेण्टमें प्रवेश करते ही जो कुछ कहा वही होता गया और आयरिश लोगोंके पार्लमेण्टकी स्वतंत्रता माँगते ही ब्रिटिश पार्लमेण्टने वह स्वतंत्रता उन्हें दे दी। उस समय लोगोंने एक स्वरसे ग्रटनको 'राष्ट्रजनक' की पदवी दे दी; केवल इतना ही नहीं बल्कि पार्लमेण्टने तुरन्त एक लाख पाउण्ड अर्थात् उस समयके अनुसार दस लाख रुपयेकी रकम उसे इस लिए देना निश्चय किया कि जिसमें वह आगेसे बैरिस्टरी न करे और आरामसे बैठकर केवल देश-कार्य्यमें मन लगा सके। लेकिन ग्रटन इतनी बड़ी रकम नहीं लेता था, इस लिए उससे कहा गया कि कमसे कम पचास हजार पाउण्ड तो तुम अवश्य लो, जिससे लाचार होकर वह रकम उसने लेली। इसके उपरान्त वकालतका काम छोड़कर उसने सारा जीवन केवल लोकसेवाके काममें बिताया। लेकिन इस अवतारी कामके हो जानेके उपरान्त उसने अपने जीवनके जो प्रायः तीस वर्ष और बिताये, उनमें स्वयं उसका कोई दोष न होने पर भी उसके यशका ह्रास होने लगा

और अन्तमें वह यश प्रायः नष्ट हो गया। पर इस बीचमें वास्तवमें उसने बड़े ही महत्त्वके काम किये थे। सन् १७८२ में जब पार्लमेंट स्वतंत्र हो गई तब उसके उपरान्त अट्ठारह वर्षतक उसने उस पार्लमेंटके सुधारके लिए अविश्रांत परिश्रम किया। लेकिन अँगरेज जमींदार, रिश्वत देकर बहकाये हुए सभासद् और अँगरेजी मन्त्री आदि सभी इस सुधारके विरुद्ध थे; इस लिए उसे निराश होना पड़ा। सन् १७९८ में उल्फटोनका विद्रोह हुआ और शान्तिके लिए ग्रटनने जो उद्योग किया था वह व्यर्थ हुआ और सन् १८०१ में आयरिश पार्लमेंट तोड़कर ब्रिटिश पार्लमेंटमें मिला दी गई। सन् १७९८ के उपरान्त ग्रटन उद्विग्न होकर कुछ दिनोंके लिए विदेश चला गया था। उस समय उस पर राजद्रोहके षड्यंत्रमें सम्मिलित रहनेका मिथ्या सन्देह किया गया; जिसके कारण उसे बहुत कष्ट उठाना पड़ा। इसके उपरान्त जब शान्ति हो गई तब कई वर्षोंतक वह ब्रिटिश पार्लमेंटका सभासद् होकर काम करता रहा। उस समय अँगरेज राजनीतिज्ञ भी उसका आदर करते थे। पर सन् १७८२ के ग्रटन और अबके ग्रटनमें जमीन और आसमानका फरक था। वास्तवमें स्वयं प्रोटेस्टेण्ट होकर भी १७८२ के उपरान्त उसने अपना सारा समय रोमन कैथोलिक लोगोंको स्वतंत्रता दिलवानेके लिए अत्यंत परिश्रम करनेमें बिताया। यदि आयरिश लोगोंके मित्र और शत्रु दोनोंसे ही देशभक्तिके लिए किसीको समान धन्यवाद मिला तो वह ग्रटनको ही मिला था। इतना होनेपर भी आगे चलकर स्वयं आयरिश लोग ही उसका आदर न करने लगे। उसकी मृत्युके कुछ ही पहले जो चुनाव हुआ था उसमें दंगा हो-गया था, जिसमें उसे जख्मी होना पड़ा था और अन्तमें आयरिश स्वतंत्रताके सम्बन्धमें निराश होकर उसे मर ही जाना पड़ा। डेनिअल ओकानेलके समान लोकप्रिय नेता आयर्लैण्डमें आज तक और कोई हुआ ही नहीं। वह आयरिश लोगोंका अनभिषिक्त राजा ही था; और

इसमें भी कोई कमी न रहे, इस लिए एक इतिहासप्रसिद्ध स्थानकी बड़ी भारी सार्वजनिक सभामें उसके भक्तोंने उसके सिरपर राष्ट्रीय चिह्नका राजमुकुट भी प्रत्यक्ष रूपसे रख दिया था। लेकिन जैसा कि पहले कहा जा चुका है क्लानटार्फमें जो भारी सभा होनेवाली थी, उसे रोकनेके लिए सरकारने घोषणपत्र निकाला जिसे उसने मान लिया। इससे उसी समय उसकी सारे जन्मकी प्राप्त की हुई लोकप्रियता क्षणभरमें नष्ट हो गई और फिर उसके सब कुछ करने पर भी गया हुआ समय न लौटा। ओकानेलकी लोकप्रियता बहुतसे अंशोंमें सकारण थी। सौ बरसतक लात खाकर गिरे रहनेवाले कैथोलिक लोगोंमें पहला बैरिस्टर और पार्लमेण्टका पहला सभासद ओकानेल ही था। अपने कामोंमें उसने वकालतकी चतुरता, वक्तृत्व, धैर्य्य और परोपकार वृत्तिकी सहायता लेकर समाज पर विलक्षण प्रभाव डाला था। उस समय उसके सम्बन्धमें यह प्रसिद्ध हो गया था कि सरकारी अत्याचारसे पीड़ित अनाथोंका ओकानेल ही नाथ है और इसीलिए उसने जो काम उठाया उसका महत्त्व बढ़ा। सन् १८२९ में जब कैथोलिक लोगोंको स्वतंत्रता दिलानेका उसका भगीरथ प्रयत्न सफल हुआ तब उसकी कीर्त्ति चरम सीमा तक पहुँच गई। उसे इस बातका अहंकार हुआ कि अब मैं जो आन्दोलन आरम्भ करूँगा, वह अवश्य सफल होगा। इसलिए उसने आन्दोलन आरम्भ किया, जिसने बहुत कुछ रंग भी पकड़ा। लेकिन उसका अवतार वास्तवमें सन् १८२९ में ही समाप्त हो गया था; इस-लिए उसके उपरान्त उसने जो आन्दोलन किये उनमें सफलता नहीं हुई और अधिकारियोंने उसका मुँह बंद कर दिया। सन् १८४४ में उस पर मुकद्मा चला और उसे नौ महीनेका दण्ड हुआ। उस समय उसकी बातें माननेवाले और उसके सिर पर मुकुट रखनेवाले लाखों आदमियोंमेंसे एकने भी उसके लिए हथियार न उठाया। युवक लोग उसे नरम दलका बतलाने लगे। यद्यपि अपीलमें वह छूट गया तथापि

एक बार उसकी जो लोकप्रियता नष्ट हुई वह नष्ट ही हो गई । पार्नेल-की भी यही बात है । लैण्ड लीग और नेशनल लीगके सम्बन्धमें उसने जो प्रयत्न किये थे वे बड़े ही महत्त्वके थे । पार्लमेण्टमें उसने विरोधका जो मार्ग ग्रहण किया था उसमें उसे सफलता हुई और इसलिए उसे ऐसा यश मिला जैसा और किसी नेताको पार्लमेण्टमें नहीं मिला था। हाइड पार्कमें होनेवाले खूनके साथ उसका जो सम्बन्ध जोड़ा गया था और उसके लिए जो कमिशन नियुक्त हुआ था, उसके कारण उसका वह यश दूना हो गया और जिस दिन कमीशनने उसके अनुकूल फैसला किया उस दिन तो उसकी कीर्त्ति चरम सीमातक पहुँच गई । परन्तु शीघ्र ही एक स्त्रीके एक मामलेमें उसका यश जो एक बार नष्ट हुआ वह सदाके लिए नष्ट ही हो गया । ग्लैडस्टन तथा अन्य लिबरल राजनीतिज्ञोंने उसे छोड़ दिया । इतना ही नहीं बल्कि उसके पक्षके लोगोंने भी उसे नेतृत्वसे पदच्युत किया और दुःख तथा अपयश-में ही उसका अन्त हुआ । आज अनेक वर्षोंके उपरान्त केवल ऐतिहा-सिक दृष्टिसे विचार करनेवालोंको ग्रटन, ओकानेल और पार्नेलकी योग्यता निस्सन्देह उससे कहीं अधिक जान पड़ेगी, जितनी उसके आखिरी दिनोंमें स्वयं उसके देशभाइयोंको जान पड़ी थी । तथापि अनेक अवसरों पर सार्वजनिक काम करनेवाले नेताओंका चरित्र नदीके प्रवाहके समान होता है। आज उसका प्रवाह एक ओर है और दूसरी ओर साफ मैदान दिखाई देता है; और कल देखिए तो जहाँ मैदान था वहाँ जोरोंसे पानी बह रहा है और पानीवाली जगह पर साफ मैदान दिखाई देता है। ऐसी अवस्थामें वे ही लोग वास्तवमें धन्य हैं, जो अपने सिद्धान्त और अपने तत्त्व, अपने उद्दिष्ट और अपनी कार्य्यसिद्धि, सबका प्रवाह आरम्भसे अन्त तक चट्टान तोड़कर उसके बीचसे बहनेवाली नदीकी तरह स्वच्छ, निर्मल, एकमार्गी और अनिरुद्ध रख सकें। लेकिन इस-प्रकार धन्यवाद प्राप्त करनेवाले लोग वास्तवमें बहुत ही कम होते हैं ।

९ आयर्लैण्ड और हिन्दुस्तान ।



साम्य-दर्शन । यहाँ तक हमने आयर्लैण्डका प्राचीन और अर्वाचीन इतिहास बतलाया है । इससे पाठकोंके ध्यानमें यह बात आ गई होगी कि किन किन बातोंमें आयर्लैण्ड और हिन्दुस्तानमें विशेष समानता है । इसके लिए आयर्लैण्डके इतिहासको केवल स्थूल उपमानके रूपमें लेना चाहिए । सब तरफ़से और फुटकर बातोंमें भी समानता ढूँढ़ने बैठना ठीक उसी प्रकार अयुक्तिक होगा जिस प्रकार यह कहने पर कि—' यह स्त्री गजगामिनी है ' यह पूछना कि-' तब फिर उसका सूँड़ दिखलाओ । ' सृष्टिमें जितना साम्य है उतना ही वैषम्य भी है । करोड़ों आदमियोंमें जिस प्रकार ठीक एक ही आकृतिके दो आदमियोंका मिलना कठिन है इसी प्रकार ऐसे दो राष्ट्रोंका मिलना भी कठिन है, जिनके इतिहास ठीक एकसे हों । तथापि मनुष्यका स्वभाव सब स्थानोंमें एक ही होता है और पृथ्वीके भिन्न भिन्न भागोंमें भौतिक तत्त्व बहुधा समान लक्षणात्मक ही होते हैं । इस लिए मनुष्योंकी तरह राष्ट्रोंमें भी इतना साधर्म्य अवश्य मिल सकता है, जिससे वस्तुतः नहीं तो स्वरूपतः भ्रम अवश्य उत्पन्न हो जाय । साधर्म्य और वैधर्म्य ढूँढ़ निकालनेके लिए एक प्रकारकी मार्म्मिकताकी आवश्यकता होती है । यदि मनुष्य मार्म्मिक हो, तो भेद न भूलकर वह साधर्म्य देख सकता है । हिन्दुस्तान और आयर्लैण्डके साधर्म्य और वैधर्म्य देखनेका काम मार्मिकतापूर्वक और केवल सत्यके अन्वेषणकी दृष्टिसे करना चाहिए; नहीं तो आदमी चक्करमें पड़ जायगा । अस्तु, अब हम पहले साधर्म्यका विचार करते हैं ।

सभ्यताके अंगों और उपांगोंकी दृष्टिसे देखते हुए आयर्लैण्ड और हिन्दुस्तानमें बहुत कुछ समानता है । सेल्ट और ट्यूरन ये दोनों

प्रकारके लोग एक ही नाम ‘ यूरोपियनके अन्तर्गत अवश्य आ जाते हैं ’ तथापि स्वभाव और गुणकी दृष्टिसे उनमें बहुत अन्तर है। आयरिश लोग सेल्ट शाखामेंके हैं और अँगरेज लोग ट्यूरन शाखामेंके। आयरिश मानव-कुल भाषा, स्वभावगुण और चरित्रकी दृष्टिसे अँगरेज मानव-कुलकी अपेक्षा भारतवर्षके आर्य्य मानव-कुलके अधिक समीप है। आयरिश भाषा बहुत साफ और संस्कृतकी तरह मृदुव्यंजनपूर्ण है। इतना ही नहीं बल्कि तुलनात्मक भाषा-शास्त्रके विद्वानोंका मत है कि रूप और विकृति आदिकी दृष्टिसे आयरिश भाषा वस्तुतः संस्कृत भाषाके जितना समीप है उतना वह युरोपियन भाषाओंके भी समीप नहीं है। सभ्यताकी प्रगतिकी दृष्टिसे विचार करते हुए आयरिश लोगों और भारतवासियोंके गुण और दोष एक ही स्वरूपके हैं। संसारके इतिहासमें दो प्रकारके लोग दिखाई देते हैं। एक प्रकारके लोगोंमें सभ्यताका जन्म बहुत जल्दी होता है, लेकिन कुछ निश्चित सीमातक पहुँचनेके उपरान्त उसकी गतिका अन्त हो जाता है। दूसरे प्रकारके लोगोंमें सभ्यताका जन्म बहुत देरसे होता है; परन्तु जब एक बार उस सभ्यताका आरम्भ हो जाता है तब फिर उसमें बराबर उन्नति ही होती जाती है। कुछ लड़के बचपनमें बड़े तेज होते हैं और उनकी बुद्धि शीघ्र पक्क होती है; और कुछ लड़के बचपनमें बिलकुल बोदे होते हैं परन्तु उनकी बुद्धि बराबर बढ़ती जाती है। दोनों ही तरहके लड़कोंके सम्बन्धमें उनके बचपनके अनुभवसे जो तर्क या अनुमान किया जाता है वह उनके बड़े होने पर ठीक नहीं उतरता और उनके चरित्रक्रममें बहुत बड़ा और स्पष्ट अन्तर पड़ जाता है। हिन्दुस्तानकी तरह आयर्लैण्डमें भी सभ्यताका उदय बहुत प्राचीन कालमें हुआ था।

जिस समय इंग्लैंडके लोग शरीरमें रंग पोतकर और खाल ओढ़कर जंगलोंमें भटकते फिरते थे, उस समय हिन्दुस्तानके ऋषि गहन धर्म्म-

विचारमें निमग्न रहते थे और साथ ही ऐहिक प्रवृत्तिके लोग भी उत्तम प्रकारका सांसारिक सुख भोगते थे। आयलैंड पर जिससमय विदेशियोंके आक्रमण हुए उससमय सेल्टिक मानव-वंशके लोग बहुत सभ्य थे। नारमन लोगोंकी अपेक्षा आयरिश लोगोंकी भाषा अधिक प्रौढ़ और अर्थपूर्ण, कविता अधिक सरस और संगीत अधिक मधुर होता है। परन्तु राजकीय दृष्टिसे आत्म-संरक्षण और प्रगतिके लिए जिन गुणोंकी आवश्यकता होती है वे गुण आयरिश लोगोंमें उतने नहीं थे जितने होने चाहिए। हिन्दुस्तान पर जिस समय मुसलमानोंके आक्रमण हुए थे, उस समय हिन्दुओंके सामने सभ्यताकी दृष्टिसे देखते हुए विदेशी लोग वैसे ही दिखाई पड़नेके योग्य थे जैसे दादाके सामने पोते। लेकिन संसारके इतिहासमें राजकीय पराक्रम और सभ्यताका मेल सदा नहीं दिखाई देता। इन दोनोंकी प्रगतिके नियम अलग अलग हैं और इसीलिए पाँचवीं और छठी शताब्दीमें दक्षिण युरोपमें जो यह चमत्कार दिखलाई दिया कि जंगली लोगोंने सभ्य लोगोंको जीत लिया, ग्यारहवीं शताब्दीमें वही चमत्कार आयलैंण्ड और हिन्दुस्तानमें दिखलाई दिया।

राज्य प्राप्त करनेके मार्ग इतिहासमें प्रायः एक ही स्वरूपके हुआ करते हैं। जिस प्रकार स्त्री-विषयक लोभके कारण अँगरेजोंका प्रवेश आयलैंण्डमें हुआ उसी प्रकार स्त्री-कर्तृक लोभके कारण उनका प्रवेश हिन्दुस्तानके कमसे कम एक भागमें हुआ। परस्त्रीलम्पट मेकडरमांट और स्वस्त्रीलम्पट रघुनाथराव पेशवाकी समानता तुरन्त ही लोगोंको ज्ञात हो जाती है। इसी प्रकार प्रजाजनोंमें भेद रखकर अथवा बढ़ाकर राजसत्ता प्रबल करनेकी युक्ति इतिहासमें नई नहीं है। यदि यह देखा जाय कि आयलैंण्डमें प्रोटेस्टेण्ट कैथोलिक लोगोंका धर्म्म-वैर अँगरेजोंके लिए कितना उपयोगी हुआ और विजातीय जमींदारोंके वहाँ बसनेके समयसे स्वतंत्रताकी अभिलाषा करनेवाली

आयरिश प्रजाका किस प्रकार दमन हुआ, तो इस बातका पता तुरन्त लग जायगा कि भारतवर्षमें अँगरेजी सरकार हमारे मुसलमान भाइयोंको क्यों इतना सुहलाती और पुचकारती और आसाम प्रान्तमें बसे हुए अँगरेजोंकी मनमानी कार्रवाइयोंसे क्यों इस प्रकार आँख बचाती है। जब यह देखा जाता है कि आयलैंण्डके वीरोंने आपसमें ही लड़कर किस प्रकार परायोंका हित साधन किया, तो भारतवर्षमें भी 'आत्मैव रिपुरात्मनः' वाले दैवी वचनकी सत्यताका प्रमाण मिल जाता है। इसी प्रकार जब यह देखा जाता है कि आयरिश राजाओंके मनमें स्वतंत्रताकी इच्छा उत्पन्न होने पर भी भिन्न भिन्न अवसरों पर अपने अपने बल पर परन्तु केवल अपना ही हित करनेके लिए वे आपसमें किस प्रकार एक दूसरेसे लड़े और संसारको ईसापनीतिमेंकी 'किसान और उसके लड़के' वाली कहानीका किस प्रकार अच्छा उदाहरण दिखला दिया, तो पाठकोंको तुरन्त यह जान पड़ने लगेगा कि हम हिन्दुस्तानके पेशवाओं, सिन्धिया, होलकर, मोगलों, अमीरों और सिक्खोंके भिन्न भिन्न अवसरों पर किये और विफल हुए प्रयत्नोंका प्रतिविम्ब आयरिश इतिहासमें देख रहे हैं। सन् १६४१ वाले आयलैंण्डके विद्रोह और सन् १८५७ वाले भारतवर्षके विद्रोहमें बहुत बड़ी समानता है। दोनोंके ही मूलमें धर्म्मान्धता और जातिद्वेष था और पीछेसे उन्हें गुप्त राजकीय हेतुओंका सहारा था; पर यह भी पता लगता है कि वह सहारा यथेष्ट नहीं था। इन मोनों विद्रोहोंमें दोनों पक्षोंमें समान रूपसे निन्दनीय और अनुचित कृत्य किये गये और दोनोंमें ही विशिष्ट वर्गके देशी लोगोंने आवेशमें आकर अपनी बहादुरीका कमाल कर दिया। तथापि अन्तमें स्वयं अँगरेज अपने अमूल्य गुण सहिष्णुताके कारण और एक दूसरे वर्गके देशी लागोंकी सहायताके कारण इन विद्रोहोंको शान्त कर सके। स्वर्गीय श्रीयुत रमेशचन्द्र दत्तकी पुस्त-

कसे पाठकोंको यह बात मालूम होगी कि सत्रहवीं शताब्दीमें आयर्लैण्डमें व्यापारसंबंधी जो अन्यायपूर्ण नियम बने थे, हिंदुस्तानमें उनकी समानता ईस्ट इंडिया कम्पनीकी आरम्भिक अमलदारीमें बंगाल और मद्रास प्रान्तोंमें मिलेगी। परन्तु यह मानना ही पड़ेगा कि इस विशिष्ट विषयमें अधिक स्पष्ट समानता नहीं है। यदि यह मान लिया जाय कि आयर्लैण्डके प्रोटेस्टेंट जमींदारोंकी जगह भारतवर्षमें स्वयं अँगरेजी सरकार है तो उनके इतिहासके एक अंगकी समानता उस आंदोलनसे सिद्ध हो जायगी जो इन दोनों देशोंमें जमीनके संबंधमें हो रहे हैं। यद्यपि अभी हालमें आयर्लैंडवाले भारतवासियोंसे बहुत आगे बढ़ गये हैं, तथापि स्वराज्य अर्थात् बहुतसे अंशोंमें स्वतंत्र पार्लमेण्टके अधिकारकी उच्चाकांक्षाके संबंधमें भारतवासियों और आयरिश लोगोंमें पूरी पूरी समानता है। और इस आन्तिम साध्यको प्राप्त करनेके लिए लिबरल पक्षके आसरे पर प्रार्थना और डेप्युटेशन आदिकी सहायतासे विलायतका लोकमत अनुकूल करने और उसके बल पर पार्लमेण्टसे सुधार करा लेनेके साधनों और मार्गोंमें आयर्लैण्ड और हिन्दुस्थानमें पहले जो समानता थी, सौभाग्यवश भारतमें इधर दस बारह वर्षसे अच्छे ढंग पर होनेवाले राष्ट्रीय आंदोलन और दुर्भाग्यवश कुछ मूर्खोंके द्वारा होनेवाले अनुचित साहसपूर्ण कृत्योंसे उस समानताकी और भी अधिक पूर्ति हो जाती है।

इन दोनों देशोंका समीकरण करते हुए यह पता चलेगा कि अँगरेजी सत्ता अर्थात् सम्राट् जार्जके नियमित आधिकार, पार्लमेण्टके अनियमित अधिकार, स्टेट सेक्रेटरी और वाइसरायके प्रत्यक्ष शासन, प्रजाकी पूर्ण परतन्त्रता आदि बातोंमें ये दोनों देश एक समान ही नहीं हैं बल्कि प्रत्यक्ष एक ही हैं। दोनों ही देश अकल्पित रीतिसे एक ही साम्राज्यके अवयव हुए, दोनोंको ही अपनी वर्त्तमान

स्थितिके सम्बन्धमें सन्तोष नहीं हुआ और उनके मनमें स्वयं ही अपना कारबार चलानेकी इच्छा उत्पन्न हुई। दोनोंको ही इंग्लैण्डके राजाका अधिराज्य मान्य है और कानूनके द्वारा जो राजसत्ता स्थापित हुई है उसे नष्ट करनेकी उनकी इच्छा नहीं है। लेकिन जिस यंत्रके योगसे उस राजसत्ताका काम चलाया जाता है, साधारणतः दोनों ही राष्ट्रोंके लोगोंकी समान रूपसे यह इच्छा है कि उस यंत्रकी रचनामें कुछ परिवर्त्तन करके उसे अधिक लोकोपयोगी बनाया जाय और उसकी गति, दिशा आदि बातें निश्चित करनेमें प्रजासे अबकी अपेक्षा अधिक सहायता ली जाय। भारतवासी, आज कल जो यह कहते हैं कि हमें औपनिवेशिक स्वराज्य चाहिए उसके सम्बन्धमें कुछ लोग यह आक्षेप करते हैं कि साम्राज्यके भिन्न भिन्न भागोंकी परिस्थिति एक दूसरेसे भिन्न होती है, इसलिए औपनिवेशिक स्वराज्य माँगना पागलपन है। एक दृष्टिसे देखते हुए यह आक्षेप ठीक भी है। क्यों कि आयलैंण्ड और हिन्दुस्तान दोनोंको स्वराज्य तो अवश्य चाहिए, तथापि यह बात नहीं है कि किसी एक उपनिवेशके स्वराज्यका नमूना बिना किसी प्रकारका परिवर्त्तन किये ज्योंका त्यों इन दोनोंमेंसे किसीके लिए भी उपयोगी होगा। स्वयं आयलैंण्डने जो स्वराज्य माँगा है उसके रूप आदिमें गत सौ वर्षोंमें दो तीन बार परिवर्त्तन हुए। ग्रटन (१७८२) ओकानेल (१८४४) आयजिक बट (१८७३) और पार्नेल (१८८०–९०) के माँगे हुए स्वराज्योंमें भी एक दूसरेसे कुछ न कुछ अन्तर था। और तो और, स्वयं ग्लैडस्टन साहबने सन् १८८६ और १८९३ में जो दो होमरूल बिल पार्लमेण्टके सामने उपस्थित किये, उन दोनोंमें भी बहुत अन्तर था। हिन्दुस्तानके सम्बन्धमें विचार करते समय, यदि उसे स्वराज्य अर्थात् स्वतंत्र पार्लमेण्ट मिलनेका अवसर आ जाय तो शायद इन सबसे भिन्न एक अलग नमूना तैयार करना पड़ेगा। परन्तु ये सब स्वरूप सूक्ष्म

दृष्टिसे देखते हुए एक दूसरेसे चाहे कितने ही भिन्न क्यों न हों, तथापि उनका स्थूल स्वरूप एक ही होगा। और वह स्वरूप यह है कि इंग्लैंड और हिन्दुस्तान दोनोंको जोड़नेके लिए बादशाही सत्ताके 'सोनेकी सिकड़ी' के समान अबाधित रहते हुए कर लगाने, वसूल किये हुए करोंको खर्च करने, कायदेकानून बनाने और राजकार्य्यमें भूल करने पर अधिकारियोंको जवाब-देह बनाने आदि ऐसी बातोंका अधिकार हो। यही अधिकार दोनों देश माँग रहे हैं, जिनका सच्चे स्वराज्यमें समावेश होता है। आयर्लैण्डमें पहले एक ऐसी ही पार्लमेंट थी, जो सन् १८०१ में टूट गई। वही पार्लमेंट अथवा उसी तरहकी दूसरी पार्लमेण्ट आयरिश लोग चाहते हैं। हिन्दुस्तानके लिए पार्लमेंट बिलकुल नई चीज है। परन्तु वे उसे चाहते हैं। आयर्लैंडकी यह आकांक्षा यद्यपि पूरी नहीं हुई है, तथापि सन् १९१४ वाले होमरूल बिलके पास हो जानेसे उसके कुछ अंशोंकी पूर्ति अवश्य हो गई है; पर भारतवर्षकी आकांक्षा दिन पर दिन बलवती होती जा रही है और यहाँ इस बातका प्रयत्न किया जा रहा है कि होमरूल या स्वराज्यके आन्दोलनमें यथासाध्य शीघ्र सफलता प्राप्त हो; और वर्त्तमान युद्धकी समाप्ति पर इस आकांक्षाके पूर्ण रूपसे नहीं तो आंशिक रूपसे अवश्य पूर्ण होनेकी सम्भावना है। क्योंकि विलायतके अधिकारियों और प्रजाका ध्यान इस ओर आकृष्ट किया जा रहा है। और आयर्लैण्डको तो वर्त्तमान युद्धकी समाप्तिसे पहले ही सच्चे स्वराज्य-सुखका कुछ अंश 'कनवेन्शन' के सहमत होने पर भोगनेको मिल जायगा।

यदि राजकीय विषयको छोड़ दिया तो भी अनेक बातें ऐसी हैं, जिनमें आयर्लैण्ड तथा हिन्दुस्तानमें बहुत कुछ समानता दिखाई देती है। दोनों ही देशोंके लोगोंका गुजारा प्रायः खेती पर ही होता है और दोनों ही देशोंमें व्यापार और शिल्प आदि बहुत ही कम हैं। दोनों

ही देशोंके किसान बहुत दरिद्र हैं, उन्हें जल्दी जल्दी अकालकी पीड़ा होती है और उससे उन्हें बहुत कष्ट होता है। दोनों ही देशोंमें धर्म्मोपदेशकोंकी बहुत प्रबलता है। विधि, नियम, शब्द-प्रमाण और मूर्त्ति-पूजा आदिके कारण आयरिश लोगोंके कैथोलिक धर्म्म और सर्वसाधारण हिन्दू धर्म्ममें बहुत कुछ समानता दिखाई देती है और प्रत्यक्ष धर्म्म-व्यवहारमें हिन्दुस्तानके लोगोंकी तरह आयरिश लोग भी बहुत ही दृढ़निग्रही, श्रद्धालु, भावुक और दयालु हैं। दोनों देशोंके लोगोंके गुणों और दोषोंमें कुछ विशेष प्रकारका साधर्म्य दिखाई देता है। आयरिश लोग बुद्धिमान परन्तु चंचल, उत्साही परन्तु जल्दबाज, प्रेमी परन्तु सीधे और वक्ता परन्तु वक्तृत्वलुब्ध होते हैं। आयरिश लोगोंके मनकी दशा बहुतसे अंशोंमें बंगालियोंके मनकी दशाके समान है। उनके मन पर प्रत्येक बातका बहुत जल्दी प्रभाव होता है, परन्तु वह प्रभाव दृढ़ नहीं होता; और यदि हो भी तो अधिक समय तक नहीं ठहरता। लालित्यकी दृष्टिसे उनकी कविता और कला सुन्दर होती है, परन्तु उनमें गुरुता या विचारोंकी गहनता अधिक नहीं होती। उनकी कल्पना-शक्ति भारी होती है, पर उनके संकल्प गम्भीर और दृढ़ नहीं होते। इसी लिए वे कोई स्थायी काम नहीं कर सकते। आयरिश लोगोंके समान मिलनसार, विनोदी और आनन्द मंगल करनेवाले लोग दूसरे स्थानमें कम ही मिलेंगे। परन्तु उनके गुणोंके साथ वक्कीपन, अविचार, अदूरदर्शिता आदि अवगुण भी मिले हुए हैं; इसलिए उनके गुणोंका यथेष्ट फल नहीं होता। आयरिश जाति रणशूर है। अँगरेजी जल और स्थल-सेनामें आधेसे अधिक प्रसिद्ध योद्धा आयरिश लोग ही हैं। तथापि उनकी युद्ध-कुशलता और शूरतासे आज तक उनके देशकी अपेक्षा विदेशको ही अधिक लाभ पहुँचा है। इसके अतिरिक्त आयर्लैण्डमें जितने रणशूर देशभक्त हुए उतने ही घरके भेदी होकर लंका जलानेवाले और

शत्रुओंको समाचार देनेवाले लोग भी हुए। अतः उनके इतिहासमें बहुधा ऐसे ही विफल प्रयत्न दिखलाई देते हैं, जो अविचारपूर्वक किये गये थे और जिनकी खबर पहले ही शत्रुओंको लग गई थी; और ऐसे काम कम दिखलाई देते हैं, जो मिल-जुल कर और दृढ विचारसे किये गये हों।

विरोध-दर्शन। आयलैंण्ड और हिन्दुस्तानके साधर्म्यकी तरह वैधर्म्यकी बातें भी महत्त्वपूर्ण और ध्यानमें रखने योग्य हैं। उनमेंसे पहली बात तो यह है कि हिन्दुस्तानमें अँगरेजोंने धर्म्मके सम्बन्धमें कभी कोई बाधा नहीं की, फ्रान्समें कैथोलिक राजाओंने प्रोटेस्टेण्ट लोगोंके साथ अथवा आयलैंण्डमें प्रोटेस्टेण्ट राजाओंने कैथोलिक लोगोंके साथ धार्मिक बातोंमें जो अत्याचार किये उन्हें देखते हुए हम लोगोंको इस बातके लिए प्रसन्न होना चाहिए कि भारतवासियोंके विजातीय लोगोंके अधिकारमें चले जाने पर भी उनके द्वारा आयलैं-ण्डकी तरह यहाँ अत्याचार नहीं हुए। यदि बुरी बातोंके लिए हम अंगरेजी राजकर्म्मचारियोंकी निन्दा करें तो हमें उन अच्छी बातोंके लिए जो उनके द्वारा हुई हैं अथवा उन बुरी बातोंके लिए जो उनके द्वारा नहीं हुई हैं उनकी प्रशंसा करना भी आवश्यक है। नहीं तो हमारी निन्दा या विरोधका कोई मूल्य ही नहीं होगा। बिलकुल एकांगी और एकपक्षी निन्दा अथवा स्तुतिका मूल्य बराबर ही होता है। मुसलमान राजा इसी देशमें रहते थे, यहाँकी सम्पत्ति यहीं रखते थे और हिन्दुओंको राज्यमें बड़ी बड़ी नौकरियाँ देते थे। पर उन पर धार्म्मिक अत्याचारका लांछन लगा था। लेकिन जिस प्रकार यह बात बहुत ही ठीक है कि अँगरेजी सरकार सम्पत्ति विदेश ले जाती है और शासन तथा सेनाविभागोंमें हिन्दुस्तानियोंके साथ सौतके लड़-कोंका सा व्यवहार करती है, उसी प्रकार यह बात भी बिलकुल निर्वि-

याद है कि धार्म्मिक विषयोंमें उसने साहिष्णुता और समानता रक्खी है। इस लिए धर्म्मके कारण आयर्लैण्डमें जैसी हत्यायें हुई वैसी भारतवर्षमें कभी नहीं हुई। इस बातमें अँगरेजोंके साथ आयरिश लोगोंके द्वेषका जो एक मुख्य कारण था इस देशमें उस कारणकी सृष्टि नहीं हुई। यह बात ठीक है कि एंग्लोइंडियन लोग भारतवासियोंके साथ उन्मत्ततापूर्वक व्यवहार करते और उनका अपमान करते हैं, तथापि यदि भारतवासी तुरन्त उसका थोड़ा बहुत प्रतिकार करना चाहें तो कर सकते हैं। यह बात भी माननी पड़ेगी कि हिन्दुस्तानमें क्रिमिनल प्रो० कोड, हथियारोंके कानून, जेलखानोंके नियम आदिको छोड़कर कानूनका और कोई आधार ऐसा नहीं है, जिससे यह दिखलाया जा सके कि इस देशमें अँगरेजों और देशियोंमें भेदभाव है। कानूनके बरतावमें यह फरक दिखाई देता है और शासन-विभागमें बड़े और छोटे पदोंके सम्बन्धमें स्पष्ट पक्षपात भी दिखाई देता है। तथापि यह कहना ही पड़ता है कि आयर्लैण्डमें पीनल कोडके कारण कैथोलिक लोगोंकी जो दशा हुई थी उससे हमारी दशा अच्छी ही है। हिन्दुस्तानमें धार्म्मिक अत्याचार न होनेका कारण स्पष्ट है। मुख्य कारण यह है कि हिन्दुस्तानमें अँगरेजी साम्राज्य उस समय स्थापित हुआ था जब कि धर्म्मान्धता और धार्म्मिक अत्याचारका भूत लोगोंके सिरसे उतर गया था। यह गुण समयका है, व्यक्तिका नहीं है। इसके अतिरिक्त एक साधारण नियम यह भी है कि एक ही धर्म्मके दो पन्थोंमें जितना बैर होता है, उतना बैर ऐसे दो धर्म्मोंमें नहीं होता, जो मूलतः भिन्न हों। दूसरी बात यह है कि आयर्लैण्डमें जाकर जिस प्रकार प्रोटेस्टेण्ट अँगरेज स्थायी रूपसे बस गये थे और कैथोलिक लोगोंके पड़ोसी बन गये थे उस प्रकार हिन्दुस्तानमें नहीं बसे हैं। यहाँ अँगरेज लोग पहले व्यापारी बनकर आये। उन्हें यहाँ घरबार बनाकर नहीं रहना था और व्यापारके लिए जितने

सद्व्यवहारकी आवश्यकता होती है जमीनका लगान वसूल करनेमें उतने सद्व्यवहारकी आवश्यकता नहीं होती । इसके आतिरिक्त हिन्दू लोग कैथोलिक लोगोंके समान निग्रही और धर्म्मनिष्ठ होने पर भी सहिष्णुतामें उनसे बढ़कर हैं। इन्हीं सब कारणोंसे हिन्दुस्तानमें अँगरेजोंके द्वारा धार्म्मिक पीड़न नहीं हुआ ।

यदि इस बातका ध्यान रक्खा जाय कि जमीनके सम्बन्धमें आयर्लैंडके प्रोटेस्टेण्टोंकी जगह पर हिन्दुस्तानमें स्वयं अँगरेज सरकार है, तो इसमें सन्देह नहीं कि इस समय हमें आयर्लैण्ड और हिन्दुस्तानकी स्थितिमें वैधर्म्य-की अपेक्षा साधर्म्य ही अधिक दिखाई देगा । तथापि एक बातका ध्यान रखना आवश्यक है । वह यह कि सैकड़ों बरसोंतक आन्दोलन करने पर आयरिश प्रजा आज जिस सुधरी हुई स्थितिमें है हिन्दुस्तानकी भी आज वही स्थिति है और अँगरेजी अमलदारीमें ही पहले इसकी अपेक्षा और अच्छी स्थिति थी । आयर्लैण्डमें यह बात बहुत हालमें निश्चित हुई है कि जमीन पर प्रजाका स्वामित्व हो । पर हिंदुस्तानमें यह तत्त्व बहुत पुराने जमानेसे माना जाता है । हाँ, इधर बम्बई प्रान्तके सर्वे एक्टने और विशेषतः सन् १९०१ के लैंड रेविन्यू बिलने इस तत्त्व पर थोड़ा बहुत आक्रमण किया है । आयर्लैण्डके जमींदार अँगरेज थे; उनके लगान माँगनेकी कुछ सीमा होनी चाहिए थी; और यदि वे अधिक लगान माँगते तो लगान निश्चित करना सरकारका काम था । लेकिन इस सीधी सादी बातके लिए भी कानून बनवानेमें आयरिश लोगोंको सैकड़ों वर्षोंतक आन्दोलन करना पड़ा था और किसी किसी अवसर पर रक्तपात तक करना पड़ा था । लेकिन भारतवर्षमें केवल प्रजाकी दृष्टिसे देखते हुए जमींदारोंके विरुद्ध उनके साथ जो न्याय होना चा-हिए था वह पहले ही और बिना किसी प्रकारके कष्टके हो गया । बंगाल तथा मध्यप्रदेशमें 'टेनेन्सी लॉज' नामके कानूनोंका व्यवहार होता

है; उसके अनुसार यह काम न्यायालयके सुपुर्द किया गया है कि प्रजाकी सामर्थ्य देखते हुए वह यह निश्चित करे कि जमींदारको उन्हें कितना लगान देना चाहिए। इस कानूनका व्यवहार भी अच्छी तरह होता है। इसी प्रकार बम्बई प्रान्तमें साहूकारोंके विरुद्ध कानून बने आज लगभग चालीस वर्ष हो गये। सन् १८८१ में ग्लैडस्टन साहबके प्रयत्नसे आयर्लैण्डमें जमीनके सम्बन्धमें जो सबसे अधिक समाधानकारक नियम बना, उसके दो वर्ष पहले ही महाराष्ट्र प्रजाके बचावका कानून बन चुका था। सन् १८८१ वाले कानूनके बनने तक आयर्लैण्डमें प्रायः डेढ़ सौ वर्षों तक जो मारकाट और रक्तपात हुआ, उसे देखते हुए इस बातका सन्देह होता है कि सन् १८७६ के अकालमें और उसके उपरान्त महाराष्ट्र खेतिहरोंने जो रक्तपात किया था वह मनके मुकाबलेमें रत्ती भर भी है या नहीं। अब यह प्रश्न दूसरा है कि इन कानूनोंसे साहूकारों और जमींदारोंकी हानि होती है या नहीं और यदि होती है तो कितनी होती है। उसी प्रकार यह प्रश्न भी अलग है कि साहूकारों और जमींदारोंके साथ सरकार जिन नियमोंका पालन करती है उन्हीं नियमोंका पालन वह अपने साथ करती है या नहीं, अथवा वह स्वयं अपनी प्रजासे जो लगान माँगती है वह ठीक है या नहीं; और इसे ठीक करनेके लिए सरकार और प्रजाके बीचमें किसी तीसरे आदमीकी आवश्यकता है या नहीं। लेकिन आयरिश प्रजा और भारतीय प्रजाकी स्थिति देखते हुए यह वैधर्म्यकी बात ध्यानमें रखने योग्य है कि आज एक अनायास ही जिस स्थितिमें है और जो इस समय उसे पहलेसे भी बिगड़ी हुई मालूम होती है उस स्थिति तक पहुँचनेके लिए दूसरेको सैकड़ों वर्षों तक आन्दोलन करना पड़ा था। और यदि सरकारका यही सिद्धान्त बना रहा तो यह भी सम्भव है कि कुछ वर्षोंमें यहाँ भी उन्हीं कारणोंकी सृष्टि हो जाय, जिनसे बहुत

दिन पहले आयलैंण्डकी प्रजामें असन्तोष फैला था। तथापि इस समय आयरिश तथा भारतीय प्रजाकी स्थितिमें अन्तर है और यहाँ पर यही बतलाना हमारा मुख्य उद्देश्य है कि, यह अन्तर किसी समय भारतीय प्रजाके लिए हितकारक था। इस सम्बन्धमें आयलैंण्डके इतिहाससे जो शिक्षा ली जा सकती हो वह गत कालकी अपेक्षा भविष्य-कालके लिए ही अधिक लाभदायक हो सकती है। देशी प्रजाकी जमीन-के विधर्म्मी और विजातीय जमींदारों अथवा साहूकारोंके हाथोंमें चले जानेसे अत्यन्त हानि होती है । पर आसाम आदि प्रान्तोंको छोड़कर भारतके अन्य आन्तोंमें सौभाग्यवश अभीतक यह दशा नहीं हुई है आयरिश इतिहासको देखते हुए केवल यह बात ध्यानमें रखने योग्य है कि सरकार भविष्यमें यहाँ वह दशा न करे ! हमारी अपेक्षा अँगरेजी सरकार आयरिश इतिहास अधिक जानती है। क्योंकि हम लोग तो उसके सम्बन्धकी केवल पुस्तकें ही पढ़ते हैं, पर उसके हाथों तो वह दशा हुई ही है; इस लिए सरकारको यह बात अधिक दक्षतापूर्वक ध्यानमें रखनी चाहिए।

शिक्षामें हम लोग आयरिश लोगोंसे बहुत पिछड़े हुए हैं। लेकिन इस बातका ध्यान रखते हुए--कि आयलैंण्डका इतिहास चार सौ वर्षोंका है और हमारा इतिहास केवल सौ सवा सौ वर्षोंका है--यही कहना उचित होगा कि हम लोग अच्छी स्थितिमें हैं। धर्म्म और शिक्षाका बहुत ही निकट संबंध होता है। इस सम्बन्धके कारण आयलैंण्डमें अँगरेजी सरकारद्वारा विशेष सहायता नहीं हुई। आयरिश लोग भी विना धर्म्मकी शिक्षा नहीं चाहते थे, इस लिए शिक्षाका सब भार आयरिश लोगोंने पहलेसे ही आप सँभाला है। आयलैंण्डमें जब तक पीनल कोड जारी था, तब तक इस भारको सँभालनेमें उन्हें बहुत अड़-चन पड़ती थी; क्योंकि उस समय अपने धर्म्मके आधार पर शिक्षा देना

अपराध माना जाता था। परन्तु सन् १८२९ से ये सब कानून रद्द हो गये। भारतवर्षमें भी धार्मिक शिक्षामें सरकारसे प्रत्यक्ष सहायता नहीं मिलती। धर्म्मके विषयमें सरकार न तो प्रतिकूल हुई और न अनुकूल। पहलेसे उसने केवल ऐहिक प्रवृत्तिको लेकर ही शिक्षा देना आरम्भ किया। उसका यह सिद्धान्त लोगोंको भी मान्य हुआ। अपने तौर पर धार्म्मिक शिक्षा देनेका हम लोगोंका अधिकार है, इस लिए आयर्लैण्डकी तरह भारतवर्षमें शिक्षाका प्रश्न धर्म्मके विचारसे कभी वादग्रस्त नहीं हुआ और आगे भी उसके वादग्रस्त होनेकी सम्भावना नहीं है। हिन्दुस्तानमें यदि शिक्षाके सम्बन्धमें कोई झगड़ा है तो वह केवल राष्ट्रीय शिक्षाके सम्बन्धमें है। इस लिए इस झगड़ेको शिक्षाकी अपेक्षा राष्ट्रीय दृष्टिसे अधिक महत्त्व प्राप्त हुआ है। कुछ दिनों पहले जिस प्रकार आयर्लैण्डमें रोमन कैथोलिक शिक्षणसंस्थाओंका अथवा फ्रान्समें धर्म्मशिक्षणसंस्थाओंका दमन हुआ था, उसी प्रकार इस समय भारतमें राष्ट्रीय शिक्षा देनेवाली संस्थाओंका दमन आरम्भ हुआ है और इस बातका भय होता है कि संशयग्रस्त सरकारके द्वारा यह दमन दिन पर दिन बढ़ता ही जायगा। भारतवासियोंको जिस प्रकार राष्ट्रीय शिक्षाकी आवश्यकता है, उसी प्रकार आयरिश लोग धार्म्मिक शिक्षा चाहते हैं। सम्भव है कि लोगोंने आयरिश धार्म्मिक शिक्षाके लिए जो कष्ट पहले सहे हैं वे राष्ट्रीय शिक्षाके लिए हमें अब सहने पड़ें; पर आयरिश लोग धार्मिक शिक्षाके लिए जो युनिवर्सिटी चाहते थे सम्भव है कि वह उन्हें अब शीघ्र मिल जाय।

धर्म्मके विषयमें आयरिश लोगोंकी एक और शिकायत थी, जो सन् १८६७ में ग्लैडस्टन साहबकी कृपासे दूर हो गई। आयर्लैण्डकी ७५–८० प्रति सैकड़े प्रजाका धर्म्म रोमन कैथोलिक था और हर साल उस प्रजाके खजानेके लाखों रुपये खर्च करके अँगरेज सरकार प्रोटे-

स्टेण्ट धर्म्ममण्डलका पालन करती थी। अर्थात् यह केवल अन्याय था। लेकिन एक और बात ऐसी थी जो आयरिश लोगोंको अधिक चिढ़ाने और दुःखी करनेवाली थी। वह यह कि रोमन कैथोलिक खेतिहरोंको अपने खेतकी उपजका दसवाँ भाग प्रोटेस्टेण्ट भिक्षुकों और धर्म्मोपदेशकोंके निर्वाहके लिए देना पड़ता था। जब खेतमें फसल खड़ी रहती थी तब भिक्षुकोंको यह कहनेका अधिकार होता था कि इसमें-का दसवाँ भाग हमारा अंश है। इस अंशको वसूल करनेवाले ठीकेदार दलाल बड़ा अत्याचार करते थे। यदि सरकार यहाँ यह कानून बना दे कि पं० दीनानाथ अग्निहोत्रीके अग्निहोत्रका खर्च चलानेके लिए इलताफ हुसेन अपनी आमदनीका दसवाँ भाग दिया करे और उस भाग-को वसूल करनेका अधिकार कल्लू अहीरको दे दिया जाय, अथवा यह कानून बना दे कि काजी साहब आरामसे मसजिदमें बैठकर कुरानकी तलावत किया करें और उनके खानेके लिए शहरभरके ब्राह्मणोंके यहाँसे नित्य हविष्यान्न जाया करे, तो कितने अन्यायकी बात होगी! कैथोलिक खेतिहरोंकी फसलका दसवाँ भाग प्रोटेस्टेण्ट धर्म्मोपदेशकोंको दिलवाना भी उतना ही अन्याययुक्त और चिढ़ानेवाला था। यह नामुनासिब कार्रवाई आयर्लैण्डमें सौ वर्षसे भी अधिक तक जारी रही। सन् १८३७ के लगभग यह कार्रवाई बन्द हुई और सन् १८६७ में सरकारी धनसे प्रोटेस्टेण्ट धर्म्ममण्डलका पाला जाना भी बन्द हुआ। मगर हम लोगोंमें कभी ऐसी शिकायत नहीं हुई। इसमें सन्देह नहीं कि हिन्दुस्तानके खजानेसे ईसाई धर्म्ममण्डलका थोड़ा बहुत खर्च चलाया जाता है; लेकिन और खर्चोंको देखते हुए यह खर्च बहुत थोड़ा है, इसलिए भारतीय प्रजाको वह दिखाई नहीं देता। इसके अतिरिक्त ईसाई धर्म्ममण्डलकी तरह हिन्दुओंके मन्दिर और मुसलमानोंकी मसजिदें आदि भी सरकार चलाती है, इसलिए उस खर्चका हम लोगोंको

विशेष दुःख नहीं होता। इस प्रकार राजकर्म्मचारियों और प्रजाके नित्य अथवा अनित्य सम्बन्धमें कोई ऐसी धार्म्मिक बात नहीं है जो हम लोगोंको अधिक खटकती हो। वैधर्म्यका यह विषय बहुत ही महत्त्वपूर्ण है।

हाँ राजकीय दृष्टिसे विचार करते हुए इन दोनों देशोंका वैधर्म्य हमारे लिए बहुत ही शोचनीय हो सकता है। आयरिश लोग और अँगरेज यद्यपि अपना अपना राष्ट्र अलग अलग मानते हैं, तथापि आयरिश लोग हिन्दुस्तानवालोंकी अपेक्षा अँगरेजोंके अधिक निकट-वर्त्ती हैं। चाहे इंग्लैंडके अधिकांश लोगोंका धर्म्म प्रोटेस्टेंट और आयर्लैण्डके अधिकांश लोगोंका धर्म्म कैथोलिक हो, तो भी वे दोनों ही राष्ट्र ईसाई हैं। इतना ही नहीं वल्कि हिन्दुस्तानके प्रोटेस्टेंट ईसाईयोंकी अपेक्षा आयर्लैण्डके कैथोलिक लोग अँगरेजोंको अधिक निकटके जान पड़ते हैं। यह बात नहीं है कि इंग्लैंडमें रोमन कैथोलिक लोग बिल-कुल ही न हों। लार्ड रिपन और ड्यूक आफ नारफोक सरीखे लोगोंका धर्म्म रोमन कैथोलिक ही है। कुछ दिन पहले लन्दनमें रोमन कैथो-लिक लोगोंका जो बहुत बड़ा सम्मेलन हुआ था, उसका जुलूस निका-लनेके सम्बन्धमें उस समय प्रोटेस्टेंट और कैथोलिक लोगोंमें यद्यपि कुछ झगड़ा हो गया था तथापि इसमें सन्देह नहीं कि उस मामलेमें अँगरेज प्रोटेस्टेंट लोगोंने बहुत सहिष्णुता दिखलाई थी। आयरिश रोमन कैथो-लिक और भारतीय प्रोटेस्टेंटोंमें अँगरेजोंकी दृष्टिसे आकाश-पातालका अन्तर है। और युरोपियन तथा एशियाटिकका सूक्ष्म भेद निकाल कर दक्षिण अफ्रिका और कनाडामें जिस कारणसे एशियाटिक लोगोंका अपमान होता है और वे उन देशोंमें घुसने नहीं पाते हैं, वही कारण आयरिश तथा भारतीय ईसाईयोंमें पंक्ति-भेद कराता है। दूसरी बात यह है कि अँगरेजों और आयरिश लोगोंमें रोटी-व्यवहार

तो बराबर होता ही है; परन्तु यदि बेटी-व्यवहारका भी अवसर आवे तो धर्म्म बदल कर वह व्यवहार करनेमें अधिक देर नहीं लगती। क्योंकि उनमें जाति-भेद तो है ही नहीं, केवल धार्म्मिक पन्थका भेद है। और वह भी विशेषत: आज कल जैसे साहिष्णुताके दिनोंमें उतना नही खटक सकता। साहिष्णुतासे बैर-भाव घटता और गुणग्राहकता बढ़ती है, और अवसर पड़ने पर सहजमें ही धर्म्म बदला भी जा सकता है। इस समय आयर्लैण्डमें ऐसे घराने भी दिखाई देते हैं जिनकी एक शाखा कैथोलिक है तो दूसरी शाखा प्रोटेस्टेण्ट। प्रोटेस्टेण्ट पन्थको देखते हुए कैथोलिक लोगोंका धर्म्म चाहे कैसा ही हो, तथापि उसमें उपपन्थ नहीं है, और आयर्लैण्डके प्रति सैकड़ा पचहत्तर आदमी अपने धर्म्मगुरुके सूत्रसे एकमें ही बँधे हुए हैं। पर भारतवर्षकी दशा इससे बिलकुल उलटी है। यहाँ एक ही हिन्दू धर्म्ममें सैकड़ों जातियाँ और सैकड़ों पन्थ हैं। मुसलमान ईसाई आदि जो दूसरे धर्म्म हैं वे अलग। यह बात ठीक है कि इतने भेद-भावोंके होते हुए भी भारतवर्षमें राष्ट्रीयताकी कल्पना उठ रही है और चाहे इस समय उसका प्रसार कितनी ही अधिकता और शीघ्रतासे क्यों न हो रहा हो तथापि यही माना जायगा कि यहाँ उसका उदय अभी हालमें ही हुआ है। जिस दिन यह कल्पना खूब बढ़ती हुई मध्य आकाशमें पहुँच कर सारे राष्ट्र पर समान रूपसे उज्ज्वल प्रकाश डालेगी वही दिन हमारे लिए सुदिन होगा। तो भी भारतमें इस समय जागृतिके जो लक्षण दिखलाई पड़ रहे हैं वे बहुत ही शुभ और सन्तोषजनक हैं और दिनपर दिन उन लक्षणोंकी वृद्धि ही होती जाती है। आजसे सालभर पहले तक जिसे लोग राष्ट्रीय सभा या नैशनल कांग्रेस कहते थे वह केवल हिन्दुओंकी ही सभा समझी जाती थी। पर सौभाग्यवश गतवर्ष नैशनल कांग्रेस और मुस्लिम लीगने एकत्र होकर निश्चित कर लिया कि हम दोनोंका एक मात्र उद्देश्य स्वराज्य प्राप्त करना है। और तबसे नैशनल कांग्रेस पर

जो एक जातीय होनेका आक्षेप होता था उसका कारण दूर हो गया और स्वराज्यकी माँग राष्ट्रीय माँग समझी जाने लगी। स्वराज्य प्राप्तिके हमारे प्रयत्नमें मुसलमानोंके भी सम्मिलित हो जानेसे हमारा बल भी बढ़ गया और हमारी माँगका महत्त्व भी; और इस प्रकार पहले जो हमारा ध्येय हमसे बहुत दूर था यह अब अधिक समीप आ गया। अधिकारी लोग पहले हमारी जिन बातोंको उपेक्षाकी दृष्टिसे देखते थे हमारी वे ही बातें अब उन्हें सोचमें डालने लगी हैं। परस्परकी अन्यान्य अनेक बातोंमें हिन्दुओं और मुसलमानोंमें जो मत-भेद या विरोध होता था वह भी कांग्रेस और मुस्लिम लीगके सम्मिलनसे बहुत कुछ कम हो जायगा। इधर कौन्सिलों और म्युनिसिपालटियोंके चुनावके सम्बन्धमें मुसलमानोंको 'राजनीतिक महत्त्व' Political Imfortance देनेके लिएं सरकारने उन्हें कुछ विशिष्ट अधिकार देकर हिंदुओंको बहुत क्षुब्ध कर दिया था, जिससे देशमें बहुत कुछ असन्तोष फैल चला था। पर परमेश्वरने हिंदुओं और मुसलमानोंको समय पर ही सँभालकर सुबुद्धि दी और दोनोंने मिलकर कौंसिलोंके चुनावके संबंधमें आपसमें ही समझौता कर लिया। आज हम भारतकी राष्ट्रीय कल्पनाको जिस उन्नत अवस्थामें देखते हैं, उसका बहुत कुछ कारण उक्त क्षोभ और असंतोषका दूर हो जाना तथा दोनों जातियोंका एक हो जाना ही है।

भारतीय 'स्वराज्य' की माँगके सम्बन्धमें इस स्थान पर एक बात और भी बतला देना बहुत ही आवश्यक है। इधर कई वर्षोंमें और विशेषतः वर्त्तमान युरोपीय युद्धके आरम्भ होनेके उपरान्तसे जिस मानसे आयर्लैण्डने राजनीतिक क्षेत्रमें उन्नति की है यदि उतने ही मानसे नहीं तो भी उससे कुछ ही कम मानसे भारतने भी पैर आगे बढ़ाये हैं। पर आयर्लैण्ड और भारतके इस अग्रसर होनेमें कुछ अन्तर है। युद्ध आरम्भ

होनेसे पहले ही आयरिश होमरूल बिल पास हो चुका था। परन्तु कुछ तो अलस्टरके यूनियनिस्ट लोगोंके विरोध करने और कुछ लड़ाई छिड़ जानेके कारण उसके अनुसार कार्य्य नहीं हो सका था। पर तो भी आयरिश लोगोंको यह आशा अवश्य हो गई थी कि युद्धकी समाप्ति पर हमें 'स्वराज्य' अवश्य मिल जायगा। परन्तु आयर्लैण्ड पर ईश्वरकी कृपा थी; वह उन्हें उनकी आशाके समयसे पहले ही उनके परिश्रमका थोड़ा बहुत सुस्वादु फल उन्हें देना चाहता था। अतः जब रूसमें राज्य-क्रान्ति हो जाने पर अमेरिका भी मित्र दलकी ओरसे महायुद्धमें सम्मिलित हुआ तब उसने आयर्लैण्डका पक्ष लेकर अँगरेजों पर उसे स्वराज्य देनेके लिए दबाव डाला और अँगरेजोंने भी अनेक कारणोंसे अमेरिकाकी बात मानकर आयर्लैण्डमें 'कनवेन्शन' करना निश्चित किया। इसमें सन्देह नहीं कि 'कनवेन्शन' होनेके उपरान्त आयरिश लोग सच्ची स्वतंत्रताका बहुत कुछ सुख-भोग करने लगेंगे।

यह तो हुई आयर्लैण्डके अग्रसर होनेकी बात। अब इधरकी भारतीय उन्नति और जाग्रतिको लीजिए। आजसे दस पन्द्रह बरस ही पहले हिन्दुस्तानमें एक वह जमाना था जब कि यहाँ 'स्वराज्य' या 'होमरूल' का नामतक लेना राजनीतिक अपराध समझा जाता था। यद्यपि कुछ भारतीय नेता अवश्य इतने साहसी थे, कि समय समय पर किसी न किसी रूपमें वे स्वराज्यकी चर्चा करते थे तथापि साधारण नेताओंकी मण्डली और जनता उसे 'हौवा' ही समझती थी। उसका नाम तक लेना पाप समझती थी। सन् १९०६ में कलकत्तेमें जातीय महा-सभाका जो अधिवेशन हुआ था उसमें सभापति स्वर्गीय ऋषि दादाभाई नौरोजीने स्पष्ट रूपसे कह दिया कि हमारा अन्तिम ध्येय 'स्वराज्य' ही है और हमारे सारे प्रयत्न उसीकी प्राप्तिके लिए होने चाहिएँ। उसी दिन मानों उस स्वर्गीय महात्माने भारतवासियोंके हृदय-क्षेत्रमें स्वराज्य और

स्वतंत्रताकी कल्पनाका स्पष्टरूपसे बीज बोया था। उससे पहलेके नेताओंने इस सम्बन्धमें जो काम किया था वह जमीन तैयार करने और बोनेके योग्य बनानेके समान था। इतने विशाल वृक्षका बीज चटपट तो अंकुरित हो ही नहीं सकता था, इसलिए आरम्भमें कुछ समय तक स्वराज्यकी कल्पना बढ़ी नहीं, बीज जमीनमें पड़ा रहा। सन् १९०७ में जब बंग-भंगके कारण बंगालियोंका आन्दोलन बहुत बढ़ा और कुछ मूर्ख बंगालीयुवकोंने कुछ राजनीतिक अपराध किये तब भारत सरकारने दमननीतिका अवलम्बन किया। उसकी तत्कालीन नीतिसे प्रजा कुछ भयभीत हो गई थी जिसके कारण लोगोंमें स्वराज्यकी कल्पना कुछ भी न बढ़ सकी। पर आगे चलकर प्रजा और शासक दोनों कुछ शान्त हुए और तब लोगोंको दम लेनेका अवसर मिला। उसी समय सूरतकी कांग्रेसमें स्वराज्यसम्बन्धी प्रश्नके कारण ही नेताओंमें झगड़ा हो गया और दो दल बन गये। इन्हीं सब कारणोंसे स्वराज्यका प्रश्न पीछे पड़ा रह गया। यह दशा कई वर्षों तक रही। पर राष्ट्रीयता और स्वराज्यकी कल्पना एक बार उठनेके उपरान्त कभी नष्ट होना जानती ही नहीं। समय समय पर अनेक नेता लोकमत जाग्रत करते रहे और अन्तमें उस जागृतिमें श्रीमती एनी बेसेण्ट तथा लोकमान्य तिलकने सन् १९१६ में होमरूल-लीगोंकी स्थापना करके इस काममें बहुत भारी सहायता की और स्वराज्य-सम्बन्धी आन्दोलनको एक अच्छे ढँग पर लगा दिया। होमरूल लीगकी स्थापना करनेके उपरान्त श्रीयुत लो० तिलकने बेलगाँव तथा अहमदनगरमें सन् १९१६ के अन्तमें जो व्याख्यान दिये थे उनके कारण सरकारने उन पर मुकद्दमा चलाकर उनसे बीस हजार रुपयेकी जमानत माँगी थी। परन्तु हाईकोर्टने उन्हें निर्दोष समझ कर छोड़ दिया और जमा-नतकी आज्ञा रद्द कर दी। कहा जाता है कि ईश्वर जो कुछ करता है

वह अच्छा ही करता है। तदनुसार लो० तिलक पर मुकदमा चलने और पीछेसे उनके छूट जानेसे राष्ट्रीयताकी कल्पना और स्वराज्यकी माँगमें बहुत जोर आगया और सर्वसाधारणमें स्वराज्यकी चर्चा बढ़ने लगी। पीछे सन् १९१८ के मध्यमें जब स्वराज्यसंबंधी आन्दोलन करनेके कारण मदरास सरकारने श्रीमती एनी बेसेण्ट, मि० एरण्डेल तथा मि० वाडियाको नजरबंद कर दिया तब तो स्वराज्यके प्रश्नने और भी विशाल रूप धारण किया। बहुत कुछ आन्दोलन होने पर सितम्बर सन् १९१७ में सरकारने उक्त तीनों देशभक्तोंको छोड़ दिया। अब स्वराज्य-सम्बधी प्रश्न की यह स्थिति है कि सारे देशमें तेजीसे उसकी चर्चा होने लगी है और नेता लोग इस प्रयत्नमें लगे हैं कि स्वराज्यका सन्देश गाँव गाँव और घर घर पहुँच जाय, स्त्रियाँ और बच्चे तक इसकी चर्चा करने लगें। भारतकी भावी उन्नति और स्वतंत्रताके ये बहुत ही शुभ लक्षण्य हैं। स्वराज्य और स्वतंत्रताकी प्राप्तिसे पहले यह बात बहुत ही आवश्यक है कि उसके सम्बन्धकी सारी मुख्य मुख्य बातें देशका प्रत्येक मनुष्य अच्छी तरह समझ जाय और इसीके लिए आज कल प्रयत्न हो रहा है।

वर्तमान युरोपीय महायुद्ध भी हमारी राजनीतिक उन्नतिमें बहुत बड़ा सहायतक हुआ है। इस युद्धके कारण भारतवासियोंको सबसे पहला लाभ तो यह हुआ है कि उन्हें बहुत ही थोड़े समयमें संसारका बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त हो गया है, और यह ज्ञान उनकी स्वतंत्रता-सम्बन्धी कल्पनाकी वृद्धिमें बहुत बड़ा सहायक है। भारतवासियोंको इससे दूसरा लाभ यह हुआ है कि उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्यके प्रति, उसे सब प्रकारकी यथासाध्य सहायता देकर, अपनी भक्तिका तथा युद्धमें उनकी ओरसे लड़कर अपनी वीरताका सारे जगतको बहुत अच्छा परिचय दे दिया है और बहुतसे अंशोंमें अँगरेज प्रजाको अपना कृतज्ञ

तथा उसके लोकमतको अपने अनुकूल कर लिया है। इस कृतज्ञता और अनुकूलताकी वृद्धिके लिए कुछ भारतीय नेता विलायत जानेकी चिन्तामें भी हैं और यदि वे विलायत चले गये तो भारतके बहुत बड़े कल्याणका बीजारोपण हो जानेकी सम्भावना है। उधर स्वयं अँगरेज राजनीतिज्ञोंकी आँखें भी वर्त्तमान महायुद्धके कारण खुल गई हैं और युद्धकी समाप्ति पर वे नये सिरे और नये ढंगसे साम्राज्यका संगठन करना चाहते हैं। इसी साम्राज्यसंगठनके अवसर पर भारतवर्ष भी अपना उचित अधिकार और स्थान प्राप्त करना चाहता है। भारतीय नेता कहते हैं कि युद्धके उपरान्त साम्राज्य-संगठनके अवसर पर हमारे देशको उचित अधिकार और स्थान मिलेगा और उधर शासक वर्गके कुछ लोग और उनके हिमायती अपने कथनों तथा कृत्योंसे इसका विरोध करते हैं। अभी निश्चय-पूर्वक यह नहीं कहा जा सकता कि युद्धके उपरान्त भारतको कहाँतक उसका उचित अधिकार और स्थान मिलेगा और कहाँतक उसकी उच्चाकांक्षायें पूरी होंगी। इस सम्बन्धमें कोई सीमा निर्धारित करना बड़े बड़े राजनीतिज्ञोंके लिए भी बहुत कठिन है। हम केवल इतना ही कह सकते हैं कि इस समय स्वराज्य-प्राप्तिके लिए हम लोग नियमानुमोदित रीतिसे और वैध आन्दोलन करके उसके सम्बन्धमें अपनी जितनी ही तत्परता, दृढ़ता और आग्रह दिखलावेंगे उतनी ही सीमातक हमारे उद्देश्योंकी सिद्धि भी होगी। कमसे कम इस समय हमारी सफलता बहुतसे अंशोंमें हमारे नियमानुमोदित आन्दोलनके बल पर ही अवलम्बित है। यदि आयर्लैंडको स्वतंत्र होनेमें अमेरिकाका सहारा और भरोसा है, तो भारतवर्षको केवल वैध आन्दोलन और लोकमतके बलका ही है; क्योंकि स्वराज्यकी योग्यता और अयोग्यतावाले प्रश्नका बहुतसे अंशोंमें अन्त हो चुका है और अब हम भारतीयोंकी अयोग्यता पर किसी प्रकारका आक्षेप

नहीं हो सकता। अब देखना यह है कि युद्धकी समाप्ति पर स्वतंत्रता-की दौड़में अपनी शक्तिको देखते हुए हम उचित स्थान पर पहुँच जाते हैं अथवा अपेक्षाकृत पीछे ही पड़े रह जाते हैं। इस अवसर पर हमारे देश-भाईयोंको केवल एक बातका विशेष ध्यान रखना चाहिए। वह बात यह है कि जब किसी कार्य्यका उपयुक्त अवसर निकल जाता है तब उस कार्य्यकी सिद्धि बहुत दूर जा पड़ती है। सन् १७८२ में आयरिश लोगोंको जो स्वतंत्र पार्लमेण्ट मिली थी, वह यदि प्रस्तुत अवसरका ठीक ठीक उपयोग करती और सन् १८०० में स्वयं अपना नाश न कर डालती, तो इस समय आयर्लैण्ड जिस उन्नत दशामें होता उसका अनुमान सहजमें नहीं किया जा सकता। पर जब उस पार्लमेण्टने अपना नाश करके देशके अभ्युदयका वह बहुमूल्य समय खो दिया तब उसकी स्वतंत्रता और उन्नतिका अवसर सैकड़ों बरस दूर जा पड़ा। आयर्लैण्डको होमरूल शीघ्र ही मिल जायगा पर १७८२ वाली स्वतंत्र पार्लमेण्टके समान अधिकार आयरिश लोगोंको कब मिलेंगे यह अभी नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकारकी कुछ दशा इस समय हमारी भी है। युद्धके उपरान्त होनेवाले साम्राज्य-संगठनमें यदि भारत अपना उचित अधिकार और स्थान प्राप्त न कर सका, तो फिर यह नहीं कहा जा सकता कि और कितने दिनों तक उसे इसी दशामें पड़े रहना पड़ेगा। अतः इस समय हम लोगोंके लिए दो बातें बहुत ही आवश्यक हैं। एक तो भारतीय लोकमत तैयार करना और लोगोंमें जागृति उत्पन्न करना और दूसरे अँगरेजी अधिकारियों तथा प्रजा पर अपनी योग्यता भली भाँति प्रकट कर देना; उन्हें अपनी आवश्यकतायें पूरी तरहसे बतला देना और उनके सम्बन्धमें अपनी तत्परता और दृढ़ निश्चय प्रकट कर देना। इन सब कामोंके लिए सबसे अधिक उपयुक्त समय यही है और यदि भारत सचमुच आगे बढ़ना चाहता हो तो उसे इस उपयुक्त समयका उपयोग करना चाहिए।

राजकीय स्थितिमें पिछड़े होनेके कारण राजकीय शिक्षामें भी आयर्लैण्डसे भारतवर्ष पिछड़ा हुआ है। यद्यपि इस समय आयर्लैंडमें स्वतंत्र पार्लमेण्ट नहीं है, पर तो भी किसी समय वहाँ स्वतंत्र पार्लमेण्ट थी और अब भी आयर्लैंडसे सौ सभासद चुनकर ब्रिटिश पार्लमेण्टमें भेजे जाते हैं। हम लोग अभी पार्लमेण्टके ढंगकी संस्था माँग रहे हैं और उसका मिलना कुछ दूर है। ऐसी दशामें यह बात मुक्त कण्ठसे स्वीकार करनी पड़ेगी कि जो लोग पार्लमेण्ट सरीखी संस्थासे सैंकड़ों वर्षसे परिचित हैं वे राजकीय शिक्षामें अवश्य ही हमसे कहीं आगे बढ़े हुए हैं। इस समय भारतवर्षमें ग्रैटन, फ्लड, ओकानेल, पार्नेल आदिके समान वक्ता और पार्लमेण्टके सभासद तथा नेता होने योग्य लोग बहुत ही कम हैं, पर तो भी आशा है कि शीघ्र ही ऐसे लोगोंकी संख्या बढ़ेगी। परन्तु पात्रता और प्रत्यक्ष अनुभवमें बड़ा अन्तर होता है। किसी काममें प्रयुक्त होनेवाले गुणका मनुष्यमें होना और बात है और उस गुणके रहते हुए उस कामको प्रत्यक्ष करना और बात है। यद्यपि इस समय हम लोगोंको थोड़े बहुत पार्लमेण्टरी नेता मिल सकते हैं, तथापि अभी तक हम लोगोंको पार्लमेण्टका अनुभव नहीं है। हम लोगोंमें पात्रता तो पूरी है, पर अनुभवकी कमी है। उस अनुभवके लिए हम पर कामका बोझ पड़ना चाहिए और इसमें सन्देह नहीं कि कामका जितना बोझ हम पर होना चाहिए उतने बोझके न होनेका दोष यहाँकी सरकार पर है। मार्लीसाहबने अपनी काउन्सिलमें कुछ दिन पहले दो भारतवासियोंकी नियुक्ति की थी और उसके थोड़े ही दिन बाद कहा था कि उन दोनोंका काम बहुत अच्छा हुआ है। अर्थात् इस सम्बन्धमें पात्रता सिद्ध करके अनुभव करानेका श्रेय मार्ली साहबको है और इन्हींकी कृपासे बड़े लाटकी कार्य्यकारिणी सभामें भी सन् १९०९ से एक हिन्दुस्तानी मेम्बर रहने

लगा है। यदि उसमें और अधिक लोग नियुक्त किये जायँ तो वहाँ भी इसकी पात्रता आपसे आप सिद्ध हो जाय और उन्हें अनुभव प्राप्त हो। बिना किये कोई काम नहीं आता, और लोगोंको बार बार काम करनेका अवसर न देनेकी दोषी सरकार है। तो भी हम लोगोंमें अनुभवका जो अभाव है, चाहे अनिच्छासे ही क्यों न हो, पर वह हम लोगोंमें बना रहता है। जिन मार्लीसाहबने पहले एक बार कहा था कि भारतवासी अधिकारके पद प्राप्त करनेके योग्य हैं उन्हीं मार्लीसाहबने आगे चलकर फिर कहा था कि—"पार्लमेण्टका उपयोग करनेके योग्य वे लोग अभी नहीं हुए हैं और आगे कई युगोंतक योग्य हो भी न सकेंगे।" उनका यह कथन ठीक नहीं था, इसी लिए आगे चलकर उसका खण्डन भी हुआ। गत १२ जुलाई सन १९१७ को लन्दनमें भारतमंत्री मि० माण्टेगने जो वक्तृता दी थी उसमें आपने स्पष्ट रूपसे कह दिया था कि भारतवासियोंके अनुभव आदिमें पिछड़े रहनेके लिए मुख्य दोषी भारतका शासकवर्ग है और वास्तवमें भारतवासी सब प्रकारके अधिकारोंके योग्य हैं। मि० माण्टेग इसी सम्बन्धमें जाँच करने तथा यहाँके अधिकारियोंसे बातें करनेके लिए भारतमें आये हुए हैं। आशा है कि उनके भारत आगमनका फल हम लोगोंके लिए बहुत ही अच्छा होगा और भविष्यमें हम लोगोंको शासन तथा सेना-विभागमें बड़े बड़े पद भी मिलने लगेंगे। तो भी जिस पार्लमेण्टका आयरिश लोगोंको तीन चार सौ वर्षोंसे प्रत्यक्ष अनुभव है हमारे लिए उसके दर्शन भी अभी दूर हैं; इसलिए यह बात स्पष्ट ही है कि आयरिश लोगोंको देखते हुए हम लोग राजकीय शिक्षामें बहुत पिछड़े हुए हैं।

लेकिन यह मानना बड़ीभारी भूल है कि ब्रिटिश पार्लमेण्टमें बैठनेवाले सभासदोंसे आयरिश लोगोंको केवल राजकीय शिक्षा ही मिलती है।

ये सौ सभासद चाहे प्रत्यक्षरूपसे अपना कार्य्य न सिद्ध कर सकते हों, तो भी अप्रत्यक्ष रीतिसे वे कभी न कभी अपना काम निकाल ही लेते हैं। चाहे वे अपनी नाक साबुत रखकर अपना शकुन न कर सकते हों, तो भी वे उसे कटा कर दूसरेका अपशकुन अवश्य कर सकते हैं। चाहे अपनी नाव न चला सकते हों, पर तो भी वे दूसरेकी नाव अवश्य डुबा सकते हैं। और इसलिए उनकी जो बातें प्रेमपूर्वक स्वीकृत नहीं होतीं, वे कभी कभी केवल उनके भयके कारण ही स्वीकृत हो जाती हैं। पाठक यह बात जानते ही होंगे कि ब्रिटिश पार्लमेण्टका राजकार्य्य राजकीय पक्षके बलाबल पर अवलम्बित रहता है और इसलिए आयरिश सभासदोंके मतका महत्त्व कभी कभी बहुत बढ़ जाता है। यों पत्थरके किसी टुकड़ेका चाहे कोई महत्त्व न हो, पर तराजूका पासंग ठीक करनेके समय अथवा किसीके सिर पर खींचकर मारनेके समय उसे जाकर लाना पड़ता है। इसी तरह किसी प्रश्न पर बहुमत प्राप्त करके पार्लमेंटमें अधिकारका पल्ला भारी करनेके लिए आयरिश सभासदोंसे अनेक अवसरों पर सहायता माँगी गई है और उन्होंने उसका 'उचित बदला' लेकर सहायता दी है। फॉक्स और पिटके समयसे लेकर आजतक कंसर्वेटिव पक्षने अनेक बार लिबरल पक्ष पर यह अभियोग लगाया है कि वह आयरिश सभासदोंके साथ मिल गया है। पार्नेलके समयमें आयरिश सभासदोंमें खूब एका रहता था और वे लोग सदा चुपचाप दूर बैठे हुए कन्सर्वेटिव और लिबरल पक्षकी लड़ाई देखा करते थे, और ठीक समय पर मौका ताक कर पिण्डारियोंकी तरह वे एक पक्ष पर टूट पड़ते थे और क्षणभरमें जय-पराजयके पल्ले फेर देते थे। इसमें सन्देह नहीं कि ग्लैडस्टन साहबके इतने जोरोंसे होमरूलका प्रश्न उठानेमें उनकी न्यायबुद्धि और उदारता तो कारणीभूत हुई ही थी, लेकिन यह कारण भी कुछ गौण नहीं था कि लिबरल पक्षका पल्ला

पार्लमेण्टमें भारी करनेमें आयरिश सभासदोंसे भी उन्हें सहायता मिलती थी। कई बार आयरिश सभासदोंकी प्रतिकूलताके कारण स्वयं ग्लैडस्टन साहबकी भी हार हुई थी; और कन्सर्वेटिव पक्षने भरी सभामें इस राजनीतिज्ञ पर यह दोष लगाया था कि किलमाइनहमके जेलमें पार्नेलके साथ बात-चीत पक्की करके और उसे मुक्त करके आयरिश सभासदोंको उसने अपनी ओर मिला लिया है। तात्पर्य यह कि ब्रिटिश पार्लमेण्टमें आयरिश सभासदोंके रहनेसे यद्यपि उनके सभी काम पूरे नहीं उतरते और आय-र्लैण्डके सभी दुःखोंका यद्यपि निवारण नहीं होता, तथापि ये सभासद् इतना उपद्रव कर सकते और इतनी अड़चनें डाल सकते हैं कि जिनसे आयर्लैण्डकी स्थितिकी ओर सब लोगोंका ध्यान बलपूर्वक आकृष्ट हो जाय। पर भारतवर्षको इस प्रकारका लाभ बिलकुल नहीं है। भारतका एक भी प्रतिनिधि पार्लमेण्टमें नहीं रहता; अतः भारतकी ओर पार्ल-मेण्टका ध्यान आकृष्ट करनेके लिए किसी अँगरेज सभासद्की सहायता लेनी पड़ती है, और उन लोगोंको इस देशके सम्बन्धकी बातोंका ज्ञान बहुत ही कम रहता है। इस लिए एक ऐसे जानकारकी आव-श्यकता होती है जो उसे आवश्यक बातें बतलाया करे। पर इस बातका अनेक बार अनुभव हुआ है कि प्रत्यक्ष वादविवादमें इन भाड़ेके टट्टुओंसे कोई काम नहीं निकलता। कन्सर्वेटिव हो और चाहे लिबरल, भारतकी अनुकूलता पर किसी पक्षका हिताहित अवलम्बित नहीं है और इस लिए केवल न्यायबुद्धिकी प्रेरणासे भारतवर्षकी ओर उनका जो कुछ ध्यान आकर्षित हो वही ठीक है, परन्तु ऐसा बहुत ही कम होता है कि जिसके साथ हमारा कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है उसका काम चाहे कितना ही न्याय-युक्त और ठीक क्यों न हो, पर केवल न्याय-बुद्धिकी प्रेरणासे उसकी ओर ध्यान जाय। न्याय-शीलताका ढोंग रचकर अनेक बार दोनों ही पक्ष भारतके हितमें बाधक

होते हैं और एंग्लो इण्डियन अधिकारियोंको प्रसन्न करनेके लिए उनके साथ मिल जाते हैं। पर इन लोगोंका यह मिलाप देखकर जान पड़ता है कि उसका उद्देश्य केवल यही है कि जिस तरह हो लड़-झगड़ कर मुसाफिरका खाना खराब कर दिया जाय और आपसमें बाँट कर खा लिया जाय !

ब्रिटिश पार्लमेण्टमें प्रतिनिधि चुनकर भेजनेका भारतको अधिकार नहीं है, जिससे कई अप्रत्यक्ष हानियाँ भी हैं। एक तो इसके कारण भारतवासियों पर हीनता और अयोग्यताकी छाप लग जाती है और वे संसारमें जहाँ जायँ वहीं यह छाप उनके लिए बाधक होती है। आफ्रिका, कनाडा, यूरोप आदि देशोंमें जब हम भारतवासी जाते हैं तब हम लोगोंको इसका अच्छा अनुभव हो जाता है और ऐसा होना स्वाभाविक भी है। अगर पति ही अपनी स्त्रीको राँड़ कहेगा तब भला पड़ोसी उसे राँड़ क्यों न कहेंगे ? वही बात यहाँ भी है। हमारे शासक हमें जो सर्टिफिकेट देंगे प्रायः उसीके अनुसार विदेशमें भी हमारा आदर होगा। यदि पार्लमेण्ट आदि संस्थायें हम लोगोंको अयोग्य और अज्ञान बताने लगें, तब फिर परदेशमें हमको कौन पूछेगा ? लेकिन आयरिश लोगोंकी स्थिति इससे भिन्न है। चाहे वहाँ होमरूल हो और चाहे न हो, पर सारे संसारमें लोग उसे ब्रिटिश साम्राज्यका एक घटक और स्वराज्यका किसी समयका भोक्ता मानते हैं और उसीके अनुसार अब तक उसका आदर होता आया है और अब भी बराबर होता है। अमेरिकामें जाकर आयरिश लोगोंने अच्छे अच्छे पद पाये हैं और इस समय भी अमेरिकाकी राजनीतिमें आयरिश लोगोंका बहुत कुछ प्रभुत्व है। फ्रान्सके सम्बन्धमें भी वही बात है। यह बात प्रसिद्ध ही है कि नेपोलिअन बोनापार्टके साथ उल्फटोन और

राबर्ट एमेटकी भेंट हुई थी। लिमरिकमें कैथोलिक लोगोंकी तलवार-की कीर्ति रखनेवाले सार्सफील्ड और उसके उपरान्त टोनको फ्रान्सीसी सेनामें जनरलकी जगह मिली थी और इस समय भी उन्हें वैसा मान मिल सकता है। स्वयं इंग्लैण्डमें और उपनिवेशों तथा भारतमें आयरिश लोगोंको बड़ीसे बड़ी जगहें मिल सकती हैं। इंग्लैण्डके ड्यूक आफ वेलिंग्टन और लार्ड राबर्ट्स ये दोनों ही सेनापति आयरिश थे। हिन्दुस्तान तथा उपनिवेशोंकी सिविल सर्विसमें आयरिश, अँगरेज और स्कॉचका भेद नहीं है। युक्तप्रान्तके भूतपूर्व छोटे लाट सर एण्टनी मेकडानल आयरिश थे। जिस समय आयरिश लोगोंको होम-रूल मिलना निश्चित नहीं हुआ था, उस समय उन्हें अँगरेजी साम्राज्यमें होनेवाले सब प्रकारके लाभ होते थे। इधर भारतवासियोंको इतना भी अधिकार नहीं है कि पार्लमेण्टमें प्रतिनिधि ही चुनकर भेजें, बल्कि यहाँ तक कि अबसे कुछ ही दिन पहले सर्वोत्कृष्ट लिबरल तत्त्वज्ञानी कहा करते थे कि भारतवासियोंका इस प्रकारका अधिकार माँगना वैसा ही है, जैसा किसी बच्चेका खेलनेके लिए चन्द्रमा माँगना। अब तक सेनाविभागमें भारतवासियोंको अधिकसे अधिक सूबेदारीकी दो ढाई सौ-की जगह ही मिल सकती थी। भला हो इस महायुद्धका, जिसने भारतवा-सियोंके गुण प्रकाशित करके उनका आदर तो बढ़ाया और सेनामें उन्हें कुछ कमीशन तो मिलने लगे! जहाजों पर हम लोगोंको खाली तेलके पीपे साफ करने और रस्से लपेटनेका ही काम मिलता है और शासन-विभागमें हम लोग डिप्टी कलक्टरीके आगे सहसा नहीं पहुँचते। हाँ, एक निरुपद्रवी न्यायविभागमें हम लोगोंको हाईकोर्टकी जजीतक मिल सकती है। दूसरे राष्ट्रोंमें हमें उत्तेजन मिलना तो दूर रहा, यदि किसी प्रकार हम लोग अपने गुणोंसे ही वहाँ प्रविष्ट हो जायँ तो सरकार हमें उसका लाभ भी पहुँचने देनेके लिए तैयार नहीं है।

अब हम अन्तमें वैधर्म्यके एक एक विशिष्ट विषयका वर्णन करके प्रस्तुत विषयके इस अंगका विवेचन पूरा करेंगे। यह विषय है आयर्लैंड और हिन्दुस्तानके आकार मान और लोकसंख्या आदि बातोंके अन्तरके सम्बन्धका। यह बात हम पहले ही भागमें बतला चुके हैं कि आयर्लैण्डका क्षेत्रफल और लोकसंख्या दोनों ही हिन्दुस्तानके सबसे छोटे प्रान्तके बराबर भी कठिनतासे है। इतना होने पर भी एक ही साम्राज्यके अन्तर्गत इन दोनों देशोंके राजकीय सुधारोंमें जो अन्तर है उसका कारण भी ध्यानमें रखने योग्य है। हमारी समझसे कारण यह है कि भारतवर्षके अतिशय विस्तार और विपुल लोकसंख्यासे उसका उपकारकी अपेक्षा अपकार ही अधिक हुआ है। यदि हम संसारके अनुभवसे अथवा आप ही आप राष्ट्रीयताकी मामांसा करने लगें तो हमें एक मुख्य सिद्धान्त दिखाई देगा। वह सिद्धान्त यह है कि राष्ट्रीयताकी कल्पनाके केन्द्रीभूत होकर प्रभावशाली बननेके लिए क्षेत्र जितना ही छोटा हो उतना ही अच्छा होता है। इधर हम लोगोंको बहुत ही संकीर्ण रूपसे भारतवर्षका विचार करनेका अभ्यास पड़ गया है। अपने राज्यकी रक्षामें सुविधा उत्पन्न करनेके लिए अथवा अपनी अभिनव उच्चाकांक्षाके समाधानके लिए भारत-सरकार ज्यों ज्यों अपने हाथ-पैर फैलाने लगी और नये नये प्रान्त जीत कर अपने राज्यमें मिलाने लगी त्यों त्यों भारतवर्षके भूवर्णनविषयक शब्दोंकी व्याप्ति भी बढ़ने लगी और इस प्रकार धीरे धीरे यहाँ तक नौबत आ गई कि सह्याद्रिके नीचे कोंकण और चीनकी सरहद परके ब्रह्मदेशके लोग एक राष्ट्रके अवयव कहे जाने लगे। लेकिन यह बात स्पष्ट ही है कि औपचारिक नामकरणसे राष्ट्रके लोगोंमें वास्तविक एकता होनेकी सम्भावना नहीं है। राष्ट्र पाणिनिका व्याकरणसूत्र नहीं है कि उसमें श्वन् (कुत्ता), युवन् (युवक) और मघवन् (इन्द्र) सभी समानान्त होनेके कारण

एकहीमें खप जायँगे, अथवा उनका समान रूपकरण हो जायगा। अथवा राष्ट्र शेक्सपीअरके मेकबेथ नाटकमेंकी दासीकी कढ़ाई नहीं है कि उसमें रसोई बनानेके लिए कच्चा-पक्का, सजीव-निर्जीव, अच्छा–बुरा जो चाहिए सो डालते चले जाइए। अथवा राष्ट्र 'शाकंभरी' के व्रतके उद्यापनका भोजन नहीं है कि जिसमें आप दस बीस तरहकी साग-तरकारी एकहीमें बना डालें। राष्ट्र बनानेके लिए कुछ विशेष प्रकारके नियमोंकी आवश्यकता होती है। उसमें धर्म्म, भाषा, वंश-विस्तार, ऐतिहासिकपरम्परा और प्रत्यक्ष राजकीय हिताहित आदि अनेक बातें प्रधान हैं। परन्तु ऊपर कहे अनुसार सह्याद्रिके नीचे कोंकण और चीनकी सरहद परके ब्रह्मी लोगोंमें उक्त बातोंमेंसे कोई बात समान नहीं है। उसमें केवल ब्रिटिश सरकारकी उच्चाकांक्षाकी नियमानुमोदित सत्ताके अतिरिक्त और कोई दूसरा साधारण अधिष्ठान नहीं है। अर्थात् 'राष्ट्र' की दृष्टिसे भारतवर्षका विचार करनेके समय ब्रिटिश सरकार राज्य-मर्य्यादाकी दृष्टिसे विचार करती है। लेकिन उस प्रकार विचार न करके आवश्यकता इस बातकी है कि इस विशाल राज्यविस्तारमें समाविष्ट उसके प्रत्येक घटक या अंगकी परिस्थिति देखते हुए विचार किया जाय। यदि इस बातका विचार किया जाय कि राष्ट्रीयताके जो लक्षण ऊपर बतलाये गये हैं वे लक्षण मदरासियों, महाराष्ट्रों, पंजाबियों, गुजरातियों, बंगालियों, और बरमियोंको एकमें मिला देनेसे कहाँतक घटते हैं तो जान पड़ेगा कि इन सब लोगोंको मिलाकर एक राष्ट्र बनाना कठिन है। और जबतक वैसा राष्ट्र न बन जाय तबतक इस प्रकारका निर्बन्ध करना सर्वथैव भ्रमपूर्ण होगा कि ये भिन्न भिन्न लोग कमसे कम अपना अपना अलग राष्ट्र न मानें, और जबतक इन सबके मेलसे एक राष्ट्र न बन जाय तब तक चुपचाप बैठे रहनेके लिए कहना वैसा ही है जैसा किसी नदीके पुलको बनानेके

समय यह कहना कि जबतक नदीका सारा पानी न बह जाय तबतक चुपचाप रुके रहो।

आयर्लैण्डके राष्ट्र बननेमें उसका अल्प विस्तार, आयरिश लोगोंकी भाषा, धर्म्म और पूर्व परस्परा आदि बातें बहुत ही उपयोगी हुई हैं। लेकिन इतना होने पर भी उत्तर आयर्लैण्डमें प्रोटेस्टेण्ट लोगोंकी जो थोड़ीसी बस्ती है, राजकीय बातोंमें थोड़ासा विरोध होनेके कारण उसकी दशा ठीक काचके उस टुकड़ेके समान है जो न पेटमें जाकर पचता है और न बाहर ही निकलता है; केवल एक जगह अड़कर आयरिश राष्ट्रकी अँतड़ियोंको कष्ट देता है। भारतवर्षकी भिन्न भिन्न जातियों, उनके पुराने स्वाभाविक विरोध और उस विरोधको बढ़ानेके लिए सरकारी नीति आदिको देखते हुए जो मनुष्य यह समझता हो कि भारतवर्ष जब पहले राष्ट्र बन लेगा तब उसका उदय होगा, उसके सिर पर निराशाका थप्पड़ अवश्य लगेगा। हाँ, इस सम्बन्धमें सफलता होनेकी आशा उसी समय हो सकती है जब हिन्दुस्तानकी भिन्न भिन्न जातियोंके लोग अपने अपने सुभीतेके अनुसार कुछ क्षेत्र या सीमा निश्चित करके राष्ट्रीयताकी कल्पनाकी वृद्धिका प्रयत्न करना निश्चित करें। इसके लिए कुछ दिनों पहलेके बंगालका उदाहरण बहुत अच्छा प्रमाण होगा। बंग-भंग और स्वदेशी आन्दोलनके समय बंगाली राष्ट्रकी जो राष्ट्रीयता दिखाई देती थी उसका कारण यह था कि आयर्लैंडकी तरह वहाँ भी मर्य्यादित क्षेत्रमें कल्पना-बीज बोया गया था। भारतवर्षके अन्य सब प्रान्तोंसे क्षेत्र-फल और जन-संख्यामें बंगाल चाहे बड़ा ही क्यों न हो, तो भी जो बातें अन्य प्रान्तोंके लिए दुर्लभ होती हैं वे भी बंगालियोंके लिए अनुकूल होती हैं। भौगोलिक दृष्टिसे इस समयका बंगाल प्रान्त अखण्ड है और वहाँ रहनेवाले लगभग चार करोड़ बंगालियोंकी भाषा, धर्म्म और ऐतिहासिक परम्परा एक ही है। उन सब लोगोंको एक ही

तरहकी शिक्षा मिली है और बंग-भंग होनेके पहलेसे लेकर बंगालके फिरसे मिलाये जाने तकके समयको छोड़ कर अबतकके शेष कालमें वे सब एक ही शासनके अधीन रहे हैं। उनमें धर्म्मसम्बन्धी भेद्-भाव नहीं है और यद्यपि पूर्व बंगालमें मुसलमानोंकी आबादी अधिक है, तथापि उन सबके अशिक्षित होनेके कारण भारतीय राष्ट्रीयताकी कल्पनामें उनके कारण कोई अड़चन नहीं पड़ सकती। बंगालियोंकी भाषा और विद्या जिस प्रकार एक है, उसी प्रकार उनके सुखःदुख और मानापमान भी एक ही हैं। बंगालके एक सिरेसे लेकर दूसरे सिरे तकके सभी बंगाली पहले 'ढीली धोतीवाले' कहे जाते थे और लोग 'बंगाली' शब्द सुनते ही नाक भौं सिकोड़ने लगते थे। पर जब उनमें अपना नाम उज्ज्वल करनेकी उच्चाकांक्षा उत्पन्न हुई तब उसका प्रसार भी देखते देखते बंगालके एक सिरेसे दूसरे सिरे तक हो गया। बंग-भंग होनेके कारण दोनों प्रान्तोंमें और भी दृढ़ मेल हो गया। अस्तु। इसी प्रकार यदि प्रत्येक भारतीय राष्ट्र अपनी अपनी राष्ट्रीयताका यथोचित अभिमान * करके अन्य जातियोंके साथ प्रेमभाव बढ़ावे तो वह समय भी आ जायगा जब कि ब्रिटिश साम्राज्यके अन्य देशोंकी तरह यहाँ भी राष्ट्रसंघ बन जायगा। लेकिन इस समय यदि प्रत्यक्ष देखा जाय तो आयर्लैण्ड और

---

* बंगालियोंमें राष्ट्रीयताका जो अभिमान है वह यथोचित होनेकी सीमासे कहीं अधिक बढ़ा-चढ़ा और अनुचित है। भारतकी अन्य जातियों, देशों अथवा वहाँके नेताओं आदिके लिए उनके हृदयमें विशेष आदर नहीं है। उनकी समझमें बंगालसे बढ़कर कोई देश नहीं है और बंगाली जाति विद्या, बुद्धि, नेतृत्व आदि गुणोंमें सर्वश्रेष्ठ है। अपनी इसी ना-समझीके कारण वे अन्य भारतवासियोंके साथ व्यवहार करनेमें बहुत कुछ उपेक्षा करते हैं। उनका यह दुर्गुण आवश्यक प्रेमभावकी वृद्धिमें बहुत बाधक होता है। इसका परिणाम यही होगा कि जिस तरह और लोगोंके साथ बंगालियोंको सहानुभूति नहीं है, उसी तरह बंगालियोंके साथ भी किसीको सहानुभूति न रह जायगी।—अनुवादक।

भारतवर्षके क्षेत्र-फल और लोक-संख्यामें जो अन्तर है वह हमारी संकीर्ण राष्ट्रीयताके प्रतिकूल ही है; और इन दोनों देशोंके वैधर्म्यका विचार करते हुए हिन्दुओंकी संख्याकी अधिकता और देशका विस्तार हमारे लिए बाधक ही है और इसी लिए फ्राउड सरीखे इतिहासकारको भी कहना पड़ा था कि–“ अँगरेज लोग हिन्दुस्तान पर राज्य कर सकते हैं, पर आयर्लैण्ड पर राज्य नहीं कर सकते। ” वैधर्म्यका यह महत्त्वपूर्ण विषय सदा ध्यानमें रखना चाहिए।

उपसंहार। आयर्लैण्डके इतिहासके सम्बंधमें जो कुछ फुटकर बातें और अपने विचार हमने इस पुस्तकमें पाठकोंके सामने उपस्थित किये हैं उनके उपसंहारके रूपमें कुछ बातें बतलाकर हम यह भाग समाप्त करते हैं। आयर्लैण्डका मनन करने योग्य इतिहास पाँच सौ वर्षोंका है और उसमेंसे सौ डेढ़ सौ बरसका इतिहास तो भारतवर्षकी वर्त्तमान स्थितिसे बहुत ही कुछ मिलता जुलता है और उससे बहुत कुछ शिक्षा ली जा सकती है। कोई विषय चाहे कितना ही महत्त्वपूर्ण और मनोरंजक क्यों न हो, तो भी उसके सम्बन्धमें कुछ लिखनेके लिए एक स्वाभाविक मर्य्यादा होती है, इसलिए उक्त इतिहासकी केवल मुख्य मुख्य बातें बतलाकर और इस बातका दिग्दर्शन कराके कि वे भारतके इतिहासके लिए कहाँ तक उपमानभूत हो सकती हैं, हमें अपनी कलम रोकनी पड़ती है। आयरिश लोगोंके युद्धों, सन्धियों, विद्रोहों, उन्हें रोकनेके लिए अँगरेज अधिकारियोंके उपायों और अत्याचारों, आयर्लैण्डके राजकीय संगठन और शासन-पद्धति, साम्राज्य और स्थानिक स्वराज्यके सम्बन्धके नियम आदि, समाजरचना, विद्या और कला, लोक-स्वभाव और आयरिश नेताओंके आन्दोलनों आदिका यदि पूरा पूरा इतिहास दिया जाय, तो एक बड़ाभारी ग्रन्थ बन जायगा। तो भी पिछले सात आठ भागोंमें इस इतिहासका जो अंश हमने दिया है,

आशा है कि पाठक उससे यह बात समझ गये होंगे कि आयरिश लोगोंका अँगरेजोंके साथ पूर्वापर सम्बन्ध कैसा बनता गया, उनका राजकीय ध्येय क्या है और इस ध्येयकी प्राप्तिके लिए आज तक उन लोगोंने कौन कौन उपाय किये हैं । बहुत दिनोंतक आयलैंण्डमें दमननीतिका अवलम्बन होता रहा और अब इधर कुछ दिनोंसे भारतमें भी उसी नीतिका अवलम्बन होने लगा है। अतः भारतवर्षके लिए आय-लैंण्डका इतिहास अनेक विषयोंमें आदर्शरूप है और इस योग्य है कि यहाँके शासक और प्रजा दोनों ही शान्तिपूर्वक उस पर विचार करके उससे शिक्षा ग्रहण करें। यद्यपि संसारमें कोई दो आदमी कभी सोलहों आने समान नहीं होते, तो भी प्रत्यक्ष व्यवहारमें बहुधा ऐसी समानता होती है जिससे भ्रान्ति हो जाती है। सभी जगह मनुष्यका स्वभाव एकसा होता है, इस लिए भिन्न भिन्न देशोंके इतिहासमें इतनी समानता दिखाई देती है कि जिससे यह सिद्धान्त ठीक जान पड़ने लगता है कि–"संसारमें इतिहासकी पुनरावृत्ति होती है।" लेकिन जैसा कि हमने पहले एक स्थान पर दिखलाया है, हिन्दुस्तान और आयलैंण्डमें कुछ ऐसी विशेष समानता है जैसी जुड़वाँ भाइयोंमें होती है। आयलैंण्डके इतिहाससे सीखने योग्य बात यही है कि केवल तामसी वृत्तिके अत्याचारों और उपद्रवोंसे राष्ट्रका उद्धार नहीं होता, बल्कि राष्ट्रीयताकी भावना बिलकुल सात्त्विक है और शासक चाहे कितना ही दमन क्यों न करें तो भी राष्ट्रीयताकी कल्पना उठती और बढ़ती ही है। जिस प्रकार शासक लोग अपने मनसे ही प्रजाका अन्तिम ध्येय समझ लेते हैं उसी प्रकार प्रजा भी यह समझती है कि अपनी राजसत्ता छोड़नेमें शासक लोग अप्रसन्न क्यों होते हैं। यदि केवल जबानी बातोंसे ही आपसका झगड़ा मिट सकता होता तो 'आन्दोलन' और 'दमन' शब्दका अस्तित्व ही न होता। जिस प्रकार अनुभव या साक्षात्कारके बिना ब्रह्मज्ञान

मिथ्या है, उसी प्रकार बिना प्रत्यक्ष अनुभवके राजकीय अन्तिम साध्य भी मिथ्या ही होता है। इसी लिए व्यावहारिक राजनीतिमें लड़ाइयाँ होती हैं और जिस प्रकार प्रजा पग पग पर अन्तिम साध्यका ध्यान और उच्चारण करनेका प्रयत्न करती है, उसी प्रकार शासक भी उनकी उस प्रवृत्तिको नष्ट करनेका प्रयत्न करते हैं। इस द्वन्द्वमें प्रत्येक देशाभिमानी मनुष्यको यही जान पड़ता है कि मैं सारी प्रजाका प्रतिनिधि हूँ; और प्रत्येक राजसेवकमें यह भाव उत्पन्न होता है कि राज्य सँभालनेका सब भार मुझ पर ही है। यदि अपने बम या पिस्तोलके ठीक निशाने पर लगनेके कारण कोई अत्याचारी मनुष्य यह समझ सकता है कि—"अँगरेजी राज्यका अभेद्य परकोटा मैंने तोड़ दिया" अथवा कोई पुलिस अफसर एकाध झूठा मुकद्दमा खड़ा करके और कुछ निरपराध मनुष्योंको दण्ड दिलवाकर यह समझ सकता है कि—"मैंने अच्छी तरह राजद्रोहका दमन किया।" तो यदि स्वदेशी और बहिष्कार सरीखा आन्दोलन उत्पन्न करनेवाला कोई देशभक्त यह समझे कि—"एक आदमी जितना राष्ट्रोद्धार कर सकता है उतना राष्ट्रोद्धार मैंने किया।" अथवा काउन्सिलोंमें कुछ अधिक भारतवासियोंको स्थान देनेवाला स्टेट सेक्रेटरी अपने मनमें यह समझे कि—"मैंने ऐसी राजनीतिज्ञतासे शासन किया जैसी राजनीतिज्ञतासे आजतक कभी किसीने शासन नहीं किया।" तो इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। इसप्रकारका भाव रख कर राजा और प्रजा दोनों पक्षोंके लोग जो उद्योग करते हैं उन्हींसे राष्ट्रका राजकीय इतिहास बनता है। हम केवल यही दिखलाना चाहते थे कि जिसप्रकार आयर्लैण्डमें यह इतिहास बना है उसीप्रकार वह भारतमें भी बन रहा है और इसमें कुछ न कुछ सिद्धि भी हुई है।

आयर्लैंडमें राष्ट्रीयताकी कल्पनाके उदित होनेके समयसे लेकर आजतक जो आन्दोलन हुए हैं, समय समय पर उनका नामनिर्देश होता

रहा है। परन्तु उनका पूरा इतिहास नहीं दिया जा सकता। विहंगम दृष्टिसे देखते हुए आयरिश लोगोंकी तीन प्रधान माँगें थीं—धार्म्मिक-स्वतंत्रता, भूमिका स्वामित्व, और स्वराज्य। इनमेंसे पहली माँग तो सन् १८२९ में पूरी हुई। धार्मिक स्वतंत्रताकी तरह धार्म्मिक शिक्षाकी स्वतंत्रता भी आयरिश लोग माँगते हैं, लेकिन कैथोलिक लोगोंकी अभी-तक कोई स्वतंत्र युनिवार्सिटी नहीं बनी है। पर कभी न कभी वह बनेगी ही। जमीनके सम्बन्धमें उनकी प्रार्थना सन् १८७० से ही अंशतः मानी जाने लगी और सन् १९०३ में कन्सर्वेटिव मंत्रिमण्डलके रहते हुए जमीनके सम्बन्धमें जो कानून बना उसके कारण उनकी माँग बहुतसे अंशोंमें पूरी हो गई। पहले सन् १८७० के कानूनसे यह बात सिद्ध हो गई कि आयर्लैण्डकी जमीनके मालिक आयरिश ही होने चाहिएँ। लेकिन चालीस वर्षतक यह विचार होता रहा कि अँगरेजी जमींदारोंसे अपनी जमीन छुड़वानेके काममें आयरिश खेतिहरोंको किस प्रकार सहायता दी जाय; और अब यह तै हुआ है कि इस कामके लिए उन्हें सरकारी खजानेसे मदद की जाय। अब दिन पर दिन आयरिश खेतिहरोंके अधिकारमें बराबर जमीन आती जाती है; राजनीतिके क्षेत्रमें झगड़नेके लिए राष्ट्रके लोगोंमें पहलेसे ही एक विशेष प्रकारकी सामाजिक सुस्थितिकी आवश्यकता होती है और आयरिश लोगोंकी उक्त दोनों माँगें पूरी हो जानेके कारण उनके समाजमें वह सुस्थिति आ गई है। जिस समय धार्म्मिक और सामाजिक स्वतंत्रता हो, राजकीय विषयोंमें समान अधिकार हों, शिक्षा आदि अपने अधिकारमें हों, तभी राजनीतिक प्रश्नोंकी अच्छी तरह मीमांसा हो सकती है। सुराज्य और सुस्थिति होने पर यह नहीं कहा जा सकता कि किसी राष्ट्रके लोग किस विशिष्ट प्रकारका स्वराज्य माँगेंगे, तो भी यह यह बात निर्विवाद है कि आयर्लैंडकी दरिद्रता और आपत्तिके

समय, उदाहरणार्थ उन्नीसवीं शताब्दीके मध्यमें आयरिश लोग पूर्ण स्वतंत्रता चाहते थे; पर आगे चलकर जब उनकी स्थिति कुछ सुधरी तब उनकी माँग भी कुछ हलकी हो गई। सन् १८८६ और १८९३ में पार्लमेण्टके सामने जो होमरूल बिल उपस्थित किये गये थे और जिनका आयरिश सभासदोंने समर्थन किया था उनमेंका स्वराज्य उस स्वराज्यसे एक कला कम ही था जो उससे सौ वर्ष पहले अर्थात् सन् १७८२ में आयरिश लोग प्रत्यक्ष माँगते थे। सन् १७८२ वाला स्वराज्य भी सच्चे और स्वतंत्र स्वराज्यसे एक कला कम ही था। सन् १८९३ में आयरिश लोग एकमतसे चौदह आने स्वराज्य माँगते थे और सहानुभूतिपूर्ण इतिहासकार लेकके कथनानुसार दैवगतिसे आयरिश लोकमतमें सन् १८०० और १८९३ के बीचमें कुछ ऐसा विलक्षण परिवर्त्तन हुआ कि जो लोकपक्ष सन् १७८२ में सोलह आने स्वराज्यके लिए लड़नेको तैयार था उसीके वंशज सन् १८९३ में चौदह आने स्वराज्य माँगनेके लिए भी तैयार नहीं थे और इंग्लैण्ड तथा आयर्लैण्डके संयोगसे राष्ट्रको जो लाभ हो सकते थे वे ही उन्हें अधिक मूल्यवान् जान पड़ते थे; लेकिन समाजमें ऐसा परिवर्त्तन होता ही रहता है। इसमें कोई विशेषता नहीं है। व्यक्ति या वर्गके मतमें चाहे परिवर्त्तन हो गया हो, तो भी होमरूल बिल पास होनेके समयतक आयर्लैण्डमें कमसे कम एक वर्ग अवश्य ऐसा था जो चाहे चौदह ही आने क्यों न हो, पर स्वराज्य माँगता था और लोकमतकी सत्ता भी उसके हाथमें थी। सन् १८९३ तक जो आयरिश नेता हुए उन सबका स्विफ्ट अथवा बर्क्रमेंसे किसी न किसीकी शिष्य-शाखा अथवा सम्प्रदायमें समावेश होता है और स्विफ्ट अथवा बर्क्रमेंसे कोई शुद्ध स्वराज्यवादी नहीं था। तथापि स्विफ्ट राजस तत्वज्ञानी और राजस राष्ट्रीय सिद्धान्तका प्रतिपादक था और उसके शिष्य-

सम्प्रदायमें ल्यूकस, ग्रॅटन, फ्लड, ओकानेल और पार्नेलका समावेश होता है। बर्क्ले सात्त्विक तत्त्ववादी था और उसकी शिष्य-शाखामें वर्त्तमान नेता सर होरेश प्लंकेट हैं। सन् १८९३ वाले होमरूल बिलके नामंजूर होनेके बाद होमरूलका काम कुछ ठण्ढा पड़ गया और उसके दो अंगोंमें दो दूसरे पक्ष प्रबल होने लगे। एक पक्ष 'गेलिक अमेरिकन लीग' का और दूसरा सर होरेश प्लंकेटका। पहले पक्षका मत फीनि-यन लोगोंके मतका सा था और पार्नेलके उपरान्त राष्ट्रीय पक्षका जो ह्रास हुआ था और सन् १८९३ में होमरूलके रणक्षेत्र पर ग्लैडस्टन साहबका जो पराभव हुआ था उससे उस पक्षके एकान्तिक स्वातंत्र्य-वादमें पीछेसे थोड़ा तेज आ गया था। दूसरे पक्षका सिद्धान्त बर्क्लेके सिद्धान्तके अनुसार था और उसका मत था कि आयरिश लोगोंको अपनी स्थिति सुधारनेके लिए राजकीय आन्दोलनके साथ साथ बल्कि उससे कुछ अधिक ही, शिल्प, कृषि, सराफी और व्यापार आदिका ज्ञान प्राप्त करके स्वावलम्बनके तत्त्व पर अपनी साम्पत्तिक अवस्था सुधारनी चाहिए। जमीनके सम्बन्धमें जो आखिरी कानून बने थे वे इसी पक्षके आन्दोलनका फल थे और उन कानूनोंके कारण इस पक्षमें धीरे धीरे बहुतसे लोग आ गये थे। लेकिन ऊपर बतलाये हुए पहले पक्षका अमेरिकामें जितना जोर था उतना आयर्लैण्डमें नहीं था। आयरिश इतिहासके भिन्न भिन्न समयके अनेक उदाहरणोंसे यह बात सहजमें सिद्ध की जा सकती है कि राजकीय सुधार-सम्बन्धी निराशा और एकान्तिक स्वतंत्रताकी माँगकी समान व्याप्ति होती है। अर्थात् सुधारोंसे निराश होने पर लोग पूर्ण स्वराज्य माँगने लगते हैं। यद्यपि आगे चलकर सन् १७९८ अथवा १८४४ की तरह विद्रोह करनेमें कठिनाइयाँ बढ़ गई थीं तो भी किसी बहुत ही अनुकूल समयमें आव-श्यकता पड़ने पर सम्भव था कि वह पक्ष कुछ उपद्रव खड़ा कर देता।

(वर्तमान यूरोपीय महायुद्धके समय अप्रेल सन् १९१६ में आयर्लैण्ड-में उसीके सिद्धान्तोंकी कृपासे एक छोटासा विद्रोह भी हो गया था जो सहजमें ही और तुरन्त शान्त कर दिया गया था।) इंग्लैण्ड उस पक्षको दबाकर दूसरे पक्षको प्रबल करना चाहता था। इसी पक्षको कुछ कुछ सन्तुष्ट करनेके अभिप्रायसे १०-१२ बरस पहले लिबरल मंत्रिमण्डलने 'अधिकार-विभाग' के स्वरूपमें दस आने स्वराज्य देना चाहा था; पर उस पक्षने उसे लेनेसे साफ इनकार कर दिया। लेकिन इंग्लैण्ड किसी न किसी रूपमें अधिकार देकर आयरिश लोगोंको सन्तुष्ट करना चाहता था; इस लिए सन् १९१२ में मि० एस्क्विथने पार्लमेण्ट-में आयरिश होमरूल बिल उपस्थित किया, जो बड़ी बड़ी कठिनाइयोंसे अन्तमें सितंबर १९१४ में पास हो गया। इस प्रकार आयर्लैण्डका राष्ट्रीय आन्दोलन बहुतसे अंशोंमें सफल हो गया। आजसे प्रायः सत्तर वर्ष पहले जिस राष्ट्रके विषयमें लोगोंको यह सन्देह होता था कि यह बचेगा अथवा नष्ट हो जायगा, वही राष्ट्र आयरिश लोगोंकी निःसीम राष्ट्रभक्ति और उज्वल स्वार्थत्यागके कारण बहुत शीघ्र स्वराज्यका सुख भोगता हुआ दिखाई देगा। आयरिश लोगोंमें थोड़ेसे दोष थे जिनके कारण उनके प्रयत्नके सफल होनेमें कुछ अड़चनें थीं। लेकिन जब उन दोषोंका पता लग गया और वे दूर किये जा सके तब भारतवासियोंको भी निराश नहीं होना चाहिए। यदि आयर्लैण्ड पर ईश्वर प्रसन्न हैं तो भारतवर्षसे वे अप्रसन्न नहीं हैं। दोनोंको देखते हुए मद्यपान आदिके दोष आयरिश लोगोंकी अपेक्षा भारतवासियोंमें अवश्य ही बहुत कम हैं। इस समय यदि हमें आवश्यकता है तो एकता, उद्योग और स्वार्थत्याग-की। यदि भारतवासियोंमें ये गुण आ गये तो आपसे आप इस बातका पता लग जायगा कि इंग्लैण्डके सम्बन्धसे देखते हुए हिन्दुस्तानके लिए स्वराज्य मिलनेमें आयर्लैण्डकी अपेक्षा अनुकूल बातें ही अधिक हैं।

आयर्लैण्डका होमरूल बिल पास हो गया है और भारतने वर्त्तमान यूरो-पीय युद्धमें साम्राज्यके प्रति जो भक्ति दिखलाई है और तन-मन-धनसे उसकी जो सहायता की है उसके बदलेमें वह आशा करता है कि युद्ध-की समाप्ति पर शीघ्र ही उसे भी स्वतंत्रता मिल जायगी। ईश्वर करे, उसकी यह भूषणभूत आशा सफल हो।

चरित्र-माला।

किसी देशके लोगोंके चरित्रकी कल्पना उस देशके प्रधान पुरुषोंके चरित्रसे की जा सकती है। और आयर्लैण्डके संबंधमें तो यह बात और भी ठीक उतरती है। क्यों कि आयर्लैण्डका इतिहास संस्थाका इतिहास नहीं वल्कि व्यक्तियोंका ही इतिहास कहा जा सकता है। आयरिश राष्ट्रके लोगोंके गुणों और दोषोंका वर्णन पीछे आठवें भागमें थोड़ा बहुत किया जा चुका है। अब आगेकी चरित्रमाला पढ़कर पाठक यह बात अच्छी तरह देख लें कि समष्टिरूप समाजके गुण दोष व्यष्टिरूपसे इन भिन्न भिन्न सुप्रसिद्ध पुरुषोंमें कैसे उतरे हुए थे। यह चरित्रमाला कालानुक्रमसे दी हुई है और इसका कारण स्पष्ट ही है। लेकिन एक दूसरी रीतिसे भी इन लोगोंका अनुक्रम लगाया जा सकता है, और वह राजकीय आन्दोलनकी पद्धतिकी दृष्टिसे होगा। इस अनुक्रमके तत्त्वके अनुसार पहले आइजिक बट, तब चार्लमाट, ग्रॅटन, तब डैनियल ओकानेल, तब पार्नेल, तब स्मिथ ओब्रायन, तब उल्फटोन और तब राबर्ट एमेट आते हैं। और बिलकुल शास्त्रशुद्ध, सरल और बाकायदा या न्यायानुमोदित आन्दोलन करनेवाले नेताओंसे लेकर बिलकुल ही उद्दण्डतापूर्ण और नीति-विरुद्ध आन्दोलन करनेवाले नेताओंकी एक माला तैयार हो जाती है। यह बात नहीं है कि वास्तविक चरित्र,

नीतिमत्ता, बुद्धिमत्ता अथवा देशभक्तिकी दृष्टिसे देखते हुए उक्त अनुक्रम सीधा अथवा उलटा ही लग सकता है। बल्कि जिस प्रकार किसी रंगकी भिन्न भिन्न छायायें होती हैं और उनमेंसे किसी एकके दूसरीकी अपेक्षा सप्रमाण अच्छी सिद्ध होनेके साधनके अभावमें रुचि-वैचित्र्यके कारण कोई छाया किसीको और कोई किसीको पसंद होती है उसी प्रकार यह भी संभव है कि उक्त चरित्रवालोंके भिन्न भिन्न पुष्प किसीको पसंद और किसीको नापसंद हों।

दधि मधुरं मधु मधुरं द्राक्षा मधुरा सुधापि मधुरैव।
तस्य तदेव हि मधुरं यस्य मनो यत्र संलग्नम्॥

यह तो मधुर पदार्थोंके संबंधकी बात हुई। लेकिन भोजनमें भी हम लोग यही बात देखते हैं कि किसीको खूब बढ़िया ताजा मीठा दही अच्छा लगता है और किसीको तीन दिनका बासी खट्टा मट्ठा। उक्त सब व्यक्तियोंमें, यह तो माना जा सकता है कि, देशभक्तिका धर्म्म साधारण था। लेकिन साथ ही यह बात भी माननी ही पड़ेगी कि उनके स्वीकार किये हुए भिन्न भिन्न मार्गोंके भेदका कारण रुचिवैचित्र्य-के सिवा और कुछ भी नहीं था। लेकिन ग्रॅटनने जो केवल न्याया-नुमोदित और वैध आन्दोलन किया उसका यह अर्थ नहीं है कि उसकी देशभक्ति बहुत ही निम्न कोटिकी थी, और राबर्ट एमेटने जो एक दम विप्लवतक दौड़ लगाई उसका यह अभिप्राय नहीं है कि उसकी देश-भक्ति बहुत श्रेष्ठ कोटिकी थी। मूर्खतापूर्ण और उतावलपनके साहसको जिस प्रकार अनेक अवसरों पर उज्ज्वल देशभक्तिका अनुचित श्रेय मिलनेकी सम्भावना होती है उसी प्रकार सच्ची और उचित दूरदर्शिता-पर कायरताके व्यर्थ दोषारोपणकी भी सम्भावना होती है। देशप्रेमकी पहचान मनुष्यके किसी एकाध कृत्यसे नहीं होती है। उसके समस्त जीवन-क्रमसे यह निश्चय किया जाता है कि उसमें वह गुण था या नहीं।

इस चरित्रमालामें आयर्लैण्डके इतिहाससे सन् १७४० से लेकर १८९० तकके अर्थात् १५० वर्षोंके सभी नेताओंका समावेश किया गया है, और उन सबके मेलसे एक प्रकारकी शृंखला भी बनगई है। चार्लमांट और ग्रॅटन दोनों समकालीन थे। ग्रॅटनकी प्रायः मध्य अवस्थामें उल्फटोन और एमेटके विद्रोह हुए। ग्रटनको डैनियल ओकानेलने देखा था और इन वृद्ध तथा तरुण देशभक्तोंमें बातें भी हुई थीं। स्मिथ ओब्रायन ओकानेलका प्रतिपक्षी और समकालीन था। आइजिक बट ओकानेलके सामने लड़का जान पड़ता था, पर तो भी वह उसका समकालीन था। और पार्नेलने आइजिक बटको उसकी उतरती अवस्थामें आयरिश पक्षके नेतृत्वसे पदच्युत किया था। अर्थात् इन आठ व्यक्तियोंका इतिहास आयर्लैण्डके १५० वर्षोंका इतिहास है।*

१ अर्ल आफ चार्लमांट।

अठारहवीं शताब्दीके अंतमें आयर्लैण्डके राष्ट्रीय आंदोलनकारियोंमें लार्ड चार्लमांट प्रधान नेता थे। इनका जन्म सन १७२८ में डबलिन नगरमें एक बड़े अमीर जमींदारके घरमें हुआ था। वाई काउन्टकी पदवी इनके घरानेमें कई पीढ़ियोंसे चली आती थी। बाल्यावस्थामें भी ये बड़े बुद्धिमान्, विद्याप्रेमी और गुणग्राहक थे। अपनी युवा अवस्था इन्होंने सारे योरपमें प्रवास करनेमें बिताई थी। २६ वर्षकी अवस्थामें इन्होंने डबलिन विश्वविद्यालयमें एल० एल० डी० की उपाधि पाई थी। उसी समय ये आर्मी प्रांतके गवर्नर भी बनाये गये थे। लेकिन ये हुकूमत चलानेकी अपेक्षा लोकसेवा करना अधिक उत्तम समझते थे; अतः तत्कालीन आयरिश लिबरलपक्षमें सम्मिलित हो गये। सन् १७६० ई० में आय-

* पुस्तक बढ़ जानेके भयसे तथा अन्य कई कारणोंसे ये जीवनियाँ इस अनुवादमें अविकल नहीं दी जा सकीं; इनके संबंधकी मुख्य मुख्य बातें संक्षेपमें ही दे दी गई हैं। अनुवादक।

लैण्डके उत्तर भागमें जो बलवा हुआ था, उसमें इन्होंने अपनी थोड़ीसी सेना लेकर बेलफास्ट नगरकी रक्षामें अच्छी सहायता दी थी। कैथोलिक लोगोंके साथ इनका व्यवहार बहुत ही मातृभावयुक्त और प्रेमपूर्ण होता था। इन्होंने उन्हें सैनिक शिक्षा दिलवाने तथा सेनामें भरती करानेके लिए बहुत प्रयत्न किया था। सन् १७६२ ई० में जब फिर उत्तर आयर्लैण्ड-में प्रोटेस्टेण्टोंने बलवा किया तब इन्होंने राजपक्षको अच्छी सहायता दी थी। उसीके उपलक्षमें इन्हें अर्लकी पदवी मिली थी। आयरिश पार्लमेण्टके सुधार कराने तथा उसके सभासदोंकी संख्या और अधिक बढ़वानेके प्रयत्नमें भी इन्होंने, बिना राजपक्षके असंतोष आदिका विचार किये, अच्छी सहायता दी थी। सन् १७७३ से ये अपना सारा समय आयर्लैण्डमें ही बिताने लगे थे। उस समय आयर्लैण्डके प्रायः सभी निवासी मिलकर स्वतंत्र होनेका उद्योग करने लगे थे। जब आयर्लै-डकी सेना अमेरिकामें लड़नेके लिए भेजी गई थी तब आयर्लैण्डमें साठ हजार ऐसे स्वयंसेवकोंकी सेना खड़ी की गई जिसमें अच्छे अच्छे नेताओंको बड़े बड़े पद मिले थे। इस सेनाके सैनिकोंने अपने देशको विदेशियोंके आक्रमणसे बचाने और साथ ही अपने देशको दासत्वसे मुक्त करनेके विचारसे हथियार उठाये थे। अर्ल चार्लमाण्ट इस सेनाके प्रधान नायक थे और जब तक वह सेना रही तब तक उसी पद पर रहे। इन्हींके प्रयत्नसे सन् १७८२ में आयरिश पार्लमेण्ट स्वतंत्र हुई थी और व्यापारसंबंधी कानून रद हुए थे। कैथोलिक लोगोंको स्वतंत्रता देनेके संबंधमें आयरिश नेताओंमें जो मतभेद हुआ था उसके कारण स्वयंसेवकोंकी यह सेना बिना अपना काम पूरा किये ही टूट गई और साथ ही चार्लमांटकी अपने परम मित्र और प्रधान सहायक ग्रेटनके साथ अनबन हो गई; नहीं तो आयर्लैण्डमें संभवतः उन्हीं दिनों पूर्ण स्वराज्य स्थापित हो गया होता। सन्

१७९१ ई० में अधिकारियोंसे मनमुटाव हो जानेके कारण चार्लमाण्टने आर्मोकी गवनरीसे इस्तेफा दे दिया। लिबरलोंके 'व्हिग क्लब' में भी चार्लमेण्टने बहुत कुछ काम किया था। लेकिन फ्रान्सकी राज्यक्रांतिका चार्लमांटके मन पर कुछ उलटा ही परिणाम पड़ा, इसी लिए ये कैथोलिक लोगोंको स्वतंत्रता देनेके कुछ विरोधी हो गये थे। अंतमें देशसेवाके कामोंमें भी यथेष्ट सफलता न मिलनेके कारण, इनका उत्साह भंग हो गया और ये उसमें बहुत ही कम योग देने लगे। लेकिन सन १७९८ वाले विद्रोहके कारण जब देशकी बहुत दुर्दशा हुई तब ये बहुत दुःखी हुए थे। उस समय ये वृद्ध हो गये थे, अतः देशसेवाका कोई विशेष कार्य्य नहीं कर सके। उसी अवसर पर १७९९ में इनका देहांत हो गया। अपनी विद्या, धन, स्वतंत्रता और सामाजिक उच्च स्थिति आदिका देशसेवाके कामोंमें इन्होंने जितना उत्तम और अधिक उपयोग किया वह केवल आदरणीय ही नहीं बल्कि अनुकरणीय भी है।

२ हेनरी ग्रॅटन।

पूर्णतः नियमानुमोदित रीतिसे आन्दोलन करनेवाले हेनरी ग्रॅटनका जन्म सन १७४६ में हुआ था। इनके पिता जान ग्रॅटन राजपक्षके थे और प्रजापक्षीय आन्दोलनके विरोधी थे। बाल्यावस्थामें हेनरी ग्रॅटन बड़े ही परिश्रमी, बुद्धिमान, दृढ़निश्चयी और तेज पर कुछ डरपोक थे। अपना डर दूर करनेके लिए ये रातको कब्रिस्तान आदि भयानक स्थानोंमें जाकर बैठा करते थे। इन्होंने आरम्भमें ग्रीक और लेटिन भाषाओंका बहुत अच्छा अभ्यास आयर्लैंडमें ही किया था। इनकी युवावस्थाके समय डा० ल्यूकस और हेनरी फ्लड आदि नेता काम करते थे। उस समय फ्लडके सम्बन्धमें इनके मनमें विशेष आदर और प्रेम था; पर आगे चलकर ये दोनों प्रतिपक्षी या परस्पर विरोधी हो गये

थे और पार्लमेंटमें दो पक्षोंके नेता होकर खूब लड़ते झगड़ते थे। हेनरी ग्रैटनका प्रजापक्षमें चला जाना उनके पिता जान ग्रैटनको अच्छा न लगा, जिससे बाप-बेटेमें अनबन हो गई और बापने अपनी मिल-कियत परसे बेटेकी वरासत रद्द कर दी। सन १७६७ में ग्रैटन बैरिस्टरी पढ़नेके लिए विलायत गये, पर वहाँ ये बैरिस्टरीकी पढ़ाईमें अधिक ध्यान नहीं देते थे, बल्कि बहुतसा समय पार्ल-मेंटके व्याख्यान सुननेमें बिताते थे और वक्तृत्वका अभ्यास करनेके लिए चाँदनी रातमें किसी पेड़ या पत्थरके सामने खड़े होकर व्याख्यान दिया करते थे। इससे कोई कोई इन्हें पागल भी समझते थे। अन्तमें बैरिस्टरीकी परीक्षा देकर सन १७७२ में ये आयर्लैण्ड लौट आये। पर वकालतमें इनका मन नहीं लगता था, इससे पहला मुकद्मा ये हार गये और इन्होंने अपने मुवक्किलको आधी फीस लौटा दी और डबलिन छोड़कर कहीं एकान्त-वास करना निश्चय किया। पर शीघ्र ही आकस्मिक कार-णोंसे इन्हें राजनीतिमें प्रवेश करना पड़ा, जिससे एकान्तवासका विचार छूट गया।

सन १७७५ में चार्लमांटकी सहायतासे पार्लमेण्टके चुनावमें ये भी आ गये। फ्लड मंत्रिमण्डलमें चले गये और पार्लमेण्टमें उनका स्थान इन्हें मिला। आरम्भमें ही इन्होंने पार्लमेण्टमें अच्छी तरह अपनी योग्यता सिद्ध कर दी। उस समय इंग्लैण्ड और आयर्लैण्डमें झगड़ा चल रहा था। व्यापार-सम्बन्धी कानूनोंसे दुःखी होकर आयरिश लोगोंने अँग-रेजी मालका बहिष्कार आरम्भ कर दिया था। गुप्त रूपसे कुछ लोग विद्रोहकी चिन्तामें थे; स्वयंसेवकोंकी पलटनें तैयार हो गई थीं और सब लोग व्यापारसम्बन्धी कानून रद्द करनेके लिए एकमत हो गये थे। उस समय ग्रैटनने नियमविरुद्ध आन्दोलनका खूब विरोध किया था। सौभाग्यवश रक्तपात नहीं हुआ और व्यापार-सम्बन्धी कानून रद्द हो

गये। पर लोगोंने समझा कि ये कानून स्वयंसेवकोंके तलवार खींचनेके कारण रद्द हुए हैं, जिससे उनका उत्साह बढ़ गया और उन्होंने चाहा कि किसी प्रकार यह भी निश्चित हो जाय कि भविष्यमें फिर कभी ये कानून जारी न होंगे। इसके लिए वे अपनी पार्लमेण्टके अधिकार बढ़ाकर उसे स्वतंत्र करना चाहते थे। ग्रॅटनका मत भी उस समय ऐसा ही था, पर कुछ राजनीतिज्ञ उस समय शान्त रहकर केवल अँगरेजोंके प्रति कृतज्ञता ही प्रकट करना चाहते थे। पर यह उन लोगोंके विचार नहीं सुनना चाहते थे, इससे पार्लमेण्टकी छुट्टियोंमें डबलिन छोड़कर एकान्तवास करनेके लिए दूर चले गये। ये कहते थे कि लोग कृतज्ञता अवश्य प्रकट करें, पर उसके लिए अपनी भावी उच्चाकांक्षायें न छोड़ दें।

सन् १७८१ में इन्होंने पहले पहल पार्लमेण्टकी स्वतंत्रताका प्रश्न आयरिश पार्लमेण्टमें उठाया। लेकिन बिना सेवकोंकी सहायताके उन्हें सफलताकी आशा नहीं थी; इसलिए १ फरवरी सन् १७८२ को उन्होंने डबलिनमें स्वयंसेवकोंके प्रतिनिधियोंकी एक सभा की जिसमें १४३ संस्थाओंके २४४ प्रतिनिधि आये थे। उस सभामें पार्लमेण्टकी स्वतंत्रता और कैथोलिक लोगोंके अधिकारके सम्बन्धमें प्रस्ताव पास हुए थे। इसके उपरान्त १६ अप्रैल सन् १७८२ को ग्रॅटनका पार्लमेण्टकी स्वतंत्रताके सम्बन्धका प्रस्ताव आयरिश पार्लमेंटमें पास हुआ। उसदिन आयर्लैण्डके लोगोंमें खूब एकता दिखाई दी। लेकिन जब ब्रिटिश पार्लमेण्ट इस बातको मंजूर न करती तबतक इसका फल ही क्या हो सकता था? पर सौभाग्यवश उस समय ग्रॅटनका परममित्र फाक्स ब्रिटिश मंत्रि-मण्डलमें था और आयर्लैण्डका स्टेट सेक्रेटरी था। ग्रॅटनने एक निजके पत्रमें फाक्सको लिखा कि यदि ब्रिटिश पार्लमेंट हमारी पार्लमेंटको स्वतंत्रता दे तो ठीक ही है, नहीं तो बड़े दुःखसे मुझे स्वयंसेवकोंको हथियार उठानेके लिए कहना पड़ेगा। फाक्स स्वतंत्रताका पक्षपाती

और उदार था। उसके कहनेसे ब्रिटिश पार्लमेण्टने आयरिश पार्लमेण्टकी स्वतंत्रता स्वीकृत कर ली जिससे आयर्लैण्डमें चारों ओर आनन्द फैल गया और लोगोंने तरह तरहसे खूब खुशियाँ मनाईं। आयरिश पार्लमेंटने ग्रॅटनको उसके उपकारके बदलेमें पचास हजार पाउण्ड देना निश्चय किया। ग्रॅटन यह रकम नहीं लेना चाहते थे, पर जब उनके मित्रोंने उन्हें बहुत समझाया कि तुम वकालत तो करते ही नहीं, केवल देशका कार्य्य करते हो, अतः तुम्हारे निर्वाहका भी तो कोई उपाय होना चाहिए; तब उन्होंने वह रकम ले ली और उससे जमींदारी खरीद ली। इसके उपरान्त शीघ्र ही उनका विवाह भी हो गया।

उस समय उनकी अवस्था छत्तीस वर्षकी थी और पार्लमेण्टमें प्रविष्ट हुए उन्हें केवल सात वर्ष हुए थे। पर इतने ही समयमें वे बहुत अधिक लोकप्रिय हो गये थे। उस समय लोगोंने उनका नाम 'नई स्वतंत्र पार्लमेण्टका जनक' रक्खा था। पर आगे चलकर उनकी यह लोकप्रियता घट गई। कुछ लोग उनसे बुरा मानने लगे और उनका महत्त्व कम करनेके उपायोंमें लगे। उनका कहना था कि इस स्वतंत्रताको हम तभी सच्ची स्वतंत्रता समझेंगे जब ब्रिटिश पार्लमेण्ट स्पष्ट रूपसे कह दे कि आयरिश लोगोंके लिए कोई कानून बनानेका अब हमें बिलकुल अधिकार नहीं है और आयरिश पार्लमेण्ट पूर्णरूपसे स्वतंत्र है। ग्रॅटनकी बढ़ती हुई लोकप्रियता देखकर फ्लड भी उनसे ईर्ष्या करने लगा और उसके विरोधियोंमें मिल गया। इसमें उसका एक और अच्छा उद्देश्य भी था। वह चाहता था कि तपे हुए तवे पर एक और रोटी पक जाय। पार्लमेण्टकी स्वतंत्रता इसी समय और भी अधिक दृढ़ और स्थायी हो जाय। लेकिन इस तवेको तपानेके लिए उसने लोकमतकी आग उतनी नहीं सुलगाई थी, जितनी ग्रॅटनने सुलगाई थी। वह ग्रॅटनके तपाए हुए तवे पर ही रोटी पकाना चाहता था। कानूनकी दृष्टिसे देखते हुए उसका पक्ष अवश्य

सयुक्तिक था। क्योंकि यदि ब्रिटिश पार्लमेण्ट सचमुच आयरिश पार्लमेण्टको स्वतंत्र ही करना चाहती थी तो वह उस आशयका एक बिल क्यों न पास कर देती कि अब हमें आयर्लैण्डके सम्बन्धमें कोई कानून बनानेका अधिकार नहीं है। पर ग्रैटनका कहना यह था कि—"पुराना कायदा रद्द करने और फ्लडके कथनानुसार नया कायदा बनानेका फल एक ही है। हमारा काम तो हो ही गया है; अब ब्रिटिश पार्लमेण्टसे स्पष्ट शब्दोंमें पराभव स्वीकार कराना ठीक नहीं है। पहली बातसे तो खाली उसके हाथसे अधिकार निकला, पर दूसरी बातमें सम्भव है कि वह अपना अपमान समझे। कानूनकी दृष्टिसे फ्लडका कहना ठीक हो सकता है, पर व्यवहारकी दृष्टिसे मेरा ही कथन अधिक सयुक्तिक है। यह झगड़ा सालभर तक चलता रहा। पहलेकी तरह स्वयंसेवकोंका आन्दोलन आरम्भ हुआ, सभायें और प्रार्थनायें होने लगीं और उन सबका परिणाम भी अच्छा हुआ। सन् १७८३ में ब्रिटिश पार्लमेण्टने एक बिल पास करके आयरिश पार्लमेण्टकी स्वतंत्रता स्वीकृत कर ली और इस बातकी घोषणा भी कर दी।

पर आयरिश लोग इस क्रान्तिका फल अधिक दिनोंतक न भोग सके। कुछ सभासद ही आयरिश पार्लमेंटका अनिष्ट करने लगे। इसके अतिरिक्त आयरिश पार्लमेंटकी लगाम पहलेकी तरह कुछ न कुछ अँगरेजी मंत्रि-मण्डलके हाथमें ही रही। मंत्री लोग घूस आदि देकर अपना काम निकाल लेते थे। आयरिश हाउस आफ लार्ड्सके सभासद इंग्लैंडके राजाके द्वारा ही नियुक्त होते थे। छोटे प्रान्तोंमें जहाँ केवल दस पाँच मतदाता होते थे वहाँ किसी न किसी तरह राजपक्षके अनुकूल सभासद चुनवा लिये जाते थे। उसी समय आयरिश पार्लमेंटके सुधारका आन्दोलन आरम्भ हुआ। इस आन्दोलनका उद्देश्य यह था कि यथासाध्य अधिक लोगोंको मत देनेका अधिकार मिले

और भिन्न भिन्न वर्गोंसे लोगोंकी संख्याके अनुसार प्रतिनिधि चुने जायँ। अर्थात् प्रतिनिधित्वका लाभ सब लोग उठा सकें, कुछ खास आदमियोंके हाथमें ही सत्ता न रह जाय। ग्रैटन, फ्लड, चार्लमांट आदि सभी इस सुधारके पक्षमें थे। पर फुटकर बातोंमें वे लोग सहमत नहीं होते थे। उसी अवसर पर ग्रैटन और फ्लडकी अनबन बहुत बढ़ गई और उन लोगोंने भरी पार्लमेंटमें एक दूसरेको ऐसी ऐसी बातें कहीं, जैसी कभी कहनी नहीं चाहिए। द्वन्द्वयुद्धकी नौबत आ जाती, पर लोगोंने बीच बचाव कर दिया। उस समय स्वयंसेवकोंका संचालन चार्लमांटके हाथमें था और ग्रैटनके साथ उसका सम्बन्ध छूट रहा था। ८ सितम्बर सन् १७८३ को स्वयंसेवकोंकी २७२ पलटनोंके पाँच सौ प्रतिनिधियोंका एक सम्मेलन हुआ, जिसमें पार्लमेण्टके सुधारका प्रस्ताव पास हुआ। उस प्रस्तावको पार्लमेंटमें उपस्थित करनेके लिए उस सम्मेलनने फ्लडको नियुक्त किया। इसप्रकार ग्रैटन पिछड़ गया। ग्रैटनने उदारतापूर्वक पार्लमेंटमें फ्लडका पक्ष लिया, पर पार्लमेंटने फ्लडकी सूचना स्वीकृत नहीं की। इसके उपरान्त स्वयंसेवकोंने कोई विशेष प्रयत्न नहीं किया, जिससे यह सुधार रह गया और उनके प्रति लोगोंका आदर भी घट गया। उधर ग्रैटन और चार्लमांटका स्नेह भी टूट गया। उस समय मंत्रिमंडलने आयर्लैंडमें ब्रिटिश सेना बढ़ानेके सम्बन्धमें सूचना दी थी, ग्रैटनने इसका समर्थन किया, जिससे वे लोगोंके चित्तसे बहुत उतर गये।

आयरिश पार्लमेण्टका सुधार नहीं हुआ और अन्तमें सन् १८०० में वह टूट गई। इस कामके लिए मंत्रिमण्डलने लोगोंको रिश्वतें तो दी ही थीं, पर साथ ही आयरिश लोगोंमें आपसमें अनबन भी बहुत थी और वे एक दूसरेका महत्त्व भी खूब घटा रहे थे। उस समय व्यापार-सम्बन्धी कानूनोंका झगड़ा फिर उठा। फ्लड चाहता

था कि देशी कारीगरीकी रक्षाके लिए विलायतसे आनेवाले मालपर टैक्स लगाया जाय। परन्तु ग्रैटन कहते थे कि यदि इंग्लैण्डके मंत्रि-मण्डलको पराभूत करना हो तो आयरिश लोगोंको लिबरल पक्षसे मेल रखना चाहिए और लिबरल पक्ष इस अनियंत्रित व्यापार–पद्धतिके पक्षमें है, इस लिए आयरिश लोगोंको उसका विरोध न करना चाहिए और जहाँतक हो सके इंग्लैंडसे मित्रता रखनी चाहिए। पर फ्लड कहता था कि, इंग्लैण्डके दोनों ही पक्ष बराबर हैं। ग्रैटन सरीखे मन्द-बुद्धि नेता यह नहीं समझते थे कि उनमेंसे कोई हमारा हित नहीं कर सकता; सब हमें मूर्ख बनाकर अपना काम निकालते हैं। फ्लडने आयर्लैण्डमें आनेवाले मालपर कर लगानेके सम्बन्धमें पार्लमेंटमें एक बिल उपस्थित किया पर वह नामंजूर हुआ। सुधारके प्रयत्न तथा इस बिलसे प्रधान मंत्री पिट चिढ़ गया और उसने पार्लमेंटको तोड़ देना निश्चय किया। जब पार्लमेंटके कामोंमें बराबर अड़चन पड़ने लगी तब लोगोंमें पार्लमेंटके सम्बन्धकी श्रद्धा और प्रीति घटने लगी। उधर पिट उसे तोड़नेकी चिन्तामें था। उसी समय फ्रान्समें क्रान्तिके चिह्न देखकर आयरिश लोगोंका धर्म्म–द्वेष कम होने लगा, और धर्म्मसे भी श्रेष्ठ राजनीतिके तत्त्वोंका प्रसार होने लगा। इससे मंत्रिमण्डल भय-भीत और सशंकित होने लगा। लोगोंमें वैमनस्य बनाये रखनेके लिए वह कहने लगा कि कैथोलिक लोगोंको उचित धार्म्मिक अधिकार देनेके लिए हम तैयार ही हैं। उस अवसर पर आयर्लैण्डके परम हितचिन्तक लार्ड फिट्ज विलियम वहाँके वाइसराय नियुक्त हुए और ग्रैटनने कुछ दिनोंतक मंत्रीके पद पर रहकर उसके साथ काम किया। पर इन दोनोंके रहते हुए भी उनके हाथों आयरिश पार्लमेण्टके द्वारा कोई ऐसा काम नहीं हुआ जिससे कैथोलिक लोगों अथवा आयरिश राष्ट्रका कोई हित होता। पिटसे अनबन हो जानेके कारण शीघ्र फिट्ज वि-

लियमको अपना स्थान छोड़ देना पड़ा। सन १८९२ में आयरिश पार्लमेंटमें कैथोलिक लोगोंको अधिकार देनेके सम्बन्धमें एक बिल उपस्थित हुआ था जो नामंजूर हुआ; इससे चिढ़कर कैथोलिक लोगोंने दंगा किया। अधिकारियोंने प्रोटेस्टेंटोंका पक्ष लेकर बिना जाँच किये या मुकदमा चलाये ही तेरहसौ कैथोलिकोंको देश-निकालेका दण्ड दिया। दूसरे वर्ष अधिकारियोंने अपने अधिकार बढ़ानेके सम्बन्धमें एक बिल उपस्थित करके पास करा लिया। ग्रैटन और उसके साथियोंने इस बिलका घोर विरोध किया था और कहा था कि ऐसे दमनकारक नियमोंसे देशका असन्तोष कम नहीं होगा। कैथोलिक लोगोंको समान अधिकार दिलानेके लिए ग्रैटनने फिर एक बिल पेश किया जो नामंजूर हुआ। दूसरे वर्ष उल्फटोनने विद्रोह किये और वह बहुतसे फ्रेंच जहाज लेकर आयर्लैण्ड पहुँचा। लेकिन तूफानसे वे जहाज नष्ट हो गये और आयरिश लोगोंने इस काममें उल्फटोनकी यथेष्ट सहायता नहीं की। ग्रैटन विद्रोहके विरोधी थे। वे अधिकारियोंसे कहते थे कि अब भी तो आँखें खोलो, पर अधिकारी कुछ सुनते ही न थे। इससे दुःखी होकर दूसरे वर्ष वे पार्लमेंट छोड़ कर घर जा बैठे। पर अधिकारी इतनेसे भी सन्तुष्ट नहीं हुए और यह प्रमाणित करनेके प्रयत्नमें लगे कि वे विद्रोहमें सम्मिलित थे। उन्हीं दिनों वे आर्थर ओकानेल नामक अपने एक मित्रके मुकदमेमें गवाही देनेके लिए इंग्लैण्ड गये। वहाँ उसके मित्रोंने यह समझकर उन्हें रोक रक्खा कि आयर्लैण्डमें अधिकारी उन्हें कहीं किसी आफतमें न फँसा दें। सन १७९९ में विद्रोह और उपद्रव शान्त होने पर वे फिर आयर्लैण्ड लौटे और बारहसौ पाउण्ड खर्च करके व फिर पार्लमेंटके मेम्बर बने। दूसरे वर्ष जब पिटने आयरिश पार्लमेंट तोड़नेका प्रयत्न किया तब उन्होंने उसके विरोधमें अपना सारा वक्तृत्व सारा बल और सारा आवेश खर्च कर दिया; परन्तु पिटकी रिश्वतोंसे

लोगोंके केवल मुँह ही नहीं बन्द हुए थे बल्कि कान भी बन्द हो गये थे। अतः ग्रॅटनकी बात किसीने न सुनी। उस समय ग्रॅटनने मंत्रिमंडलका सारा भण्डा फोड़ दिया था और उसकी रिश्वतकी कार्रवाई लोगों पर प्रकट कर दी थी। इससे चिढ़ कर मंत्रिमण्डलकी ओरसे कॉरी नामक एक मंत्रीने दूसरे ही दिन उसे द्वन्द्वयुद्धके लिए ललकारा। ग्रॅटन जैसे सभाशूर थे वैसे ही रणशूर भी थे। अतः उन्होंने द्वन्द्वयुद्धमें कॉरीको घायल करके छोड़ा। १ अगस्त सन् १८०० को ग्रॅटनकी निराशाकी हद्द हो गई। १६० विरुद्ध और ११७ अनुकूल सम्मातियोंसे आयरिश पार्लमेंटने आत्मघातका प्रस्ताव पास किया और इस तरह वह सुधरनेके बदले टूट गई। इसके उपरान्त चार वर्षतक घर बैठे रह कर अन्तमें उन्होंने ब्रिटिश पार्ली-मेंटमें प्रवेश करके कुछ काम करना ही अधिक उत्तम समझा और तद्-नुसार सन् १८०५ में वे ब्रिटिश-पार्लमेंटके सभासद भी हो गये। तबसे उनके मरनेके समय तक दो आन्दोलन होते रहे—एक कैथोलिक लोगोंको अधिकार दिलानेका और दूसरा आयरिश पार्लमेंट फिरसे स्थापित करनेका। पर ग्रॅटनके जीवनमें एक भी आन्दोलन सफल न हुआ। सन् १८०५ से १८१८ तक प्रतिवर्ष कैथोलिक लोगोंको अधिकार दिलानेके लिए कुछ न कुछ प्रयत्न होता रहा, पर उससे पार्लमेंटके सभासदोंके अनुकूल होनेके अतिरिक्त और कोई लाभ नहीं हुआ। सन् १८१४ में सफलताकी कुछ आशा हुई थी, पर ग्रॅटन और ओका-नेलमें इस सम्बन्धमें मतभेद हो गया कि कैथोलिक बिशपका चुनाव राजा करे या पोप; जिससे बिल पास न हो सका। सन् १८१८ में यह मतभेद मिटा और ग्रॅटन डबलिनवालोंकी ओरसे पार्लमेंटमें चुने गये। चुनावके दिन घर लौटते समय एक बदमाशने उन्हें लाठी मार दी, पर उन्होंने उदारतापूर्वक यह कहकर उसे छोड़ दिया कि यह सब धर्म्मा-न्धता है। सन् १८१० में फिरसे पार्लमेण्ट स्थापित करनेके लिए डबलि-नमें एक सभा हुई थी जिसमें ग्रॅटन भी थे; पर उस समय वे इतना

निराश हो गये थे कि उन्हें पार्लमेंटकी स्वतंत्रताकी आशा ही नहीं रह गई थी। सन् १८१८ के बादसे उनकी तबीयत बराबर खराब होती जाती थी, इसलिए उन्होंने पार्लमेंटके अध्यक्षसे बैठकर ही बोलनेकी आज्ञा ले ली थी; पर अन्तसमय तक उन्होंने अपने कर्त्तव्योंका पालन दृढ़तापूर्वक किया।

ग्रैटनमें ऊँचे दरजेके देशाभिमान, बुद्धिमत्ता, निस्पृहता और स्वार्थ-त्याग आदि अनेक गुण थे। सन् १८०० में जब आयरिश पार्लमेंट घूस देकर तोड़ी गई तब वे मंत्रियोंके लालचमें नहीं फँसे, बल्कि उन्होंने मंत्रियों तथा सभासदोंके उस अनुचित कार्य्यका निर्भय होकर स्पष्ट रूपसे घोर विरोध किया था और यथासाध्य भावी दुरवस्थाको रोकनेका प्रयत्न किया था। पार्लमेण्टमें उसकी बातोंका आदर और महत्त्व मंत्रियोंकी बातोंके समान होता था। विदेशियोंके शासनकालमें प्रजापक्षके किसी नेताको मंत्रीका पद नहीं मिलता, पर ग्रैटनको मंत्रीके पद पर रहनेका भी सौभाग्य प्राप्त हुआ था। वे अधिकारियोंकी अथवा प्रजाकी प्रीति सम्पादन करना नहीं चाहते थे और जो उचित समझते थे सो निर्भयतापूर्वक कह डालते थे। वे दुराग्रही भी नहीं थे और सदा पारस्परिक मत-भेद दूर करनेके प्रयत्नमें रहते थे। उनकी गिनती प्रधान आयरिश वक्ताओंमें होती है। उनका व्याख्यान अलंकारों और गूढ़ विचारोंसे पूर्ण और सुशिक्षितोंके सुनने योग्य होता था। आयरिश राजनीतिज्ञों और वक्ताओंमें उनका स्थान बहुत ऊँचा है।

---

३ उल्फटोन।

दंगा-फसाद करके राष्ट्रीय स्वतंत्रता प्राप्त करनेका प्रयत्न करनेवाले जो थोड़ेसे अविचारी आयरिश नेता हो गये हैं उल्फटोन उनमेंसे मुख्य था। इसका जन्म सन् १७६४ में हुआ था। शिक्षा समाप्त करते ही इस अलौकिक बुद्धिमान, उद्योगी, धीर, साहसी और कार्य्य-

कुशल व्यक्तिने राजनीतिमें प्रवेश किया और शीघ्र ही बड़े-बड़ोंसे बाजी मार ली। सन् १७९१ में उसने बेलफास्टमें 'संयुक्त आयरिश राष्ट्रमण्डल' नामकी सभा स्थापित की। यद्यपि वह स्वयं प्रोटेस्टेंट था, तथापि देश-हितके विचारसे उसने पहले नियमानुमोदित रीतिसे कैथोलिक लोगोंके कष्ट पहुँचानेवाले कानूनोंको रद् करनेका प्रयत्न किया। इससे सिद्ध होता है कि वह निरा अराजक या मूर्ख ही नहीं था, बल्कि स्वतंत्रताका सच्चा प्रेमी था। जब सामाजिक दुःख दूर करनेके काममें बाधायें होने लगीं तब वह उस समयके दूसरे महत्त्वपूर्ण राजनैतिक कामोंमें लगा। उसने देखा कि ग्रॅटनके लगातार पन्द्रह सोलह वर्षतक प्रयत्न करने पर भी अन्तमें पिटकी रिश्वतोंसे आयरिश पार्लमेंट नष्ट होना चाहती है। उसी समय फ्रान्स और अमेरिकाकी दशा देखकर उसके मनमें एक विलक्षण बात आई। उसने सोचा कि जो बात फ्रान्स और अमेरिकामें हुई वह आयर्लैंडमें भी हो सकती है। पर परिस्थितिका ठीक ठीक ज्ञान न होनेके कारण उसका यह सोचना भी ठीक नहीं उतरा। सन् १७९४ में एक वादविवादके समय मतभेद होनेके कारण 'संयुक्त आयरिश राष्ट्रमण्डल' से नरम दलके सब लोग उठकर चले गये और बाकी बचे हुए लोगोंने क्रान्तिकारक गुप्त सभा स्थापित की। इस सभामें डबलिनके टोन, थामस एमेट, विलसन रसेल, नेपर टेण्डी आदि अनेक युवक मुख्य थे। टोनके प्रोटेस्टेंट होनेके कारण अलस्टर आदि प्रान्तोंमें भी उसे बहुतसे अनुयायी मिले। नये सभासदोंको सभामें सम्मिलित होनेके समय कुछ शपथ खानी पड़ती थी और उनका उत्तरदायित्व उन्हें लानेवाले पुराने सभासदों पर होता था।

सन् १७९४ में फ्रांससे विलियम जैक्सन नामक एक प्रोटेस्टेण्ट धर्मोपदेशक आयर्लैण्ड पहुँचा, जिसका क्रान्तिकारक सन्देश 'संयुक्त राष्ट्रमण्डल' को बहुत पसन्द आया। पर जैक्सन ओछा था, उसने

सब बातें कोथेन नामक एक व्यक्तिसे कह दीं जिससे पुलिसको खबर लग गई। अप्रैल सन् १७९४ में उसे फाँसी देना निश्चय हुआ, पर फाँसीसे पहले ही उसने विष खाकर आत्महत्या कर ली। उल्फटोनको भी फाँसी मिलती, पर वह अमेरिका भाग गया और वहाँ गुप्त रूपसे अपना काम करने लगा। वहाँ बसे हुए आयरिशोंसे उसे खूब सहायता मिली। उसने फिलाडेल्फियासे फ्रेंच राजमण्डलके साथ पत्र-व्यवहार आरम्भ किया और उसे सुझाया कि यदि फ्रेंच सेना आयर्लैण्ड जाय तो वहाँके लोग भी उपद्रव खड़ा कर देंगे। इसके बाद वह अपनी स्त्रीके साथ फ्रान्स चला आया और वहाँके युद्ध-मंत्री कार्नोसे मिलकर उसे विश्वास दिला दिया कि यदि केवल बीस हजार फ्रेंच सेना भी आयर्लैण्ड पहुँच जाय तो वहाँके लोगोंसे उसे यथेष्ट सहायता मिलेगी और आयर्लैण्ड स्वतंत्र हो जायगा। तदनुसार १६ दिसंबर सन् १७९६ को पन्द्रह हजार सेना और आयरिश लोगोंके लिए यथेष्ट हथियार लेकर ब्रेस्टसे छोटे बड़े तीस फ्रेंच जहाज आयर्लैण्डकी तरफ चल पड़े। फ्रांसीसी सेनामें उल्फटोन एडज्युटेण्ट जनरल बनाया गया और जहाजोंका प्रधान अधिकारी एडमिरल हैच था। यदि यह सारी सेना आयर्लैण्ड पहुँच जाती तो सम्भव था कि टोनके मनकी बात हो जाती, पर फ्रेंच बेड़ा दो भागोंमें विभक्त होकर एक दूसरेसे छूट गया। एक भाग टोन और हैचके साथ बैन्ट्रीबे नामक उपसागरमें जाकर बहुत दिनोंतक ठहरा रहा और वहाँ यह सोचा जाने लगा कि इसमेंके छः सात हजार आदमी किनारे पर उतर कर अपना कार्य्य आरम्भ करें या नहीं। इतनेमें बड़ा भारी तूफान आया और जहाजोंको फ्रान्स लौटना पड़ा। सन् १७९७ में टोनके फिरसे प्रयत्न करने पर डच लोगोंके प्रजासत्ताक मण्डलने पहलेके बराबर ही सेना और जहाज उसे दिये; परन्तु इस बार भी तेज उलटी हवा बहनेके कारण कुछ न हुआ।

तब फिर उसी साल फ्रान्सने इंग्लैण्ड पर आक्रमण करनेके लिए सेना तैयार की और जनरल बोनापार्टको उसका सेनापति बनाया। उस समय टोन और बोनापार्टमें बहुत सी बातें हुई थीं, पर कई कारणोंसे इंग्लैण्ड पर आक्रमण नहीं हुआ और बोनापार्ट अपनी वही सेना लेकर मिस्र पर आक्रमण करनेके लिए चला गया। उधर विद्रोहकी आशंका देखकर आयर्लैण्डके अधिकारियोंने लार्ड एडवर्ड फिडज-रल्ड और टोनके वहुतसे साथियोंको गिरिफ्तार किया। उस समय आयरिश खेतिहर भी बहुत दुःखी थे। जिस दिन बोनापार्ट मिस्रके लिए रवाना हुआ उसके तीसरे ही दिन आयर्लैण्डमें विद्रोह आरम्भ हुआ। उस समय टोनके कहनेसे जनरल हम्बर्ट नामक एक फ्रेंच सैनिक अधिकारी बिना अपने अधिकारियोंकी आज्ञाके ही एक हजार फौज लेकर आयर्लैंड जा पहुँचा और किनारे परके थोड़े-से अँगरेजोंको परास्त करके आगे बढ़ने लगा। आगे उसे बीस हजार अँगरेजी सेना मिली, जिससे वह स्वयं परास्त हो गया। इस पर फ्रान्सीसियोंने हारडी और टोनको पाँच हजार और सेनाके साथ आयर्लैंड भेजा। इस बेड़ेका अँगरेजी बेड़ेके साथ घोर युद्ध हुआ और अन्तमें फ्रान्सीसी बेड़ा परास्त हुआ। मुख्य जहाज पर टोन फ्रेंच सैनिक पोशाक पहनकर तोपें चलाता था। इससे किसीने उसको न पहचाना और सबने उसके साथ फ्रेंच सैनिक अधिकारीकी तरह बरताव किया; परन्तु दुर्भाग्यवश शीघ्र ही उसे उसके एक मित्रने पहचान लिया, जिससे उसके पैरोंमें बेड़ियाँ पहना दी गईं। लेकिन उसने फ्रेंच पोशाक इस लिए उतारकर फेंक दी जिसमें उसका अपमान न हो और यह कह कर लोहेकी बेड़ियोंको चूम लिया कि—“सन्मानात्मक सोनेकी सिकड़ियोंकी अपेक्षा स्वदेश-हितके लिए पैरमें पड़ी हुई बेड़ियाँ ही मुझे अधिक प्रिय हैं।”

१० नवम्बर सन् १७९८ को डबलिनके सैनिक न्यायालयमें उसका विचार हुआ और उसे फाँसी देना निश्चित हुआ । उसने अभियोगकी सब बातें स्वीकृत कीं और अपना लिखा हुआ इजहार धड़ाकेसे पढ़ सुनाया । उसका इजहार बहुत ही प्रेमपूर्ण और आवेशयुक्त था । उसका आशय था–" मैंने स्वदेशको स्वतंत्र करनेके लिए अवश्य युद्ध किया, परन्तु इसमें मेरा मुख्य उद्देश्य यह था कि देशके प्रचलित अत्याचार और गुप्त वध आदि बन्द हों । यदि मैं वाशिंगटनकी तरह यशस्वी होता तो कोई मुझे बदनाम नहीं करता । लेकिन केवल मेरे प्रयत्नके निष्फल होनेके कारण ही मुझे विद्रोही और गुप्त हत्यारा आदि कहना अनुचित होगा । " न्यायासनपर बैठे हुए सैनिक अधिकारी और टोनमें बहुतसे प्रश्नोत्तर हुए थे जिससे उसकी योग्यता प्रकट होती थी । कैथोलिक लोगोंके सम्बन्धमें उसने जो प्रेमभाव प्रकट किया था; उससे उसकी देशभक्तिकी व्यापकता और मनकी उदारता भी प्रमाणित होती है । उसने प्रार्थना की थी कि मुझे गोलीसे मारे जानेका सौभाग्य प्राप्त हो, परन्तु लार्ड कार्नवालिसने उसे फाँसी देना ही निश्चय किया । १२ तारीखको उसे फाँसी दी जानेको थी, पर उससे पहले ही रातको जेलकी अन्धेरी कोठरीमें उसने किसी प्रकार अपने गलेकी रक्तवाहिनी नली काट डाली जिससे रक्त बहनेके कारण वह प्रातःकाल ही मरणासन्न हो गया । उधर १२ तारीखको सबेरे ही प्रसिद्ध वक्ता और वकील क्यूरनने हाईकोर्टमें कहा कि यद्यपि टोन पर विद्रोह करनेका अभियोग है, तथापि उसका मुकदमा सैनिक न्यायालयमें होना कानूनके विरुद्ध है । हाईकोर्टने शेरिफके पास टोनको तुरन्त जेलसे लाकर कोर्टके सामने उपस्थित करनेकी आज्ञा भेजी । शेरिफने जेलमें जाकर देखा कि टोन जख्मी होकर पड़ा है । जब हाईकोर्टको यह बात मालूम हुई तब उसने

फाँसीकी सजा रद्द कर दी। सात दिनतक जीवित रहनेके उपरान्त १९ नवंबर सन् १७९८ के दिन जेलमें ही टोन मर गया। इस प्रकार आयर्लैण्डके एक उत्कृष्ट देशभक्तका अन्त हो गया।

टोनने पचीस वर्षकी अवस्थामें बैरिस्टरीकी परीक्षा दी थी; परन्तु परमेश्वरकी इच्छा थी कि वह बैरिस्टरी न करे और नौ वर्ष बाद सार्वजनिक काममें इस प्रकार अद्भुत और अकल्पित रीतिसे उसके जीवनका अन्त हो, और वही हुआ।

---

४ राबर्ट एमेट।

इसका जन्म सन् १७७८ में हुआ था। इसे बाल्यवस्थासे ही व्याख्यान देनेका बहुत शौक था, पर इसके विचार बहुत प्रखर थे इसलिए यह कालिजसे निकाल दिया गया। तब इसने सारे युरोपका प्रवास किया और बहुतसे राजकीय अपराधियोंसे भेंट की। सन् १८०० में जब आयरिश पार्लमेंट टूट गई तब यह फ्रान्स जाकर नेपोलियनसे मिला। नेपोलियनने इससे कहा कि जब फ्रान्स तथा इंग्लैण्डमें युद्ध आरम्भ होगा तब मैं अपनी सेना आयर्लैण्ड भेज दूँगा। १८०२ में यह आयर्लैण्ड लौट गया। जब युद्ध आरम्भ हुआ तब इसने बड़ी आशासे गोला-बारूद जमा किया। २३ जुलाई सन् १८०३ को इसने विद्रोह करना निश्चय किया था और तदनुसार डबलिनमें विद्रोह हुआ भी; पर और स्थानोंके लोग शान्त थे इस लिए घण्टे भरमें ही विद्रोह रोक दिया गया। उस दिन सन्ध्याको इसने प्रधान न्यायाधीश लार्ड किलवारडेनको मार डाला था। इसके बाद वह भाग गया और महीने भर तक लापता रहा। अपनी प्रेमिका प्रसिद्ध वकील क्यूरनाकी लड़कीसे मिलकर वह आयर्लैण्डसे भागना चाहता था, इसी बीचमें वह गिरिफ्तार हो गया।

उसने कोर्टके सामने जो भाषण किया था वह बहुत ही वक्तृत्वपूर्ण और धैर्य्ययुक्त था । २० सितम्बर १८०३ को उसे फाँसी दे दी गई। मरते समय उसने कह दिया था कि मुझे कीर्त्तिकी इच्छा नहीं है, इस लिए मेरी कब्र पर कुछ भी न लिखा जाय । इस लिए ऐसा ही हुआ ।

५ डेनियल ओकानेल ।

इसका जन्म ६ अगस्त सन् १७७५ को आयर्लैण्डके एक छोटेसे गाँवमें हुआ था । इसके पूर्वज कट्टर कैथोलिक थे । इसे उनकी अच्छी सम्पत्ति मिली थी। लड़कपनमें यह बहुत ही तेज और चलता था । इसने डेढ़ दिनमें वर्णमाला सीखी थी और दस वर्षकी अवस्थामें एक नाटक लिखा था । देशमें उच्च शिक्षाका प्रबन्ध न होनेके कारण सन् १७९१ में यह पढ़नेके लिए फ्रान्स गया । उस समय तक फ्रान्स-की राज्यक्रांति शान्ति नहीं हुई थी, इससे उसका कुछ अंश इसने भी अपनी आँखों देखा था । लेकिन उसमें इसे कुछ बदमाशी दिखाई दी, इस लिए यह राजपक्षके अनुकूल हो गया । सन् १७९३ में फ्रान्ससे लौट कर यह वकालत सीखनेके लिए इंग्लैंड गया और पाँच वर्ष बाद वहीं बैरिस्टरी करने लगा । पहले तो इसकी बैरिस्टरी नहीं चली, पर पीछे अच्छी चमक उठी। यह बहुत अच्छा वक्ता था और साथ ही मसखरा भी था । जिरह भी वह खूब करता था; इसलिए बहुत जल्दी सर्वप्रिय हो गया । अवसर पढ़ने पर वह हाकिमोंको फटकार भी देता था । धीरे धीरे उसकी प्रसिद्धि और सर्वप्रियता इतनी अधिक हो गई कि ‘ वकील ’ का अर्थ ही लोग ‘ डेनियल ओकानेल ’ करने लगे । अगर कोई किसीसे वकीलका घर पूछता, तो वह उसे ओकानेलका पता बतला देता था ।

अब वह राजनीतिकी ओर झुका। पर पहले उसका कोई निश्चित सिद्धान्त नहीं था। वह ग्रैटन, फ्लड और चार्लमाण्टका भक्त था; पर उधर उल्फटोन आदिकी ओर भी उसका मन कुछ कुछ खिंचता था; इसलिए वह निश्चय न कर सका कि मैं कौनसा पक्ष ग्रहण करूँ। पर पहले वह शपथ खाकर 'संयुक्त आयरिश मण्डल' नामक एक स्वातंत्र्यवादी सभाका सभासद हुआ। आरम्भमें ही उसे उस मण्डलकी कई बातें बहुत बुरी मालूम हुई और उसका जी उससे हट गया। उसी अवसर पर विद्रोह आरम्भ हुआ जिसमें बहुतसे लोग पकड़े जाने लगे। यदि वह बीमार होकर घर पर न पड़ा होता तो बहुत सम्भव था कि वह भी पकड़ा जाता। आराम होने पर वह उस मण्डलसे अलग हो गया। उसीसमय देशकी रक्षाके लिए कुछ देशवासियोंने स्वयंसेवकोंकी एक पलटन तैयार की थी; उसीमें वह भी शामिल हो गया।

विद्रोहके शान्त होने पर देशमें फिर नियमानुमोदित आन्दोलन आरम्भ हुआ। उस समय लोग कैथोलिकोंको समान अधिकार और स्वतंत्रता देनेके पक्षमें थे। उससमय जॉन किओघने इस सम्बन्धमें बहुत कुछ लोकमत तैयार किया था और कानूनोंके बन्धन भी कुछ ढीले कराये थे। जब वह बहुत वृद्ध हो गया तब उसका आदर भी कम हो चला। एक बार वह आयर्लैण्डवालोंकी ओरसे इंग्लैंड भी गया था; पर वहाँ आयर्लैण्डको केवल स्थानिक स्वराज्यके सम्बन्धमें कुछ अधिकार मिले जिससे वह लोगोंके मनसे उतर गया। तब उसका स्थान ओकानेलको मिला। ग्रैटन उस समय पार्लमेंटमें काम कर रहा था, ओकानेलने समाजमें काम करना आरम्भ किया। सन् १८११ तक वह आयर्लैण्डवालोंका सर्वमान्य नेता हो गया। उसने एक 'कैथोलिक एसोसिएशन' नामकी संस्था भी स्थापित की थी, जिसमें उसका बहुत कुछ खर्च हुआ था। सन् १८११ में अधिकारियोंने उस सभाको नियम-विरुद्ध

ठहराया था; जिसका विरोध एक बहुत बड़ी सार्वजनिक कैथोलिक सभाने किया था। सन १८१२ में कैनिंगने कैथोलिक लोगोंके सम्बन्धमें जो प्रस्ताव पार्लमेंटमें उपस्थित किया था उसके पक्षमें विरुद्ध पक्षकी अपेक्षा १२९ वोट अधिक थे, जिससे सिद्ध होता था कि इंग्लैंडका लोकमत कैथोलिक लोगोंके बहुत कुछ अनुकूल हो गया है। नेपोलियनका भाग्योदय होना भी एक प्रकारसे उसके बहुत कुछ अनुकूल था। उसकी सेनामें बहुतसे ऐसे लोग मिल गये थे जो इंग्लैण्डसे बहुत नाराज थे। उसमें आयरिश कैथोलिक लोग भी बहुत अधिक थे। पिट आदिको भय होने लगा कि कहीं ये लोग इंग्लैण्ड पर आक्रमण न करा दें इस लिए कैथोलिक लोगोंको सन्तुष्ट करनेका प्रयत्न होने लगा। पर राजा तृतीय जार्ज कैथोलिक लोगोंका बहुत विरोधी था। जो मंत्री कैथोलिक लोगोंके पक्षमें होते थे उन्हें वह मंत्रित्व पदसे अलग कर देता था। इसी लिए कैथोलिक लोगोंकी धार्मिक स्वतंत्रतामें इतना विलम्ब हुआ था। सन १८१३ में जब ग्रॅटनने पार्लमेंटमें बिल उपस्थित किया उस समय मुख्य प्रश्न यह उठा कि बिशपको राजा नियुक्त करे अथवा पोप। उस समय यदि कैथोलिक लोगोंने ग्रॅटनकी बात मान ली होती और राजाको ही बिशपकी नियुक्तिका अधिकार दिया होता, तो जो अधिकार उन्हें आगे चलकर पन्द्रह वर्ष बाद मिले थे वे बहुत पहले ही मिल जाते। लेकिन ओकानेलको आगे खड़ा करके कैथोलिक लोगोंने यह हठ किया कि बिशपको पोप ही नियुक्त करे। ग्रॅटन मंत्रियोंको अपनी ओर मिलाना चाहता था, इस लिए उसने ओकानेलकी बात नहीं मानी। तब उसने ग्रॅटनकी निन्दा करना आरम्भ किया। उधर मंत्रियोंने पोपके सलाहकारोंको मिलाकर यह आज्ञापत्र मँगवा लिया कि यदि कैथोलिक लोग पूरी स्वतंत्रता चाहते हों तो बिशपकी नियुक्तिका अधिकार राजाके हाथमें ही रहने दें। तब वे पोपके भी विरोधी हो गये

और कहने लगे कि स्वयं पोपको ही अपने अधिकार नष्ट करनेका कोई अधिकार नहीं है । पोपके सलाहकारोंमें कुछ लोग कैथोलिक लोगोंकी तरफके भी थे; इस लिए उन्होंने फिरसे प्रयत्न करके पहला आज्ञापत्र रद्द करा दिया। तबसे ओकानेल समझने लगा कि मेरी शक्ति अमोघ हो गई है ।

इतनेमें ही उधर युरोपकी परिस्थिति बिलकुल बदल गई । नेपोलियन परास्त हो गया और इंग्लैण्ड पर आक्रमण होनेकी आशंका न रह गई । तब मंत्रियोंने निश्चिन्त होकर कैथोलिक लोगोंसे कह दिया कि यदि तुम लोग आधे अधिकार नहीं लेते हो तो हम तुम्हें कुछ भी नहीं देते । और साथ ही कैथोलिक एसोसिएशनको नियमविरुद्ध बतला कर तोड़ दिया । इस प्रकार जो काम एक बार बिगड़ा उसके फिरसे बननेमें चौदह वर्ष लगे और इसके लिए इतिहासकारोंने ओकानेलको ही दोषी बतलाया है । पर ओकानेलकी ओरसे कहा जाता है कि उस समय इस झगड़ेको शान्त करना इष्ट नहीं था, बल्कि उसे चलाये चलना ही इष्ट था । क्योंकि यदि अधिकार पहले ही मिल जाते तो लोगोंमें उतना जोश न रह जाता और स्वतंत्र पार्लमेंट प्राप्त करनेकी ओर उनका ध्यान न जाता । लेकिन यह युक्तिवाद ठीक नहीं है; क्योंकि न तो मिलते हुए अधिकारोंको छोड़ देना ही ठीक है और न एक कामका जोश दूसरे काममें आ सकता है; और इस बातका अनुभव आगे चलकर स्वयं ओकानेलको भी हो गया था । अस्तु । इसी जोशको काममें लानेके लिए उसने फिरसे आयर्लैंडको स्वतंत्र करानेका प्रयत्न आरम्भ किया । उस समय वह पहला जोश काम न आया; उलटे पहले जो मत-भेद लोगोंमें हो गया था वह कुछ बाधक हुआ । यद्यपि देशकी स्वतंत्रताके सम्बन्धमें लोगोंमें उतना अधिक मत-भेद न था तथापि पहलेके मत-भेदके कारण लोगोंमें मेल नहीं होता था । कैथोलिक लोगोंके प्रश्नका

पीछा उस समय तक ग्रैटनने नहीं छोड़ा था और उसके अनुयायी देशके भिन्न भिन्न भागोंमें सभा कर रहे थे। फरवरी सन् १८१७ में ओकानेल-ने इसी प्रकारकी एक सभामें घुसकर उसके कामोंमें अड़चन भी डाली थी; पर उसका फल कुछ भी न हुआ। १८१७ में भी कैथोलिक लोगोंको कुछ भी न मिला।

दूसरे वर्ष डबलिनकी म्यूनिसिपैलटीके सम्बन्धमें बोलते समय उसके मुँहसे कुछ अपमानकारक शब्द निकल गये थे, इससे उसके डीएसटरी नामक एक सभासद्ने बिगड़कर ओकानेलको द्वन्द्व युद्धके लिए लल-कारा। पर ओकानेलने डरके मारे उसके दो तीन पत्रोंका उत्तर ही न दिया। तब डीएसटेरीने यह प्रसिद्ध किया कि ओकानेल जब मुझे रास्तेमें मिलेगा तब मैं बेतसे उसकी खबर लूँगा। तब ओकानेल द्वन्द्व-युद्धके लिए तैयार हो गया। डबलिनसे बारह मीलकी दूरी पर एकान्तमें दोनोंका द्वन्द्व युद्ध हुआ, जिसमें ओकानेलकी गोली डीएसटरीको लग गई। इस उपलक्ष्यमें उसके अनुयायियोंने खूब बाजे बजाये और दीपो-त्सव किया। दूसरे दिन डिएसटरीके शरीरसे शस्त्र-प्रयोग करने पर भी गोली न निकली, जिससे वह मर गया। इस पर ओकानेलको बहुत दुःख हुआ और उसने कसम खा ली कि आगे कभी मैं द्वन्द्वयुद्ध न करूँगा।

लेकिन उसने इस बातकी शपथ नहीं खाई थी कि आगे मैं कभी किसीको कोई कड़ी बात न कहूँगा; जिसके कारण कई बार उसके द्वारा लोगोंका अपमान हुआ और कई बार उसके साथ द्वन्द्व युद्धकी नौबत आई। यहाँ तक कि एक बार इंग्लैण्डके प्रधान मंत्री पील और ओकानेलमें भी द्वन्द्वयुद्धकी बारी आई थी; लेकिन द्वन्द्वयुद्ध नहीं हुआ। ओकानेलने कभी किसीका द्वन्द्वयुद्धसम्बन्धी निमंत्रण स्वीकार नहीं किया, जिससे लोग उसे डरपोक कहने लगे थे। पर तो

उसने इसकी परवा न की और आगे उसने कभी किसीसे न लड़नेका निश्चय स्थिर रक्खा।

सन् १८२० में ग्रॅटनकी मृत्यु हुई और पार्लमेण्टमें आयरिश नेता-की जगह प्लंकेट चुना गया। उस समय ओकानेल लोगोंको उपदेश देने लगा कि अधिकारियोंसे मिलकर काम करो; पर लोगोंने उसकी बात नहीं मानी। उसी अवसर पर राजा चतुर्थ जार्ज आयर्लैण्डमें आया था। और लोगोंके साथ कैथोलिक लोगोंने भी उसे एक मान-पत्र दिया था। उस समय ओकानेलने घुटने टेककर उसे माला पह-नाई थी। पीछेसे उसने राजाके आयर्लैण्डमें रहनेके लिए एक महल बनवानेके उद्देश्यसे एक फण्ड खोला था, पर उसमें कुछ भी धन न आया और न उसके इस कृत्यसे राजा ही प्रसन्न हुआ। क्योंकि ओकानेल जब लण्डनमें उस राजाके एक उत्सवमें गया था तब राजाने कुछ जोरसे कहा था—" अरे शैतान तू यहाँ कैसे आया ? "

सन् १८२३ में ओकानेलने गरीबोंको अपने साथ मिलानेके उद्देश्यसे एक नई सभा स्थापित की। पहले डेढ़ वर्ष तक तो उस सभामें कोई भूल कर भी न झाँकता था; पर पीछे उस सभामें बहुत सफलता हुई। प्रति सप्ताह प्रायः सात सौ पाउण्ड चन्दा जमा होने लगा। अब उसके भाषण नियमविरुद्ध भी होने लगे और वह कैथोलिक लोगोंको अपने अधिकार प्राप्त करनेके लिए समय पड़ने पर बलप्रयोगतक करनेका उपदेश देने लगा। १६ दिसंबर १८२४ वाले भाषणके लिए उस पर राजद्रोहका मुकद्दमा चला। पर उस भाषणके समय कोई सरकारी रिपोर्टर उपस्थित न था और पत्रों आदिके रिपोर्टरोंने तरह तरहके बहाने करके उसके विरुद्ध गवाही न दी, जिससे वह बच गया।

दूसरे वर्ष कैथोलिक लोगोंकी ओरसे जो डेपुटेशन इंग्लैण्ड गया था उसमें ओकानेल भी था। वहाँ उसके भाषण भी अच्छे हुए और आदर

भी खूब हुआ । ओकानेलकी स्थापितकीहुई एक सभा जब अधि-कारी तोड़ देते थे तब वह दूसरे नामसे एक और सभा स्थापित करता था। उस समय कैथोलिक फण्डमें पचास हजार पाउण्ड आ गये थे और आठ लाख आदमियोंके हस्ताक्षरसे एक प्रार्थनापत्र तैयार किया गया था। उस समय लार्ड कौनिंग जो कैथोलिक लोगोंकी ओरसे पार्लमेण्टमें लड़ रहे थे, चाहते थे कि कैथोलिक एसोसिएशनका काम उद्दण्डता-पूर्वक न हो; पर कैथोलिक लोग कुछ सुनते ही न थे। उसी अवसर-पर जब क्लेयर परगनेकी ओरके सभासद्का स्थान पार्लमेण्टमें खाली हुआ तब लोगोंने बहुत धूमधामसे उसके चुनावके लिए प्रयत्न किया। इसके लिए डबलिनमें लोगोंने बारह दिनमें चौदह हजार पाउण्ड जमा किये ! उस परगनेमें आठ हजार मतदाता थे। चुनावका काम पाँच दिन तक होता रहा। प्रबन्धके लिए वहाँ तीन सौ पुलिसके सिपाही और दो हजार सैनिक सिपाही रक्खे गये थे। पाँचवें दिन ओकानेलके प्रतिपक्षीने उम्मेदवारी छोड़ दी और उसकी जीत हुई। उस समय लोगोंने उसके खूब जूलूस निकाले और उसे खूब बधाइयाँ दीं। इसके बाद ही पार्ल-मेण्टने एक कानून बनाकर वह पुराना कायदा तोड़ दिया, जिसके अनुसार-कैथोलिक लोगोंको सभासद होनेके समय शपथ खानी पड़ती थी। पर ओकानेलका चुनाव उस कानूनके बननेसे पहले ही हुआ था। इसलिए जब उसने शपथ खानेसे इंकार किया तब उससे पार्लमेण्टसे निकल जानेके लिए कहा गया। उस समय उसने कुछ बहस भी की थी, पर उसके विरुद्ध अधिक मत आये। वह फिर आयर्लैण्ड पहुँचा और दो-बारा उसका चुनाव हुआ; और सन १८३० में वह पार्लमेण्टका सभा-सद हो गया। लेकिन इससे एक साल पहले ही कैथोलिक लोगोंको पूरी स्वतंत्रता मिल चुकी थी।

सन १८३१ में यह कानून बना कि अधिकारोंके लिए झगड़नेवाली कोई सभा स्थापित न हो सके। तब ओकानेलने तीन सौ आदमियोंको

अपने यहाँ भोजन करनेके लिए बुलाया। इस पर बहानेसे सभा करनेके अपराधमें उस पर मुकदमा चलाया गया। फैसलेसे पहले ही ओकानेल लण्डन गया। वहाँ उससे कहा गया कि यदि तुम स्वतंत्र पार्लमेण्टकी प्राप्तिके लिए प्रयत्न करना छोड़ दो तो तुमपरसे मुकदमा हटा लिया जाय। पर उसने यह बात नहीं मानी। उसी अवसर पर पार्लमेण्टके सुधारके सम्बन्धका (१८३२ वाला) बिल पार्लमेण्टमें उपस्थित था, जिस पर उसने बहुत ही अच्छा भाषण किया जिससे मंत्री लोग प्रसन्न हो गये। उधर अदालतने चतुराईसे फैसलेकी तारीख और भी बढ़ा दी। बीचमें ही सभा-विध्वंसक नियमकी मुद्दत खतम हो गई और उसके बाद वह मुकदमा उठा लिया गया।

इसके उपरान्त ओकानेलने टाइथ कर और प्रोटेस्टेण्ट धर्म्म-मण्डलके सम्बन्धमें आन्दोलन किया और लोगोंको उपदेश दिया कि टाइथ कर मत दो और अगर उसके लिए किसीकी जमीन नीलाम हो तो उसे मत खरीदो। लोगोंने भी ऐसा ही किया; जिसके कारण सन् १८३२ में एक ही जिलेमें इस करके सम्बन्धमें नियमितसे नौ हजार आधिक अपराध हुए जिनमेंसे दो सौ केवल खून थे। इसके बाद पार्लमेंटके चुनावके समय उसने मतदाताओंको उनके अधिकारों और कर्त्तव्योंके सम्बन्धमें बहुतसी बातें समझाईं और चुनावमें वह स्वयं, उसके दो लड़के और बीसियों साथी चुने गये। कैथोलिकोंके सुभीतेके लिए उसके उद्योगसे पार्लमेंटमें कई नये कानून तो बन गये, पर उनका बहुत दिनोंतक पालन नहीं हुआ। इसके साथ ही पार्लमेंटमें लोगोंके दमनके लिए भी बहुतसे नये नियम बने, जिनसे अधिकारियोंको सब तरहसे बल-प्रयोग करनेका अधिकार मिल गया।

सन् १८३४ में पार्लमेंटमें बहुतसे स्वातंत्र्यवादी आयरिश सभासद हो गये। उस समय ओकानेलने राजाके सन्मुख उपस्थित करनेके लिए

एक सूचना तैयार की और उसके सम्बन्धमें पार्लमेंटमें सात भाषण किये। उसका मुख्य तात्पर्य्य यही था कि आयलैंण्डको स्वतंत्र पार्लमेंट मिले; क्योंकि दोनों देशोंकी पार्लमेण्ट एक कर देनेसे आयलैंण्डका सरासर नुकसान और इंग्लैण्डका बहुत फायदा हुआ है। आप लोगोंके कर दूने हो गये और अबादी बहुत घट गई। कर्ज भी बढ़ गया और दरिद्रता भी बढ़ गई। आयलैंण्डकी दुर्दशाके सम्बन्धमें जाँच करनेके लिए अबतक साठ सबकमेटियों और एक सौ चौदह कमीशनोंकी नियुक्ति हुई, पर फल कुछ भी नहीं हुआ और अधिकारियोंने आयरिश लोगोंके साथ बिलकुल मनमाना व्यवहार किया। इसके अतिरिक्त अधिकारियोंने जानबूझकर कई विद्रोह होने दिये। आदि आदि। पर उसकी बातोंका फल कुछ भी न हुआ। उसके पक्षमें केवल ३८ और विपक्षमें ५२३ मत आये।

इसके उपरान्त उसे आयलैंडके 'अटर्नी जनरल' का पद मिलनेको था; पर वह उसे मिला नहीं। यदि मिलता तो वह अपने देशका बहुत कुछ कल्याण करता। राजाने ही उसे वह पद नहीं मिलने दिया। लार्ड मेलबोर्न प्रत्येक आयरिश प्रश्न पर उसकी सम्मति लेते थे और उसे बहुत मानते थे। इसी लिए उसके विपक्षी उस समयके मंत्रिमण्डल-को दिल्लगीसे 'ओकानेलका मंत्रिमण्डल' कहा करते थे। आयलैंडमें अधिकारियोंकी नियुक्ति भी बहुधा उसीकी सिफारिशसे होती थी। लेकिन पहले तो एक बार उसने कहा था कि मैं लिबरल या कन्सर्वेटिव किसी दलका पक्ष नहीं लूँगा; पर पीछे उसने लिबरल लार्ड मेलबोर्नका बहुत पक्ष लिया था। इससे आयरिश लोग उसने नाराज हो गये थे और उसका विश्वास न करते थे। इससे उन लोगोंमें आपसमें ही फूट हो गई। उस पर तरह तरहके आरोप होने लगे। तब ओकानेलने अपनी प्रतिष्ठा बनाये रखनेके लिए दूसरा उद्योग आरम्भ किया। वह

लोगोंको इंग्लैण्डके मालका बहिष्कार करनेका उपदेश देने लगा। कुछ दिनोंतक बहिष्कार हुआ भी, लेकिन आयर्लैण्डका माल महँगा और खराब होता था इसलिए उसे कोई लेता न था। उससमय कुछ अँगरेज व्यापारियोंने अपने माल पर 'आयर्लैण्ड' की छाप लगाकर भी उसे वहाँ बेचा था।

लेकिन सन् १८४० के बाद चार वर्ष तक उसके जीवन-नाटकका मनो-रंजक और शिक्षा-प्रद अंक खेला गया। सन १८४० के लगभग उसकी लोकप्रियता बिलकुल नष्ट हो चुकी थी। उस समय उसने 'रिपील एसोसिएशन' स्थापित की, जो एक वर्ष बाद बहुत अधिक लोकप्रिय हो गई। उसमें प्रति सप्ताह दो हजार पाउण्ड चन्दा आने लगा और उसके कार्य्यालयमें अड़तालीस आदमी काम करने लगे! बहुतसे लोग आने लगे। पाँच हजार आदमियोंके बैठनेके लिए किराये पर एक जगह ली गई। सभाने अपनी निजकी पुलिस रक्खी और निजके न्यायालय भी स्थापित किये। लोग उसके सभासद होनेमें अपनी प्रतिष्ठा समझने लगे। देशमें तैयार होनेवाली अच्छी अच्छी चीजोंको सभाकी ओरसे सनदें दीजाने लगीं। बहुतसे नये स्वदेशी नाम, झण्डे, पद, काव्य और अनेक दूसरे पदार्थ तैयार होने लगे और बड़ी बड़ी सभाये होनें लगीं। उनमें दस पाँच हजार आदमियोंका आना तो कोई बड़ी बात ही नहीं थी। तारागढ़में जो सभा हुई थी, कहा जाता है कि उसमें साढ़े सात लाख आदमी आये थे! पर सब लोग बहुत ही शान्तिसे रहते थे और किसी प्रकारका दँगा-फसाद नहीं करते थे। उस सभामें सैकड़ों पादरी एक स्थान पर ईश्वरप्रार्थना ही करते थे। दिन भर सभा होती रही। तीसरे पहरे दस हजार सवारोंके साथ ओकानेल वहाँ पहुँचा। सभाकी भीड़मेंसे होकर मंचतक पहुचनेमें उसे दो घण्टे लगे थे! पहले तो वह आय-र्लैण्डका अनभिषिक्त राजा माना जाता था; पर इस सभामें उसका

अभिषेक भी हो गया और उसके सिरपर मुकुट भी रख दिया गया ! उसके जीवनमें यही उसका सबसे बड़ा और अन्तिम सम्मान था।

ऐसी सभामें भाषण करते समय नियमका ध्यान रहना बहुत ही कठिन होता है; पर बड़ी ही चतुराईसे उसने नियमकी सीमाका उल्लंघन न होने दिया। उस समय लोगोंने समझ लिया कि स्वयं तो कभी दंगा-फसाद नहीं करना चाहिए; पर यदि अधिकारी अन्यायपूर्वक बलप्रयोग करें तो आत्म-रक्षाके लिए उन्हें छोड़ना भी न चाहिए; पर साथ ही लोग यह भी समझ गये थे कि कभी न कभी अधिकारियोंसे सशस्त्र होकर हमें लड़ना ही पड़ेगा। इस लिए समाचारपत्रोंतकमें अस्त्र-शस्त्र संग्रह करने, लड़ाईके लिए उपयुक्त स्थान चुनने और मोरचे आदि बाँधने तककी चर्चा होने लगी। लोग समझते थे कि अधिकारी अन्यायपूर्वक बलप्रयोग करेंगे ही और ओकानेल आज्ञा देगा लड़ जाओ, छोड़ो मत। लेकिन उन बेचारोंको क्या मालूम था कि ओकानेल पूरा शान्ततावादी है, वह कभी ऐसा न करेगा।

लेकिन लोक-क्षोभका तार चढ़ाना जितना सहज होता है उसका उतारना उतना सहज नहीं होता। इस लिए लोग शान्त नहीं हुए। सात आठ महीने तक सहन करनेके उपरान्त अधिकारियोंने इंग्लैण्डमें शिकायत भेजी और पार्लमेण्टमें प्रश्न होने लगे। सरकारने कह दिया कि चाहे जो हो, हम स्वतंत्र पार्लमेण्ट नहीं देंगे। साथ ही विद्रोहकी आशंकासे उसे दमन करनेके लिए सरकारने वहाँ पैंतीस हजार सेना भी भेज दी और किलों और बुरजों आदि पर तोपें चढ़ने लगीं। उस समय ओकानेलने समझ लिया था कि सभाके अधिवेशन करना धोखेसे खाली नहीं है; पर उन्हें बन्द करनेके लिए उसे कोई कारण नहीं मिलता था। तब उसने निश्चय किया कि क्लाण्टर्फमें एक अभूतपूर्व सभा करके तब इसके अधिवेशन बन्द कर दिये जायँ। अधिकारियोंने यद्यपि समझ

लिया था कि यह सभा अन्तिम है, पर तो भी उसे रोकनेके लिए उन्होंने गुप्तरूपसे आज्ञा दे दी थी। सभाका जो कार्य्य-क्रम था उसमें एक यह बात भी थी कि स्वयं-सेवक सवारोंकी पलटनोंको यह बतलाया जायगा कि सभाके अवसर पर क्या क्या करना चाहिए। बस, सरकारी वकीलोंने कह दिया कि इस प्रकार सैनिक ठाठ दिखाकर सरकारको लोग डराना चाहते हैं। पर यदि पहलेसे ही उसे रोकनेका प्रयत्न किया जाता तो बात बिगड़ जाती। इस लिए सभासे ठीक एक दिन पहले सन्ध्याके समय उसे रोकनेकी आज्ञा निकली। इस बातकी कुछ सुनगुन ओकानेलको पहले ही लग गई थी, इस लिए वह बहुत ही चिन्तित था और इसी बात पर विचार करनेके लिए सन्ध्या समय रिपीलकी प्रबन्धकारिणी सभाका अधिवेशन हो रहा था कि इतनेमें सभाको रोकनेकी आज्ञाका छपा हुआ कागज लेकर एक आदमी वहाँ पहुँच गया! उसे देखते ही सब लोग सन्न हो गये; बहुत देरतक किसीके मुँहसे कोई बात न निकली। पर थोड़ी ही देरमें कुछ युवक कहने लगे कि चाहे जो हो, सभा होनी ही चाहिए। तीस वर्षतक धैर्य्य-पूर्वक नियमानुमोदित आन्दोलनको व्यर्थ देखकर यदि कुछ युवकोंके मनमें यह बात उठी हो तो इसमें आश्चर्य्य ही क्या है। पर बहुत कुछ सोच समझकर ओकानेलने कह दिया कि नहीं, सभा नहीं होनी चाहिए। सभाका प्लेटफार्म तुड़वा दिया गया और सभाके बंद किये जानेके सम्बन्धमें बड़े बड़े विज्ञापन छपवाकर दूर दूर तक बँटवा और चिपकवा दिये गये। उधर अधिकारियोंने भी खूब तैयारियाँ की थीं। जगह जगह पर पुलिस और सेनाके सिपाही खड़े कर दिये गये थे और उन्हें चौबीस घण्टेके लिए भोजन और कारतूस आदि दे दिये गये थे। दो तीन तोपें भी तैयार थीं। पर इन सबके उपयोगका आवश्यकता नहीं पड़ी। सब लोगोंको तुरन्त मालूम हो गया कि सभा नहीं होगी।

इस प्रकार कागजके एक टुकड़ेने लाखों आदमियोंका उत्साह-सागर सोख लिया।

युवकमण्डली ओकानेलसे नाराज हो गई। उसका कहना था कि यदि सभा करना नियमानुमोदित है तो उसका रोकना अवश्य नियम-विरुद्ध है और रिपील सभाको इस प्रकार डरकर अपने कर्त्तव्यसे विमुख न हो जाना चाहिए। पर तो भी इसमें सन्देह नहीं कि अनुभवी ओकानेलने जो कुछ किया था वह उचित भी था। साथ ही सभाके रुक जाने से ओकानेलको दुःख भी हुआ था। उसने इसमें अपना बड़ा भारी अपमान समझा। उसने बात बनानेके लिए फिरसे प्रति सप्ताह रिपील सभाका अधिवेशन करना आरम्भ किया और बड़ी सभा न करके छोटी छोटी बहुतसी सभायें करना निश्चय किया। पर फल कुछ भी न हुआ और वह लोगोंके चित्तसे उतर गया। उधर अधिकारियोंने मुकदमा चलाकर उसे जेल भेजनकी ठानी। १४ अक्तूबर सन् १८४३ को वारण्टके जरिएसे वह पकड़ा गया और जमानतपर छोड़ा गया। उसके साथ और भी आठ आदमियों पर मुकदमा चला। उन लोगों पर ग्यारह अपराध लगाये गये। महीनों बड़ी धूम धामसे मुकदमा होता रहा। अन्तिम दिन रातके बारह बजेतक अदालत बैठी रही; तब तक एक आदमी भी वहाँसे न हिला। दूसरे दिन ज्यूरियोंने कह दिया कि अभियोग प्रमाणित हो गये, पर फैसलेकी तारीख बहुत दूर डाल दी गई। उस दिन ज्यूरीकी सम्मति लण्डनतक पहुँचानेके लिए एक खास जहाज तैयार था, वही खबर ले गया जो दूसरे दिन टाइम्समें छपी। इसके उपरान्त फैसला होनेतक वह फिर प्रति सप्ताह सभाके अधिवेशन करता रहा। इसी बीचमें वह एक बार इंग्लैण्ड भी गया जहाँ उसकी बहुत खातिर हुई और बहुतसे लोग उसके पक्षमें भी हो गये। मुकदमेमें सरकारकी तरफसे जो चालें चली गई थीं उन पर खूब टीका टिप्पणी होने लगी और लोग कहने लगे कि

इसमें बहुत अन्याय हुआ है । किसी किसीने फिरसे मुकदमा चलानेकी भी राय दी। बरटन नामक जज फैसला सुनानेको था जो ओकानेलके सामने लड़का मालूम होता था। इसके अतिरिक्त जब वह बैरिस्टर था तब उसने पहले ओकानेलकी ओरसे भी बहुत कुछ काम किया था; इसलिए फैसला सुनानेके समय उसका गला भर आया। ओकानेलको एक वर्षकी सादी कैद और दो हजार पाउण्ड जुरमानेकी सजा हुई और उनसे पाँच वर्षके लिए पाँच हजार पाउण्डकी जमानत माँगी गई। और लोगोंको नौ नौ महीनेकी सजा हुई। ओकानेलने उसी समय अदालतमें कह दिया कि न्याय नहीं हुआ। पर अधिकारी इस फैसलेसे बहुत प्रसन्न थे। ओकानेलसे कहा गया कि जिस जेलमें तुम रहना पसन्द करो उसीमें भेजे जा सकते हो। मुकदमा चलनेके समय ओकानेल डबलिन म्युनि-सिपैलटीका सभापति अर्थात् लार्ड मेयर था और रिचमण्ड जेलका सारा प्रबन्ध और खर्च वही म्युनिसिपैलटी करती थी; इस लिए वहाँ उसे सब प्रकारका आराम मिल सकता था। इस लिए वह अपने साथि-यों सहित उसी जेलमें गया। वहाँ वह बड़े मजेमें रहने लगा। बाहर-से बहुतसे लोग उससे मिलने आते थे और उसके लिए अच्छे अच्छे भोजन और फल लाते थे। उसे सारे जेलमें खूब घूमने फिरनेकी आज्ञा मिल गई। कुछ म्युनिसिपैलटियोंने उसे देनेके लिए मानपत्र भी वहाँ भेजे थे, पर वे मानपत्र इसलिए उसे नहीं दिये गये कि जेलको लोग दिल्लगी समझने लगते। उसके साथियोंने जेलमेंसे ही 'जेल-गजट' नामक एक पत्र भी निकालना शुरू किया। वहीं वे लोग सभायें करने और व्याख्यान देने लग गये। उन लोगोंके एक संगीत-प्रेमी मित्रने एक बार उन नौ आदमियोंके लिए वहाँ नौ हारमोनियम भी भेजे थे। जब वे सब लोग हाथमें एक एक हारमोनियम लेकर एक साथ ही बजाने लगे तब जेलके अधिकारी वहाँ तुरन्त दौड़े हुए पहुँचे थे।

इधर इंग्लैण्डमें अपील हुई। अपीलके फैसलेका समाचार आयलैंण्ड तक पहुँचानेके लिए भी एक खास जहाज तैयार था। अपीलमें वे लोग छोड़ दिये गये। उसका सालिसिटर कूदकर जहाज पर जा चढ़ा और उस पर एक झण्डा लगा दिया गया जिस पर मोटे अक्षरोंमें लिखा था–'ओकानेल छूट गया।' रातको ओकानेल और उसके साथी छूट गये और अपने अपने घर चले गये। दूसरे दिन लोग उन्हें फिर जेलके दरवाजे तक ले गये और वहाँसे उन लोगोंने जुलूस निकाला।

इसके बाद सरकारकी ओरसे कई ऐसी बातें हुईं, जिनसे रिपील सभाके नष्ट होनेकी नौबत आ गई। ओकानेलके लड़के जानने निश्चय किया कि, जो लोग कसम खा लें कि हम कभी कोई नियमविरुद्ध कार्य्य न करेंगे वे ही इस सभाके सभासद रह सकते हैं। इस लिए बहुतसे लोगोंने उस सभाको छोड़ दिया। उसी अवसर पर देशमें अकाल पड़ा। जब बड़े बड़े नेताओंने गरीबोंका कष्ट दूर करनेका कोई उपाय न किया तब वे लोग उन्हें गालियाँ देने लगे। कुछ लोग ऐसे भी खड़े हो गये जो कहने लगे कि ओकानेल रिपील सभाके रुपये खा जाता है और तरह तरहसे उसकी निन्दा करने लगे। उस समय ओकानेलका दिमाग भी कुछ खराब हो गया था। दो बरस बाद यह इंग्लैण्ड चला गया। पर वहाँ पार्लमेण्टमें उसकी कुछ भी न चली। तब वह पहले पेरिस और फिर रोम गया। रोमसे लौटने पर १५ मार्च १८४७ को जनेवामें उसकी मृत्यु हो गई। उसके लड़केने उसके शवको आयलैंण्ड ले जाकर खूब धूमधामसे गाड़ा और सन् १८६९ में उसकी कब्र पर आयरिश लोगोंने चन्दा करके स्मारकस्वरूप एक १६५ फुट ऊँचा स्तम्भ खड़ा किया।

ओकानेलमें गुण अधिक थे और दोष कम। वह कुछ सम्पन्न भी था। उसकी वकालत भी खूब चलती थी। वह बहुत ठाठसे रहता था।

उसके चार लड़के, तीन लड़कियाँ थीं और बहुतसे दूसरे रिश्तेदार थे। वह खर्च भी खूब करता था, इसलिए लोगोंने कहा कि वह सभाका धन खा जाता है। वह सभाका हिसाब भी ठीक समय पर प्रकाशित न करता था। वह हर साल अपने लिए भी लोगोंसे कुछ चन्दा लिया करता था। चन्दा उगाहनेके समय उसके भक्त पत्रोंमें धन देकर उसकी खूब प्रशंसा कराते थे और तब खूब चन्दा जमा करते थे। इस काममें हर साल पाँच हजार पाउण्ड खर्च होते थे और दस हजार पाउण्ड बच रहते थे। उसके प्रतिपक्षी उसे 'भारी भिखमँगा' कहा करते थे। उसका यह काम शिष्टसम्मत नहीं था, इसीलिए लोगोंमें उसका आदर भी बहुत कम हो गया था। कैथोलिक लोगोंने भी स्वतंत्र होने पर उसे पचास हजार पाउण्ड दिये थे, पर इसके लिए वह दोषी नहीं था; क्यों कि इसी तरह और भी बहुतसे देशोंमें नेताओंको विशेष कार्य्य करनेके लिए धन मिला है। लेकिन उत्तम पक्ष यही है कि नेता किसी पर एक पैसेका भी बोझ न डालें और जैसे हो कष्ट सहकर भी अपना गुजारा करें। और नहीं तो अधिकसे अधिक केवल अपने निर्वाहके लिए लोगोंसे धन लिया करें। ग्रॅटनको पचास हजार और पार्नेलको तीस हजार पाउण्ड मिले थे, पर इतनी बड़ी रकम पानेके बाद उन्होंने कभी धन एकत्र करनेका प्रयत्न नहीं किया था। पर ओकानेल तो हर साल चन्दा वसूल करता था, किन्तु इसमें भी सन्देह नहीं कि तीस-पैतीस वर्ष तक उसने निरन्तर देशकी बहुत अच्छी सेवा की थी।

आरम्भमें वह कुछ विषयी भी था; पर पीछे वह धार्म्मिक हो गया। वह लोगोंको बिना समझे बूझे गालियाँ भी खूब देता था। पार्लमेण्टमें बोलनेके समय भी वह औचित्यका ध्यान नहीं रखता था। यदि उसने द्वन्द युद्ध न करनेकी कसम न खाई होती तो वह बहुत ही पहले मर

चुका होता; क्योंकि पीछे बहुतसे लोगोंने उसे द्वन्द्व-युद्धके लिए ललकारा था। उसका स्वभाव अवश्य अच्छा था। वह कभी कभी लड़कपन भी कर जाता था। उसमें रजोगुण और तमोगुण अधिक था। वह बुद्धिमान् तेजस्वी और बलिष्ठ था। सैर-शिकारका भी उसे शौक था। घोड़ेपर एक दिनमें वह साठ साठ मीलकी यात्रा करता था। पचीस वर्ष तक वह आयलैंण्डका सर्व प्रधान नेता था। उसके भक्तोंमें अशिक्षित और साधारण लोग ही अधिक थे। देशकार्य्यके लिए वह बहुत बड़े आदमियोंको उपयुक्त नहीं समझता था। कैथोलिक लोगोंको स्वतंत्रता दिलानेमें उसे जो सफलता हुई उसका कारण यह था कि उसके सम्बन्धके प्रश्नकी पहले ही बहुत कुछ मीमांसा हो चुकी थी और कई मंत्री भी उसके पक्षमें थे। पर रिपीलमें सफलता न होनेका कारण यह था कि आयलैंण्डमें ही इसके सम्बन्धमें मतभेद था और इंग्लैण्डवाले भी इसके विरुद्ध थे। इसीलिए उसके कई मित्रों और भक्तोंने कहा था कि यदि कैथोलिक लोगोंके स्वतंत्र होते ही उसका अन्त हो जाता तो बहुत अच्छा होता; क्यों कि उस दशामें उसे पीछेसे रिपीलसभाके सम्बन्धमें बदनाम न होना पड़ता। पर तो भी इसमें सन्देह नहीं कि वह एक अलौकिक मनुष्य था और आयलैंण्डके लिए उसने बहुत कुछ काम किया था।

---

६ विलियम स्मिथ ओब्रायन।

ओब्रायनकी गिनती आयलैंण्डके उन्नीसवें शताब्दीके मध्यके अच्छे अच्छे नेताओंमें की जाती है। वह अच्छे घरानेका था। तेईस वर्षकी अवस्थामें सन् १८२६ में उसने पार्लमेण्टमें प्रवेश किया था। सन् १८३० में उसने आयलैंण्डकी दरिद्रताके सम्बन्धमें एक बहुत अच्छा लेख प्रकाशित किया था। सन् १८४० में जब ओकानेलने रिपीलका आन्दोलन आरम्भ किया उस समय वह उसमें

सम्मिलित नहीं हुआ। क्यों कि इसके मनमें ओकानेलके प्रति आदर नहीं था। पर सन् १८४४ में यह भी रिपील सभामें सम्मिलित हो गया। आगे जब ओकानेलके जेलसे छूटने पर युवकोंमें उसका आदर न रह गया तब ओब्रायन ही उन लोगोंका नेता बना। सन् १८४८ में युरोपके अन्य देशों-की तरह आयर्लैण्डमें भी विद्रोहकी सम्भावना थी। उससमय ओब्रायन और मीगर आदि नेताओंने पेरिस जाकर वहाँके प्रजापक्षीय नेताओंसे आयर्लैंडके लिए सहायता माँगी थी। पर उसमें इन लोगोंको भी उल्फटोन-की तरह निराश ही होना पड़ा था। इस आन्दोलन और प्रयत्नके सम्बन्धमें पार्लमेंटमें उसे यह भी कहना पड़ा था कि—"मैं इंग्लैंडकी रानीका राज्य तो चाहता हूँ, पर आयर्लैण्ड पर अँगरेजी पार्लमेंटका अधिकार नहीं चाहता। और इसीलिए मैं जन्मभर स्वतंत्र पार्लमेंटके लिए प्रयत्न करता रहूँगा, चाहे इसमें मेरे प्राण भी चले जायँ।" मई १८४८ में उस पर लोगोंको विद्रोहके लिए उत्तेजित करनेका अभियोग लगाया गया, पर ज्यूरियोंमें मतभेद हो जानेके कारण वह छूट गया। पीछे जब अधिकारियोंके अधिकार बढ़गये तब उन्होंने फिर उस पर हाथ साफ करना चाहा। लेकिन क्रियाके साथ प्रतिक्रिया भी बढ़ती जाती है; इसलिए ओब्रायन, डिलन, ओगार्मन, मीगर आदि नेताओंने लोगोंको खुले आम शस्त्र ग्रहण करनेका उपदेश देना आरम्भ किया। जुलाईमें इन लोगोंने तीन चार हजार आदमी भी इकट्ठे कर लिये, लेकिन इनके पास हथियार तीन-चारसौ ही थे और धन भी कुछ नहीं था। ओब्रायनने अपने पासका बहुत कुछ धन लगाया, पर ऐसे कामोंमें एक आदमीके धनसे क्या हो सकता था? लोगोंने सहायता नहीं दी, जिससे इस सेनाका विद्रोह एक दो दिनसे अधिक नहीं ठहरा। प्रत्यक्ष लड़ाईके समय ओब्रायनके पास केवल दो सौ आदमी बच गये थे। अन्तमें अपने बचावके लिए वह भाग गया और उसेपकड़नेके लिए पाँच

सौ पाउण्डका इनाम मुकर्रर किया गया। वह एक स्टेशन पर टिकट खरीदनेके समय पकड़ा गया। मुकद्मा चला और उसे फाँसीका हुकुम हुआ, पर अपीलसे काले पानीका दण्ड मिला। मेरिया टापूसे उसने एक बार भागनेका भी प्रयत्न किया था, पर वह भाग न सका। जब सन् १८५४ में १८४८ वाले विद्रोहके लोग छोड़े गये, तब वह भी छूट कर अपने घर पहुँचा। रास्तेमें मेलबोर्नमें अँगरेजोंने उसका अच्छा आदर किया और एक हजार पाउण्ड मूल्यका एक सोने-का प्याला उसे नजर किया। युरोपमें कुछ दिन रह कर उसने राज-कीय विषयों पर दो एक पुस्तकें लिखीं और १८५६ में वह फिर आय-लैंड पहुँचा। इसके उपरान्त उसने कोई विशेष कार्य्य नहीं किया। इसके बाद वह अमेरिका गया जहाँ उसने व्याख्यान आदि देकर थोड़ा बहुत लोकमत जाग्रत किया। सन् १८६४ में उसकी मृत्यु हो गई। वह अच्छा वक्ता तो नहीं था; पर उसकी स्वदेश-भक्तिमें कभी किसीको शंका नहीं हुई। वह स्वार्थत्यागी भी था। उसने सन् १८४८ में अपनी सम्पत्ति पंचोंके अधिकारमें कर दी थी; और उससे स्वयं वह केवल एक हजार रुपये साल लिया करता था। सुप्रसिद्ध इतिहासकार लेकेने उसके सम्बन्धमें बहुत अच्छा मत दिया है। उसने लिखा है कि यद्यपि १८४८ में विद्रोह करके उसने भूल की, लेकिन यह बात ध्यानमें रखनी चाहिए कि सच्चे हृदय और उत्साहसे काम करनेवाले लोग जब सब प्रकारसे निराश हो जाते हैं तब उनसे स्वभावतः ऐसी भूलें हो जाया करती हैं। वह सच्चे हृदयसे देशसेवा करता था और व्यर्थ बड़बड़ाने-वाले लोगोंको बहुत बुरा समझता था। अन्तमें उसने यह भी समझ लिया था कि फ्रान्सीसियोंसे सहायता लेने अथवा कैथोलिक लोगोंकी केवल प्रधानता स्थापित करनेमें ही कोई लाभ नहीं है; बल्कि इसमें उलटे हानि ही है। यद्यपि उसकी ये बातें उस समय लोगोंको अप्रिय

मालूम हो सकती थीं; और सम्भव था कि इससे उसकी जन्म भरकी कमाई हुई प्रतिष्ठा और लोकप्रियता नष्ट हो जाती; पर तो भी उसने इन बातोंकी परवा नहीं की। वह सदा सच्चाईसे लोगोंमें इसी मतका प्रसार करता रहा।

---

७ आइजिक बट।

ओकानेलके बाद और पार्नेलसे पहले पार्लमेण्टमें आयरिश पक्षका यही नेता था। इसका जन्म एक प्रोटेस्टेण्ट धर्म्मोपदेशकके घर १८१३ में हुआ था। बीस वर्षकी अवस्थामें इसे डबलिनके विश्वविद्यालयमें अर्थ-शास्त्रके प्रोफेसरका पद मिला था। १८३८ में वह बैरिस्टर हुआ और १८४२ में इसे 'क्वीन्स कौंसेल' की पदवी मिली। १८४४ में जब डबलिनकी म्युनिसिपैलटीमें ओकानेलने रिपीलका प्रश्न उपस्थित कराया उस समय यह यूनियनिस्टर दलका नेता था। उस समय इसका भाषण बहुत ही उत्तम हुआ था। ओकानेलने भी उसकी बहुत प्रशंसा की थी; साथ ही यह भी कह दिया था कि जिस पक्षका तुम आज समर्थन कर रहे हो, आगे चलकर तुम उसीका खण्डन करोगे और स्वतंत्र पार्लमेंट माँगोगे, और १८७० में यही बात हुई भी।

वकालतमें उसने अच्छा नाम और धन कमाया था। १८५२ में उसने पार्लमेंटमें प्रवेश किया। १८४४ और १८४८ के मध्यमें आयलैंडमें जितने राजनीतिक मुकदमें हुए, उनमेंसे अधिकांशमें यही वकील था। और फिर १८६०—७० के मध्यमें फीनियन लोगोंने जो उपद्रव किये थे उनके सम्बन्धमें भी स्वार्थत्यागपूर्वक इसने कुछ काम किया था। यह व्यक्ति-स्वातंत्र्यका बहुत बड़ा पक्षपाती था और

कभी किसीको किसी पर अन्याय न करने देता था। फीनियन लोगोंके प्रति इसके मनमें कुछ सहानुभूति थी भी; क्योंकि यह देखता था कि दोनों देशोंकी पार्लमेंटोंके एक हो जानेसे साठ वर्षमें आयर्लैंडकी हानि ही अधिक हुई है। यह स्वयं नियमानुमोदित आन्दोलन करनेवाला था और पार्लमेण्टके नियमोंसे अच्छी तरह परिचित था। वहाँ उसका आदर भी बहुत होता था। फीनियन उपद्रवके सम्बन्धमें जब सैकड़ों अपराधी जेल भेज दिये गये तब उन सबको छुड़ानेका प्रयत्न करनेके लिए जो 'एमनेस्टी एसोसिएशन' स्थापित हुई थी, उसका यह सभापति बनाया गया था और आगे चलकर यह रिपील आन्दोलनका भी नेता बन गया था।

१९ मई १८७० को डबलिनके एक होटलमें कैथोलिक और प्रोटेस्टेण्ट लोगोंकी एक प्राइवेट सभा देशकी राजकीय स्थिति पर विचार करनेके लिए हुई थी। उस सभाकी कार्रवाईसे यह बात सिद्ध होती थी कि विद्रोहके मार्गको तो लोग नहीं पसन्द करते, पर वे पूर्ण स्वतंत्रता अवश्य चाहते हैं और इस स्वतंत्रताके लिए दोनों पक्षोंने मिलकर नियमानुमोदित आन्दोलन करना निश्चय किया। उसमें स्वतंत्र पार्लमेण्टके लिए सबसे अधिक जोर बटने ही दिया था और इस प्रकार ओकानेलकी भविष्यवाणी पूरी की थी। फीनियन आन्दोलनका जिक्र करते हुए उक्त सभामें उसने कहा था—"राष्ट्रीय स्वतंत्रताके सम्बन्धमें जब सब लोग बोलने लगते हैं तब उनमेंसे कुछ लोग अविचार भी कर बैठते हैं; पर इसी कारण वे लोग बोलनेसे रोके नहीं जा सकते। नेताओंको चाहिए कि उनकी बातोंको उचित और नियमामोदित बनाकर राष्ट्रमें जोर लावें। इस कामको नाजुक समझ कर छोड़ नहीं देना चाहिए, बल्कि सावधानीसे दोष दूर करनेका प्रयत्न करना चाहिए। फीनियन लोग इसीलिए अत्याचारी हुए हैं कि नियमानु-

मोदित आन्दोलन करनेवाले नेताओंने अपने कर्त्तव्योंका उचित रीतिसे पालन नहीं किया।" आइजिक बटके केवल इसी भाषणसे सारा काम हो गया। सभी धर्म्मों, पन्थों और पक्षोंके लोगोंने एकमत होकर स्वतंत्र पार्लमेण्ट माँगना निश्चय कर लिया और उसी तारीखसे 'होमरूल' के आन्दोलनका जन्म हुआ। १८७३ में हजारों आयरिश लोगोंके हस्ताक्षरसे एक निमंत्रणपत्र प्रकाशित किया गया और १८ नवम्बरसे चार दिन तक राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ। सौ वर्ष पहले उसी स्थान पर चार्लमाण्टके सभापतित्वमें स्वयं-सैनिकोंका सम्मेलन हुआ था जिसमें निश्चय हुआ था कि आयरिश पार्लीमेण्टपरसे ब्रिटिश पार्लमेण्टकी हुकूमत उठा दी जाय। इस नये सम्मेलनमें देशके भिन्न भिन्न भागोंसे नौसौ प्रतिनिधि आये थे। उस अवसर पर 'होम गवर्नमेण्ट' नामकी पुरानी सभा तोड़ कर 'आयरिश होमरूल' नामकी एक नई सभा स्थापित की गई थी। १८७४ वाले पार्लमेण्टके चुनावमें साठ होम-रूलर सभासद् चुने गये थे, जिनमें जान मार्टिन, मिचेल, हेनरी, विलियम शा, सर जान ग्रे आदि प्रधान थे और जिन सबका नेता बट था। सब लोग मिलकर होमरूलका काम करने लगे। पर बट उस समय तक बहुत बुड्ढा हो गया था और पार्लमेण्टकी स्थिति भी काम करनेके विशेष अनुकूल नहीं थी। इसलिए धीरे धीरे बटके प्रति लोगोंका उत्साह और आदर कम हो चला और पार्नेलके उठते ही उसे पार्लमेंण्टमेंका नेतृत्व छोड़ देना पड़ा। इस सम्बन्धकी विशेष बातें आगे पार्नेलके चरित्रमें दी गई हैं। ५ मई १८७९ को बटकी मृत्यु हो गई।

---

८ पार्नेल।

उन्नीसवीं शताब्दीमें ओकानेलके उपरान्त आयरिश लोगोंका प्रधान नेता पार्नेल ही हुआ। इसका घराना बहुत पुराना और प्रतिष्ठित था और उसमें बहुतसे अच्छे कवि और राजनीतिज्ञ हो गये हैं। जिस-समय आयरिश पार्लमेंट जोरों पर थी उससमय पार्नेलका एक पूर्वज मंत्रि-मण्डलमें था और उस पर अँगरेजी मंत्रिमंडल तथा आयरिश प्रजा दोनोंका ही समान रूपसे विश्वास था। आयरिश पार्लमेंटके टूटनेके समय उसके पूर्वजोंने राजपक्षसे खूब टक्कर ली थी। पार्नेलका दादा अँगरेजोंका बहुत बड़ा द्वेष्टा था और उसने धार्म्मिक स्वतंत्रताके आन्दोलनमें ओकानेलको बहुत सहायता दी थी। पार्नेलकी माता भी बहुत सुयोग्य, साहसी और अच्छी राजनीतिज्ञ थी। उसके माता-पिता बहुत दिनोंतक अमेरिकामें रहे थे, इस लिए वह भी अँगरेजोंसे बहुत द्वेष रखती थी। पार्नेलमें तो यह द्वेष-बुद्धि पराकाष्ठा तक पहुँच गई थी। सूक्ष्म दृष्टिसे देखा जाय तो जान पड़ेगा कि पार्नेलमें राष्ट्रभक्तिकी अपेक्षा अँगरेजोंके प्रति द्वेष-भाव ही अधिक था।

पार्नेलके पूर्वजोंके पास बहुत बड़ी सम्पत्ति थी और जमींदारीसे उन्हें खासी आमदनी थी। डबलिनसे कुछ दूर पर राथड्रम नामक उनका एक गाँव था जहाँका सृष्टि-सौन्दर्य्य दर्शनीय था। आसपास नदी, जंगल और पहाड़ियाँ थीं। वहीं २७ जून १८४६ को पार्नेलका जन्म हुआ था। बचपनमें वह गम्भीर और मितभाषी था और अधिक खेल-कूद पसन्द न करता था। स्कूलमें वह प्रायः लड़कोंसे झगड़नेके अतिरिक्त और कुछ न करता था। वह इतना हठी था कि समय पर कह देता था कि जो कुछ मैं कहता हूँ वही ठीक है और ग्रन्थ तथा शिक्षक दोनोंकी भूल है। लड़कपनमें प्रायः और बड़े होने पर कभी कभी वह

सोए सोए भी उठकर चलने लगता था। वह शूर तो था; पर अकेले उसे डर लगता था।

सन् १८६९ में बिना पदवी लिये और बिना शिक्षा-क्रम पूरा किये ही वह केम्ब्रिजका कालिज छोड़कर घर चला आया था। उस समय एक शराबीसे मार पीट करनेके कारण वह कालिजसे कुछ दिनोंके लिए निकाल दिया गया था और उस बार जब वह घर आया तब फिर कभी लौट कर कालिज नहीं गया। उसमें न तो विशेष विद्या-प्रेम था और न कमानेके लिए पढ़नेकी जरूरत थी। वह खाना-पीना और सैर-शिकार ही करना जानता था। अँगरेजोंके साथ उसका द्वेष अवश्य था, पर उसे अपने देश तथा पूर्वजोंका पुराना इतिहास कुछ भी न मालूम था। वह सिर्फ इतना जानता था कि १७९८ में कुछ आयरिश देशभक्तोंने विद्रोह किया था। बीस वर्षकी अवस्थातक उसमें देश-भक्ति नाम मात्रको भी न दिखाई पड़ती थी।

ऐसे आदमीका राजनीतिमें पड़ना एक बहुत ही विलक्षण बात है। सन् १८६७ में मैंचेस्टरमें जो मारपीट, फाँसियाँ और खून हुए थे, उन सबको अँगरेज लोग तो तिरस्कारपूर्वक 'हत्या' कहते थे और आयरिश लोग चिढ़कर कहते थे कि फीनियन लोग दिन दहाड़े सशस्त्र और सावधान पुलिससे लड़े हैं; उन्हें 'हत्यारा' कहना ठीक नहीं। पार्नेलका राजनीतिमें तो कुछ दखल था ही नहीं; पर इस घटनाके सम्बन्धमें उसका भी यही मत था। अवसर पड़ने पर वह जोरोंसे फीनियन लोगोंके पक्षका समर्थन करता था। पर उसकी यह प्रवृत्ति क्षणिक ही होती थी। १८७३ में पार्लमेण्टके चुनावके समय उसमें तथा उसके भाई जानमें राजनीतिके प्रति कुछ अनुराग उत्पन्न हुआ। उसी समय सब लोगों और पक्षोंने मिलकर फीनियन कैदियोंको छुड़ानेका प्रयत्न आरम्भ किया जिससे लोगोंमें राजनीतिक एकता हो

चली। स्वतंत्र पार्लमेण्टके लिए बट आन्दोलन करने लगा। लोगोंमें पार्लमेण्टमें प्रवेश करके काम करनेकी इच्छा हुई। उसी समय पार्नेलके मनमें भी पार्लमेण्टमें प्रवेश करनेकी समाई।

पार्नेल अँगरेजोंका द्वेष्टा था और द्वेष साधारणतः दोष ही है; पर पार्नेलके लिए वह गुण हो गया। बट यद्यपि पार्लमेंटमें काम करता था, पर न तो वह लड़ना-भिड़ना जानता था और न शिष्टताका व्यवहार छोड़ सकता था। इस कामके लिए पार्नेल सरीखा अँगरेजोंका द्वेषी ही अधिक उपयुक्त था और इसीलिए वह पार्लमेंटमें प्रवेश करनेके कुछ ही दिनों बाद आयरिश पक्षका नेता हो गया। पहले १८७४ में पार्नेलने डबलिन नगरकी ओरसे सभासद होनेका प्रयत्न किया था, पर उसमें सफलता नहीं हुई। इसके अतिरिक्त उस समय उसे सार्वजनिक कार्य्य करना भी नहीं आता था। उसका पहला भाषण बिलकुल ही बे-सिर-पैरका और प्रायः निरर्थक था। इसलिए लोगोंने उसकी हँसी उड़ाई थी। लेकिन दूसरे वर्ष अपने प्रतिष्ठित कुलके कारण वह मीथ प्रान्तकी ओरसे चुन लिया गया। उस समयके ५९ होमरूलर आयरिश सभासदोंका नेता बट था और वह पार्लमेंटमें शिष्ट व्यवहार करता था, इस लिए अँगरेज उससे खुश थे। पर इससे उसके राष्ट्रका कोई हित न होता था। बल्कि जैसा कि ऐसे लोगोंके सम्बन्धमें प्रायः पीछेसे हुआ करता है; लोगोंके मनमें एक प्रकारका आदरमिश्रित अनादर उत्पन्न हो गया था। उन ५९ सभासदोंमें बिगर नामका एक भी सभासद था, जो यह समझता था कि मीठी और सीधी बातोंसे काम नहीं चलता और इसलिए वह कभी कभी कुछ बढ़कर बातें कह डाला करता था। उसके मनमें अँगरेजों और पार्लमेंटके सम्बन्धमें कुछ भी आदर नहीं था, पर वह भी वक्तृता देना नहीं जानता था। जो मनमें आता था वही वह उजड्डपनसे कह चलता था। उसके भाषणसे अँगरेज लोग

खिजला जाते थे । पार्नेल कुछ जानता बूझता नहीं था। पर वह समझता था कि नियमोंका ज्ञान प्राप्त करनेका सबसे अच्छा उपाय नियमोंका उल्लंघन करना ही है; इसलिए उसने भी बिगरका ही अनुकरण किया और कुछ दिनोंमें वह उससे बहुत आगे बढ़ गया।

२२ अप्रैल १८७५ को पार्नेल सभासद हुआ था, पर ३० जून तक उसे कुछ बोलनेका अवसर नहीं मिला। ३० जूनको जब होमरूल पर विचार हो रहा था तब एक अँगरेजने फीनियन लोगोंको खूनी कह डाला। इस पर पार्नेल बड़े आवेशमें आकर एक दमसे बोल उठा—"नहीं, यह शब्द ठीक नहीं है।" उस अँगरेजने गम्भीरतापूर्वक कहा—"मुझे दुःख है कि खूनका समर्थन करनेवाला भी एक सभासद यहाँ है।" सब लोग पार्नेलसे अपनी बात लौटा लेनेके लिए कहने लगे, पर पार्नेलने नहीं माना; बल्कि उलटे जोरोंसे अपने कथनका समर्थन किया, जिस पर आयरिश सभासदोंने खूब तालियाँ पीटीं। यह बात यहीं तक रह गई। पर इसके कारण अँगरेजोंका ध्यान भी उसकी ओर गया और फीनियन लोगोंका भी। अँगरेज उससे चिढ़े और फीनियन उससे प्रसन्न हुए।

सन् १८७७ से वह पार्लमेण्टके वादविवादमें अधिक सम्मिलित होने लगा। जहाँ तक होता वह नियमानुमोदित रीतिसे पार्लमेण्टके काममें अड़चन डालता। अब वह सब बातें भी अच्छे ढंगसे कहने लगा था और सब तरहके ऊँच नीच पर भी खूब विचार करता था। वह और बट दोनों मिलकर अँगरेजोंको प्रायः चिढ़ाया और खिझाया करते थे, पर बटको यह बात पसन्द न थी। एक दिन दक्षिण आफ्रिकाके सम्बन्धमें एक बिल पर वादविवाद हो रहा था; इतनेमें पार्नेलके मुँहसे निकल गया कि—"इन्हीं सब कारणोंसे मंत्रि-मण्डलके काममें अड़चन डालनेमें मुझे एक विशेष प्रकारका आनन्द होता है।" बस, इसी पर

सर नार्थकोटने वादविवादके नियमोंमें बहुत कुछ परिवर्त्तन करा डाला। निश्चय हो गया कि अशिष्ट व्यवहार करनेवाला सभासद सभासे निकाल दिया जाय और व्यर्थ अड़चन डालनेके लिए यदि कोई कुछ कहे तो उस पर विचार न किया जाय। पर तो भी इन निश्चयोंका विशेष उपयोग नहीं हुआ। क्योंकि कानून बनानेवालोंकी सदा कानून तोड़नेवालोंके सामने हार ही होती है। इसके चार ही दिन बाद एक वाद-विवाद-के लिए पार्लमेण्टके सभासदोंको लगातार छब्बीस घण्टे तक माथापच्ची करनी पड़ी। इस कारण अँगरेज लोग तो पार्नेलसे द्वेष करने लगे और आयर्लैण्डमें उसकी लोकप्रियता बढ़ने लगी। १८७८ में वह बटके स्थान-पर आयरिश होमरूल सभाका सभापति बनाया गया। इसमें फीनियन लोगोंने उसकी बहुत सहायता की। यद्यपि वह स्वयं फीनियन नहीं था, तथापि वह उनसे विरोध करना नहीं चाहता था और यथासाध्य अपने काममें उनसे उचित सहायता लेना चाहता था। फीनियन लोग तो कहते थे कि पार्लमेण्ट खेलवाड़ है और वहाँ लोग समय बितानेके लिए जाते हैं; पर पार्नेल कहता था कि "केवल नियमविरुद्ध आन्दोलनसे आज तक कभी कोई काम नहीं हुआ। इसलिए तुम लोग अपना काम करो और हम अपना काम करें। कोई किसीके काममें अड़चन न डाले।" बट और ओकानेलने भी प्रायः यही बात कही थी; पर तो भी वे लोग सार्वजनिक कामोंमें फीनियन लोगोंको मिलाना ठीक नहीं समझते थे। पर पार्नेल उनसे यथेष्ट मेल-मिलाप रखता था। वह उनसे काम तो लें लेता था, पर स्वयं उनके फेरमें न पड़ता था। इस प्रकार विना अधिक घनिष्ठताके ही उसने उन लोगोंकी प्रीति सम्पादित कर ली थी। साथ ही उसने आगे चलकर उन लोगोंको यह भी समझा दिया था कि हथियार उठानेसे कोई लाभ नहीं; क्योंकि हथियार उठाकर जान पर खेलनेवाले लोग बहुत ही थोड़े होते हैं और थोड़े आदमियोंका

आन्दोलन कभी सफल नहीं होता। इसलिए पार्लमेण्टमें आन्दोलन करना ही अधिक लाभदायक है। साथ ही उसने यह भी समझ लिया था कि साधारण जनसमाज राजनीतिके गूढ़ तत्त्वोंको नहीं समझ सकता। अतः ऐसी बातोंके लिए आन्दोलन करना चाहिए; जिनसे उसका प्रत्यक्ष सम्बन्ध हो और इसी विचारसे उसने २१ अक्टूबर १८७९ को 'आयरिश लैण्ड लीग' नामक एक सभा स्थापित की। इस सभाका उद्देश्य यह था कि आयरिश खेतिहरोंके कष्ट कम करके अँगरेज जमींदारोंसे उनकी रक्षा की जाय और पार्लमेण्टसे ऐसे नियम बनवाये जायँ, जिनसे वे आगे चल कर अपनी जमीनके मालिक बन जायँ।

दूसरे वर्ष पार्नेल लोगोंको इस सभाके उद्देश समझानके लिए अमेरिका गया। वहाँ दो महीनेमें उसने प्रायः ग्यारह हजार मीलका प्रवास किया। बासठ शहरोंमें उसने व्याख्यान दिये और चार लाख रुपया चन्दा वसूल किया। वहाँ उसका सत्कार भी खूब हुआ और उक्त लीगकी एक शाखा भी स्थापित हो गई। उसी वर्ष अप्रैलमें वह तीन नगरोंकी ओरसे फिर पार्लमेण्टमें चुना गया। पार्लमेण्टमें पहुँचते ही उसने आयरिश खेतहरोंका प्रश्न उठाया, जिसमें लैंड लीगके आंदोलनसे सहायता मिली। १९ सितम्बर १८८० को उसने एनिसमें व्याख्यान देकर खेतिहरोंको अँगरेजोंका बहिष्कार करनेका उपदेश दिया और तदनुसार सबसे पहले एक जमींदारके 'बॉयकॉट' नामक मुख्तारका बहिष्कार हुआ। यहाँ तक कि उसके नौकरोंने भी उसका बहिष्कार कर दिया। इसी प्रकार और भी बहुतसे लोगोंका बहिष्कार हुआ। जगह जगह इसीके सम्बन्धमें व्याख्यान होने लगे। इस आन्दोलनको दबानेके लिए सरकारने पार्नेल, डिलन, बिगर आदि चौदह नेताओं पर मुकदमा चलाया। इक्कीस दिन तक मुकदमा होनेके बाद ज्यूरियोंकी रायसे सब अभियुक्त छूट गये। इससे चिढ़ कर

आयर्लैंडके वाइसराय लार्ड कूपरने पार्लमेण्टसे यह अधिकार प्राप्त कर लिया कि बिना अदालतमें भेजे ही लोग जेल भेज दिये जा सकें और तदनुसार १८८१ में सैकड़ों आदमी जेल भेज दिये गये !

यद्यपि १८८० में ग्लैडस्टनने जमीनके सम्बन्धमें कुछ नये कानून बनवा दिये थे, पर उनका कुछ अंश लोगोंको मान्य नहीं था; इस लिए लैण्ड लीगने लोगोंको यह उपदेश देना आरम्भ किया कि लोग स्वालम्बनपूर्वक पहलेकी तरह प्रयत्न और आंदोलन करते रहें और इस लिए फिर दंगे-फसाद होने लगे। ग्लैडस्टनने पार्नेलके इस कृत्यका बहुत जोरोंसे निषेध किया और उसे साथियों सहित जेल भेजना निश्चय किया। १२ अक्टूबर १८८१ को वह वारण्टके द्वारा पकड़ कर किलमा-इनहमके जेलमें भेज दिया गया। पार्नेलने वहाँसे अपने आदमियोंको कहला दिया कि यदि मैं शीघ्र ही जेलसे छूट गया तो मैं समझूँगा कि तुम लोगोंने अपने कर्त्तव्योंका पालन नहीं किया; अर्थात् तुम लोग ऐसे कृत्य बराबर करते रहो जिससे सरकार मुझे मुक्त न करे। तदनुसार लैण्ड लीगने लोगोंसे कहा कि खेतिहर लोग लगान देना बिलकुल बन्द कर दें। इस सम्बन्धमें जो विज्ञापन प्रकाशित किया गया था उस पर पार्नेलके भी हस्ताक्षर थे, इस लिए लोगोंमें उसका बहुत मान हुआ। उस आज्ञाको परम पवित्र समझ कर लोगोंने उसका पालन आरम्भ कर दिया; यहाँतक कि खेतिहरोंकी पीड़ित स्त्रियाँ भी इसमें सम्मिलित हो गईं। राजकीय अपराध दुगुने और तिगुने होने लगे। जगह जगह लैण्ड लीगकी शाखायें स्थापित हो गईं। एकके जेल जाते ही दूसरा उसकी जगह आपसे आप तैयार हो जाता था। इन सब उपद्रवोंको देखकर ग्लैडस्टन साहबने अपनी नीतिमें परिवर्त्तन करना निश्चित किया। ग्लैडस्टनने जेलमें जाकर पार्नेलसे भेंट की और दोनोंने मिलकर निश्चित किया कि जमीनके सम्बन्धके १८८० वाले कानूनकी व्याप्ति पहलेकी

अपेक्षा अधिक विस्तृत हो, खेतिहरोंपरके फुटकर कर कम किये जायँ और जब इन बातोंका होना निश्चित हो जाय तब पार्नेल अपना घोषणा-पत्र लौटा ले । पार्नेलका कहना था कि इस प्रकार दंगा-फसाद आपसे आप कम हो जायगा । यद्यपि उसमें उसने अपने छूटनेकी शर्त्त नहीं लगाई थी, तथापि ग्लैडस्टन साहब समझते थे कि इसके उपरान्त उसे जेलमें रखना ठीक न होगा । इस निश्चयके उपरान्त मंत्रिमंडलकी आज्ञासे वह छोड़ भी दिया गया । लेकिन आयरिश सेक्रेटरी मि० फॉर्स्टरको यह बात पसन्द न आई और उसने अपने पदसे इस्तीफा दे दिया । लेकिन जो निश्चय इतने कठिन परिश्रमसे हुआ था वह भी अधिक दिनोंतक न ठहरा । क्योंकि ६ मईको फीनिक्सपार्क नामक बागमें आयर्लैण्डके मुख्य सेक्रेटरी लार्ड फ्रेडरिक कैवेंडिश और मि० बर्कको कुछ दुष्टोंने छुरियोंसे मार डाला । उस समय सारे इंग्लैण्डमें क्रोधकी बहुत अधिक ज्वाला भड़की और लोग मारे क्रोधके अन्धे हो गये । पार्नेलकी कीर्ति उससमय बहुत फैली हुई थी; क्योंकि उसने अपने आन्दोलनसे प्रधान मंत्रीतककी नीति बदल दी थी । यदि शान्ति रहती तो उसकी कीर्ति और भी बढ़ती । लेकिन कुछ दुष्टोंके इस दुष्कर्म्मसे सारा बना बनाया खेल बिगड़ गया और पार्नेलको बहुत अधिक दुःख हुआ । उसने निश्चय किया कि अब नेतृत्वका काम छोड़ कर चुपचाप घर बैठना ही ठीक है । उसने ग्लैडस्टन साहबको पत्र भी लिखा कि अब मैं आयरिश सभासदोंके नेतृत्वसे इस्तीफा देना चाहता हूँ । लेकिन ग्लैडस्टन और चेंबरलेन आदिने सहानुभूति दिखलाते हुए उसे समझाया कि ऐसे अवसर पर इस्तीफा देना ठीक नहीं है; क्योंकि इससे लोगोंमें भ्रम फैलनेकी सम्भावना है । इस लिए इस्तीफेकी बात रह गई ।

६ मईको पार्नेल, डिलन और डेविटने आयरिश लोगोंके नाम एक घोषणापत्र निकाला जिसमें बहुत ही तिरस्कारपूर्वक उक्त हत्याका निषेध

किया गया था और उसे सबसे अधिक निकृष्ट अपराध बतलाया था। साथ ही यह भी कहा गया था कि जब तक अपराधी पकड़ा न जायगा और उसे कठोर दण्ड न मिलेगा तब तक आयरिश लोगोंके मुँह पर लगी हुई कालिख न मिटेगी। ८ मईको पार्नेल जब पार्लमेंटमें गया तब बहुत ही उदास और खिन्न दिखाई पड़ता था। उसने एक छोटेसे भाषणमें हत्याका निषेध किया, पर साथ ही यह भी कह दिया कि यदि ऐसे अपराधोंके कारण अधिकारी लोग नये कड़े नियम बनावें तो इसमें आश्चर्य्य ही क्या है। इस दुर्घटनासे ग्लैडस्टन और पार्नेलको लज्जित होना पड़ा; पर फार्स्टर कुछ प्रसन्न था। उसी समय सर विलियम हार-कोर्टने राजकीय अपराधोंके सम्बन्धमें एक नया बिल उपस्थित किया; पर उसकी कुछ धारायें बहुत ही अन्यायमूलक थीं इस लिए आयरिश सभासदोंने उसका विरोध किया। कई दिनतक वादविवाद होता रहा। पार्लमेण्टके नियमोंका भंग करनेके कारण अध्यक्षने अट्ठारह आयरिश सभासदोंको मुअत्तल कर दिया। लेकिन उस समय भी ग्लैडस्टनने बड़े ही धैर्य्यसे खेतिहरोंके बाकी लगानके सम्बन्धमें एक बिल उपस्थित किया जो जुलाईमें पास हो गया। तो भी पार्नेलका दुःख कम नहीं हुआ। उसने आयर्लैण्ड जाकर लोगोंको राजकीय आन्दोलन कुछ समय तक बन्द रखनेकी सलाह दी। इस पर कुछ लोग उसे डरपोक और दब्बू समझने लगे और बहुतसे फीनियन लोग उससे चिढ़ कर अमेरिका चले गये। तथापि पार्नेल बिलकुल चुपचाप बैठना नहीं चाहता था। उसने कुछ दिनोंके लिए जमीनके सम्बन्धमें आन्दोलनको रोक कर होमरूलसम्बन्धी आन्दोलन करना चाहा। १६ अगस्तको डबलिन-की म्युनिसिपैलटीने उसे 'नागरिकताके अधिकार' भेंट किये और उस अवसर पर उसने लोगोंके समाने अपने विचार प्रकट किये। १७ अक्टूबर १८८२ को नैशनल लीगकी स्थापना हुई। स्वतंत्र पार्लमेण्ट

और भूमिका स्वामित्व उस सभाका साध्य और नियमानुमोदित आन्दो-लन साधन रक्खा गया । डिलन और डेविटको पार्नेलकी यह सौम्य नीति बुरी मालूम हुई, जिसके कारण उन लोगोंमें बीच बीचमें झगड़े होने लगे । उसके अदूरदर्शी अनुयायियोंने यह नहीं समझा कि जिस प्रकार गायक या वक्ताको समय समय पर अपना स्वर उतारना और चढ़ाना पड़ता है उसी प्रकार राजकीय नेताओंको भी चढ़ाना और उतारना पड़ता है; और इसलिए वे उसकी निन्दा करने लगे ।

पार्लमेण्टमें फार्स्टर आदिने पार्नेल पर खूब बौछारें की थीं, लेकिन पार्नेलने उनकी कुछ भी परवा न की और न आगे चलकर उसने केवल राजभक्ति दिखलानेके लिए अत्याचारोंका व्यर्थ निषेध ही किया । उसका मत था कि देशमें शान्ति रखना और अपराध न होने देना सरकारका कर्त्तव्य है; लोगोंको व्यर्थ दोष देना ठीक नहीं । दूसरे वर्ष पार्लमेण्टके चुनाव तथा दूसरे खर्चोंके लिए आयरिश लोगोंने चन्दा करके उसे तीस हजार पाउण्ड देकर अपनी कृतज्ञता प्रकट की । १८८५ में जब पार्लमेण्टमें टोरी दलका बहुमत हुआ तब उसने लिबरल दलकी सहायतासे टोरी मंत्रि-मण्डलको दिक करना शुरू किया। उस समय टोरी और लिबरल दोनों दल प्रायः बराबर बराबर ही थे; और जिस ओर आयरिश दल मिल जाता या वही पक्ष भारी हो जाता था । इस-लिए बारी बारीसे प्रत्येक पक्षकी सहायता करके उन्हें चढ़ाने उतारनेमें पार्नेलको खूब आनन्द आता था और साथ ही उसके राष्ट्रका बहुत कुछ लाभ भी होता था आयरिश लोगोंके उपकारका स्मरण करके टोरी मंत्रि-मण्डलने १८८५ में दमनकारक नियमोंकी वार्षिक पुनरावृत्ति नहीं की। इसके बाद जब नये चुनावका समय आया तब मतदाताओंके सामने व्याख्यान देते हुए लिबरल राजनीतिज्ञों और विशेषत-ग्लैड्स्टन साहबने यह झलका दिया कि आयरिश होमरूलका प्रश्न शीघ्र ही पार्लमेण्टमें उपस्थित किया

जायगा। उस चुनावमें ३३५ लिबरल और २४९ कन्सर्वेटिव चुने गये। अर्थात् ग्लैडस्टन साहबके पक्षमें ८६ मत अधिक थे; और १०३ आयरिश सभासदोंमें ८५ होमरूलर और एक साथ मिलकर काम करनेवाले थे। इसलिए वह जिस पक्षमें मिल जाता उसीकी जीत होती। अपने पक्षकी सत्ताको बनाये रखनेके लिए ग्लैडस्टन साहबने ८ अप्रैल १८८६ को पार्लमेण्टमें आयरिश होमरूल बिल उपस्थित किया। लेकिन लिबरल दलमें ही इस विषयमें मतभेद हो गया। कुछ लिबरल मेम्बरोंने तो यहाँतक निश्चय कर लिया कि चाहे लिबरल दल अधिकारच्युत हो जाय, पर यह बिल पास न हो। अतः ३१३ अनुकूल और ३४३ विरुद्ध मतोंके कारण ७ जूनको वह बिल रद्द हो गया। लिबरल मंत्रि-मण्डलने इस्तीफा दे दिया और फिर चुनावकी धूम मची। इस पराभवके कारण पार्नेल बहुत दुःखी हुआ। तो भी उसके शत्रु और मित्र सभी यह कहने लगे कि ५० वर्षमें आयरिश नेताओंने जितना काम नहीं किया था उतना अकेले पार्नेलने दस वर्षमें कर डाला। नये चुनावमें फिर होमरूलके पक्षपाती ५८ सभासद चुने गये। नई पार्लमेण्टमें जमीनके सम्बन्धमें पार्नेलने जो बिल उपस्थित किया था वह पास नहीं हुआ; तो भी विलियम ओब्रायन आदि युवक नेता उसके सम्बन्धमें आन्दोलन करते रहे। दुर्भाग्यवश अनाजके सस्ते हो जानेके कारण उस वर्ष खेतिहरोंको घाटा हुआ और फिरसे दंगा-फसाद होने लगा, पर पहलेका सा जोर इस बार नहीं रह गया था।

टाइम्स पत्र पार्नेलका बड़ा विरोधी था। समय समय पर वह यही सिद्ध करनेका प्रयत्न किया करता था कि देशमें नेताओंके कारण ही अत्याचार और उपद्रव होते हैं। सन् १८८७ में पिगट नामक एक देशद्रोही अधम व्यक्तिने पार्नेलको परेशान करनेके लिए उसके

नामकी कुछ जाली चिट्ठियाँ तैयार कीं और उनमेंसे दो एक पत्रों पर पार्नेलके जाली दस्तखत भी बना लिये। उन पत्रोंमें ऐसी बातें लिखी थीं, जिनसे सिद्ध होता था कि पार्नेल फीनिक्स पार्कवाली हत्याओं-का पक्षपाती और समर्थक है। उसने टाइम्सके सम्पादकोंसे कहा कि बड़ी कठिनतासे ये पत्र मुझे अमेरिकामें मिले हैं; और उन्हें बहका कर ८५० पाउण्ड पर वे पत्र उनके हाथ उसने बेच डाले। टाइम्सने बड़ी प्रसन्नतासे और बड़े जोरदार लेखोंके साथ उन पत्रोंको छाप डाला। उनमेंसे एकमें लिखा था:—

"आपके मित्रके नाराज हो जानेसे मुझे आश्चर्य नहीं हुआ; क्योंकि आपको और उन्हें यह बात ध्यानमें रखनी चाहिए कि हत्याका स्पष्ट रूपसे निषेध करनेके अतिरिक्त मेरे लिए और कोई मार्ग ही नहीं था। हत्याका निषेध तत्काल करना ही उस समय वास्तविक बुद्धिमत्ताका काम था। लेकिन मैं तुम्हें यह बतला देना चाहता हूँ कि लार्ड कैवेंडिशके अकारण मारे जानेका मुझे कुछ दुःख है। हाँ, बर्कको उचित दण्ड मिला। मेरी समझमें उसमें कोई अनुचित बात नहीं हुई। मेरा यह मत आप जिन लोगोंको जतलाना उचित समझें उन्हें प्रसन्नता-पूर्वक जतला दें और जिन लोगों पर आपका विश्वास हो उन्हें यह पत्र दिखला दें; मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं है। पर मेरा पता आप कभी किसीको न बतलावें।

भवदीय—
चार्ल्स स्टुअर्ट पार्नेल।"

१८ अप्रैलको उक्त पत्र प्रकाशित हुआ और सन्ध्याको उसे इसका पता लगा। उसी समय पार्लमेण्टमें पहुँचकर गम्भीरतापूर्वक उसने कह दिया कि यह पत्र बनावटी है, जिससे उसके विरोधियोंको भी चुप रहना पड़ा। लेकिन पार्नेल और टाइम्स दोनोंकी प्रतिष्ठा बराबर

थी, इसलिए पार्नेलको अपनी निर्दोषताके प्रमाण देनेकी आवश्यकता थी। तीन महीने तक इस सम्बन्धमें कुछ भी न हुआ। इसके उपरान्त सरकारी वकील सर रिचर्ड वेबस्टरने पार्नेल पर फिर वही पुराना अभियोग आरोपित किया और कहा कि आयरिश नेता अत्याचार कराते हैं। तब पार्नेलने कहा कि पार्लमेण्ट इस अभियोगकी जाँचके लिए एक कमेटी स्थापित करे। कमेटी तो नहीं बनाई गई, पर तीन न्यायाधीशोंका एक स्वतंत्र कमीशन इस सम्बन्धमें जाँच करनेके लिए नियुक्त हुआ। पार्नेलको और अभियोगोंकी तो कोई चिन्ता नहीं थी, पर उक्त पत्रको जाली प्रमाणित करनेकी उसे बहुत चिन्ता थी और वह जाल बनानेवालेको गिरिफ्तार कराना चाहता था। उस पत्रमें कुछ अक्षर पार्नेलके लेखसे भिन्न और दो एक शब्द बिलकुल अशुद्ध लिखे हुए थे। उन्हींसे लेखकका पता लगाना आवश्यक था। पार्नेलके सहकारी और लैण्ड लीगके एक सेक्रेटरी पैट्रिक ईगनके पास पिगटके लिखे हुए कुछ पत्र थे, जिनमें वैसी ही भूलें थीं। इसी आधार पर पिगट तलब किया गया और २० फरवरी १८८९ को कमीशनके सामने उसका इजहार हुआ। उस अवसर पर पार्नेलके वकील सर चार्ल्स रसलने उससे स्पष्ट शब्दोंमें तो नहीं, पर हेर फेरसे यह अवश्य स्वीकार करा लिया कि मैंने ये पत्र जाली बनाये हैं। उसी समय पिगटका उतरा हुआ चेहरा और घबराहट देखकर सब लोगोंने असली मामला समझ लिया। उस दिनके बादसे अदालतमें दर्शकोंकी भीड़ भी कम होने लगी। २६ फरवरीको उससे न्यायालयमें उपस्थित होनेके लिए कहा गया था, पर उस दिन वह नहीं आया। उसने अदालतमें लिखकर भेज दिया कि मैंने यह जाल किया है। पिगटके नाम वारण्ट निकला; और जब वारण्ट उसके पास पहुँचा तब उसने पिस्तौलसे आत्महत्या कर ली। पिगट सदा देशद्रोही कार्य्य करके और लोगोंको धमकाके रुपये वसूल किया करता था। इस लिए इस प्रकार उसका मर जाना अच्छा ही हुआ।

१३ फरवरी १८९० को कमीशनने जो रिपोर्ट तैयार की उसमें आन्दोलनके सम्बन्धमें अन्यान्य अभियोगोंको तो उसके प्रमाणित रक्खा पर यह अवश्य कह दिया कि फीनिक्स पार्कवाले और दूसरे अत्याचारोंके साथ पार्नेल आदिका कोई सम्बन्ध नहीं था और न लैण्ड लीग आदिके सार्वजनिक कोषसे इन अत्याचारोंके लिए आर्थिक सहायता दी जाती थी। चारों और पार्नेलका खूब अभिनन्दन होने लगा। बड़े बड़े लिबरल राजनीतिज्ञ बुलाबुलाकर उसका आदर करने लगे। इस प्रकार शत्रु और मित्र दोनों ही उसे मानने लगे और उसका यश बहुत बढ़ गया। पर शीघ्र ही उसके इस यशका ह्रास भी होने लगा। यद्यपि इसके उपरांत वह दो ही वर्ष जीवित रहा; पर यह समय उसके लिए बहुत ही दुःखद और चिन्ताजनक हुआ। २४ दिसंबर १८८९ को कैप्टन ओशिया नामक एक आयरिश सभासदने न्यायालयमें उस पर यह अभियोग लगाया कि मेरी स्त्रीसे इसका अनुचित सम्बन्ध है और कहा कि इसी लिए मैं अपनी स्त्रीको तलाक देना चाहता हूँ। तबसे लोकमतका प्रवाह उसके विरुद्ध हो गया। उसकी बहुत बदनामी हुई, जिससे उसके शत्रु बहुत प्रसन्न हुए। उसने इस मुकदमेके सम्बन्धमें कुछ भी न किया और ओशियाकी डिग्री हो गई। अब चारों ओरसे सब लोग उससे कहने लगे कि तुम अपना नेतृत्व और होमरूलके आन्दोलनसे सम्बन्ध छोड़ दो। उनमेंसे कुछ तो उसके शत्रु थे और कुछ पापभीरु और सच्चे लोग थे; और ग्लैडस्टन साहब उनमेंसे एक थे। यद्यपि निजके और सार्वजनिक आचरणका सम्बन्ध जोड़नेके लिए कुछ नियमित मर्य्यादा होनी चाहिए, तथापि होमरूलसरीखे महत्त्वपूर्ण कामके साथ उसके सम्बन्ध होनेके कारण बड़े बड़े योग्य मनुष्योंने उसे सार्वजनिक कार्य्य छोड़ देनेके लिए कहा। वह होमरूलके आन्दोलनसे अलग नहीं होना चाहता था और इसके लिए तीन कारण बतलाता था। एक तो यह कि आज-

तक मैंने देशकी जो सेवा की है उसे देखते हुए मुझे अलग होनेके लिए कहना ठीक नहीं है; क्योंकि राजकीय विषयोंमें सारासारका विचार करनेकी पात्रता मुझमें अब तक है। दूसरे यह कि अँगरेज मुझसे भले ही अलग हो जानेके लिए कहें; पर आयरिश लोगोंको उनका अनुकरण करना मानों अपनी दुर्बलता प्रकट करना है। अँगरेजोंका तो इसीमें कल्याण है; पर आयरिश लोगोंको अपना हानि लाभ सोचना चाहिए। तीसरे यह कि होमरूलके सम्बन्धमें आन्दोलनमें बहुत कुछ सफलता हो रही है; ऐसे अवसर पर यदि उसका काम किसी दूसरेके हाथमें चला जायगा तो उक्त आन्दोलनका अहित होगा। लेकिन उस समय यह निश्चय करना कठिन था कि इन बातोंमें कितनी सत्यता है और पार्नेल इसमें कहाँतक अपने स्वार्थका ध्यान रखता है। तो भी उसके अनुयायियोंमें दो दल हो गये। डिलन, ओब्रायन, ओकोनर मेकार्थी, हीली आदि दूसरी श्रेणीके नेताओंका पहले यह मत था कि पार्नेलको पद-भ्रष्ट न किया जाय। लेकिन पीछे आयर्लैण्ड और इंग्लैण्ड दोनों देशोंके बड़े बड़े सदाचारी, नीतिमान् और सद्धर्म्मशील पुरुषोंने उसे पदभ्रष्ट करनेकी ही सम्मति दी। ग्लेडस्टनने तो इसके लिए यहाँतक उद्योग किया कि 'स्टेण्डर्ड' में एक पत्र भी अपने नामसे छपवा दिया, जिसके उत्तरमें पार्नेलने 'शेषं कोपेन पूरयेत्' के न्यायानुसार उनको तथा लिबरल पक्षको बहुतसी उलटी सीधी बातें कह सुनाईं। अन्तको १ दिसंबरको पार्लमेण्टके एक दालानमें आयरिश सभासदोंकी एक अलग सभा हुई जिसमें स्वयं पार्नेल ही सभापति हुआ। एक सभासदने प्रस्ताव किया कि अब पार्नेल नेता न रहे; पर उसने कुछ औपचारिक कारण लगाकर वह प्रस्ताव रद्द कर दिया। इसके बाद यह कहा गया कि इस वादग्रस्त विषयपर विचार करनेके लिए डबलिनमें एक सभा हो; पर बहुमतसे यह भी अस्वीकृत हुआ। और तब यह निश्चय हुआ कि

पहले यह अच्छी तरह समझ लिया जाय कि पार्नेलको पदभ्रष्ट करनेसे आयरिश लोगोंको ग्लैडस्टन साहब देंगे क्या, और तब उसे पदभ्रष्ट किया जाय। लेकिन यह लोगोंको चकमा देना ही था। क्योंकि ग्लैडस्टन साहब होमरूलके सम्बन्धमें पहलेसे ही कोई वचन तो दे नहीं सकते थे। अस्तु। एक डेप्युटेशन ग्लैडस्टनके पास गया। उन्होंने केवल इतना उत्तर दिया कि होमरूल बिल शीघ्र ही उपस्थित किया जायगा; उस समय सब बातें लोगोंको मालूम हो जायँगी। इसके बाद फिर आयरिश सभासदोंकी सभा हुई; पर उसमें झगड़ा होनेके कारण मेकार्थीके साथ २६ सभासद उठकर चले गये। इस प्रकार पार्नेलकी जीत तो हो गई, पर उससे प्रश्नकी मीमांसा नहीं हुई। जिस अन्तः-कलहके लिए आयर्लैंड इतना प्रसिद्ध है वही आगे चलकर फिर सारे देशमें फैली हुई दिखाई दी। डेविट, डिलन आदि पार्नेलके नेतृत्वसे निकल गये। आयर्लैंडमें उसे केवल फीनियन युवकोंका भरोसा रह गया था। रेंडमण्डसरीखे भी कुछ अनुयायी थे, जो उसे मरण-पर्य्यन्त नहीं छोड़ना चाहते थे। इस लिए गाँव गाँवमें उसके पक्षपाती और विरोधी दोनों दल खड़े हो गये। डेविट सरीखे लोग जो पहले स्वयं-फीनियन लोगोंमें सम्मिलित थे कहने लगे कि पार्नेल फीनियन लोगोंको उत्तेजित करके देशमें उपद्रव खड़ा करता है। इसी प्रकार एक वर्ष तक और भी बहुत सी बातों पर कहा सुनी होती रही। पार्नेलने पद-भ्रष्ट न होनेके लिए सैकड़ों कारण दिये पर फल कुछ भी न हुआ। लेकिन एकबार गई हुई बात फिर हाथ नहीं आती। इसी बीचमें ३१ सितंबर १८९१ को वह बीमार पड़ा और १० अक्टूबरको इंग्लैण्डमें ही मर गया। उसकी लाश दूसरे दिन आयर्लैंड लाई गई और बड़े स-मारोहसे लाखों आदमियोंकी मौजूदगीमें दफ़न की गई।

पार्नेल बहुत ही योग्य, बुद्धिमान् और चलता हुआ आदमी था;

पर वह अच्छा वक्ता नहीं था। विद्वत्ता भी उसमें बिलकुल नहीं थी; वह इतिहास भी कुछ नहीं जानता था। तो भी अपने समयके सब नेताओंसे वह केवल इसीलिए बढ़ गया था कि उसमें अँगरेजोंके प्रति द्वेष बहुत अधिक था; और जिस समय वह राजनीतिक क्षेत्रमें उतरा वह समय ऐसा था कि सब लोग अँगरेजोंके द्वेष्टाकी बात माननेके लिए तैयार रहते थे। अँगरेजोंसे द्वेष करनेवाले और भी बहुतसे लोग थे; पर आदर उसीका हो सकता था जो आन्दोलनके मुख्य केन्द्र पार्लमेंट-में वह द्वेष प्रकट करनेका साहस करता। लोगोंको यद्यपि पार्लमेण्टसे कुछ आशा न रह गई थी, तो भी उसकी हँसी उड़ाना लोगोंको बहुत पसन्द था। और पार्नेलको यह काम खूब आता था। उसने केवल यही देश-सेवा की कि पार्लमेण्टका ध्यान बलपूर्वक आयलैंण्डकी ओर आकृष्ट किया। उससे पहले पार्लमेण्टके नक्कारखानेमें आयलैंण्डकी तूतीकी आवाज कोई नहीं सुनता था। लेकिन यह बात बहुत ही महत्त्वपूर्ण है कि कुछ समयके लिए उसने पार्लमेंटका नक्कारा बन्द कर दिया और अपनी तूती संसारको सुना दी। आयरिश सभासदोंका पहले पार्लमेंटमें रहना और न रहना दोनों बराबर होता था; पर पार्नेल-ने पार्लमेंटमें पहुँचकर हलचल मचा दी थी। वह भरी सभामें बेधड़क होकर अँगरेजोंको फटकार बताता था और इसीलिए उसका इतना यश हुआ। वह परिस्थितिको खूब ताड़ लेता था और सबसे अधिक अनु-कूल उपाय निकाल लेता था। वह बहुत थोड़ी बातें कहता था; पर लोग उन थोड़ी बातोंको ही विशेष और महत्त्वपूर्ण समझते थे। वह पहलेसे अपने विचार प्रकट नहीं करता था; पर जब जो कुछ कह देता था वह वज्रलेप हो जाता था। किसीकी बातमें आकर वह अपना मत या विचार नहीं बदलता था, सब प्रश्नोंकी मीमांसा स्वयं ही करता था। वह आयरिश सभासदोंको अपने अधिकारमें रखकर अँगरेजोंको तंग करता था। उसने समझ लिया था कि बिना कुचेष्टाके प्रतिष्ठा

नहीं बढ़ती; और इसीलिए सबका ध्यान उसकी ओर लगा रहता था। वह लोगोंमें अपना आदर कराना नहीं चाहता था। उसे केवल द्वेषकी धुन सवार थी। विद्या, कला, धैर्य्य, नीति, परोपकार आदिसे उसका कोई सरोकार नहीं था। राजनीतिक कार्य्यको छोड़कर समाज-हितका और कोई कार्य्य उसने नहीं किया। तो भी उसने जो कुछ किया उससे उसके राष्ट्रका हित अवश्य हुआ।

ओकानेल और पार्नेलका साधर्म्य भी ध्यानमें रखने योग्य है। दोनों ही पार्लमेंटमें नियमानुमोदित आन्दोलन करनेवाले थे; और उसीके द्वारा वे सब काम करना चाहते थे। लेकिन दोनों ही समझते थे कि पार्लमेंट हमारे शत्रुओंसे भरी हुई है, इसलिए वे कानूनको खींच तान कर लड़ते थे। दोनों ही निर्भय होकर भरी सभा पर टूट पड़ते थे। लेकिन दोनोंमें अन्तर बहुत था। ओकानेल अधिक बुद्धिमान् था और लोगोंके साथ खूब मिल-जुल कर काम करता था। यों तो सारा आयर्लैंड उसका साथ देता था; पर पार्लमेंटमें ३०–४० सभासद ही उसके सहायक थे। पर पार्नेलके आज्ञाकारी ८० सभासद थे। ओकानेल लोगोंमें राजभक्ति उत्पन्न करना भी खूब जानता था और जब चाहता था तब उन्हें विद्रोहके लिए भी तैयार कर लेता था। पर पार्नेलका सिद्धान्त सदा एकसा रहता था। वह समझता था कि बिना खूब झगड़े कुछ भी नहीं मिल सकता। तो भी वह कभी कोई काम नियम-विरुद्ध नहीं करता था। हाँ नियम-विरुद्ध काम करनेवालोंसे अपने काममें सहायता अवश्य लेता था। पर ओकानेल उनसे बात करना भी पसन्द नहीं करता था। ओकानेल लोगोंको अपने अनुकूल करता था और पार्नेल स्वयं लोकमतके अनुकूल चलता था। पार्नेलकी पार्लमेंटके सभी सभासद खुशामद करते थे। ओकानेल हँसता हुआ पार्लमेण्टमें जाता था और पार्नेल खिन्न-वदन होकर। ओकानेल इंग्लैण्ड और आयर्लैण्डका सम्बन्ध

रखना चाहता था पर पार्नेलका उस ओर ध्यान ही नहीं था। ओकानेल-का मत था कि इंग्लैण्डके साथ सद्भाव रखकर स्वतंत्र पार्लमेण्ट प्राप्त की जाय; पर पार्नेलका मत था कि आयरिश लोग जो कुछ माँगें वह इंग्लैण्डको देना पड़े। ओकानेलकी तरह पार्नेल खुले-आम गुप्त सभाओंका विरोध नहीं करता था; बल्कि उसकी समझमें उन्हें दबाना सिर्फ सरकारका काम था। वह कहता था कि बिना आयरिश नेताओंकी सहायताके तीन सौ वर्ष तक राज्य करके भी यदि अँगरेज लोग शान्ति नहीं रख सकें तो उन्हें राज्य छोड़कर अलग हो जाना चाहिए और देशको नेताओंके सपुर्द कर देना चाहिए। ओकानेलके विरुद्ध उसका यह भी मत था कि जब तक अनुग्रह करनेके साधन हमारे पास न हों तब तक हम व्यर्थ निग्रहके झगड़ेमें क्यों पड़ें?

पार्नेलके समय आयरिश पक्ष सबसे अधिक प्रबल था। १८९० वाली दलबन्दीसे पहले आयरिश सभासदोंमें उसने खूब एकता रक्खी थी। उसके अनुयायी अच्छे अच्छे विद्वान्, वक्ता और लेखक थे। पर ओकानेलके वैसे साथी नहीं थे, उसे अधिकांश कार्य्य अकेले ही करने पड़ते थे। पर पार्लमेण्टमें पार्नेलकी मण्डली कभी कभी भारी पड़ती थी और इसी लिए उसके प्रयत्नोंमें सफलता भी होती थी। मौका पाते ही कभी उसकी मण्डली तालियाँ बजाकर, कभी हास्यकारक बातें कहकर, कभी व्याख्यान देकर और कभी पार्लमेण्टका काम रोकनेका उपक्रम करके चलती गाड़ीके आगे काठ डालती थी। वह मंत्रि-मण्डलको दिक् करके आयरिश लोगोंकी बातोंकी ओर उसका ध्यान आकृष्ट कराती थी। सब तरहके दाव-पेच करके, आक्रमण करके और लड़-झगड़के वह सदा राजनीतिक रण-क्षेत्रमें आगे बढ़नेके लिए तैयार रहती थी। इस सम्बन्धमें वह कवायद करना खूब जानती थी और इस कवायदका श्रेय पार्नेलको था।



परिशिष्ट* ।

' राष्ट्रीय स्वतंत्रताका आन्दोलन ' शीर्षक छठे प्रकरणके अन्तमें हम बतला चुके हैं कि ब्रिटिश सरकारने आयरिश समस्याकी मीमांसाके लिए वहाँके प्रायः सभी राजनीतिक दलों तथा अन्यान्य समाजों और वर्गोंके प्रतिनिधियोंको एक महासभा या कनवेनशन करके यह निश्चय करनेका अधिकार दिया था कि वे सब लोग मिलकर स्वयं यह निश्चित करें कि भविष्यमें आयर्लैण्डका शासन किस प्रकार हो। उस समय हमने यह भी लिखा था कि—" इस समय जो दल इससे अलग रहेगा उसके नेताओं पर बड़ा भारी दायित्व रहेगा और यदि वह कनवेनशन कुछ सिद्धान्त स्थिर न कर सकी तो इसमें स्वयं आयरिश ही दोषी होंगे और यही समझा जायगा कि समस्त आयर्लैंड स्वराज्य नहीं चाहता। × × × × × × × × आयरिश लोगोंकी उच्चाकांक्षाओंकी पूर्ति और स्वराज्य-पात्रताकी सिद्धि आकर इसी कन-वेनशन पर निर्भर हुई है । आशा है आयर्लैण्ड ऐसा अमूल्य अवसर अपने हाथों नष्ट न करेगा। " (देखो पृष्ठ १५७)

लेकिन जिस घरकी फूटके लिए आयर्लैण्ड इतना प्रसिद्ध है और जिस फूटके कारण सैकड़ों वर्षसे उसे पराधीनताके गड्ढेमें पड़े रहना पड़ा है, देखते हैं, उस फूट और मतभेदने अभीतक उसका पीछा नहीं छोड़ा। सर होरेश प्लंकेटकी अध्यक्षतामें कनवेनशनके अधिवेशन हुए और गत अप्रैल (१९१८) के मध्यमें उसकी रिपोर्ट भी प्रकाशित हो गई। यद्यपि प्रायः आठ मासतक आयर्लैण्डके सभी दलोंको ठीक

* इस पुस्तकका अनुवाद ४—५ मास पहले ही तैयार हो चुका था, पर इसके छपनेमें बहुत अधिक विलम्ब हो गया। अतः इस परिशिष्टमें आयर्लैण्ड-सम्बन्धी इधरकी कुछ नई बातें दी जाती हैं।—रामचन्द्र वर्मा।

रास्ते पर लाने और एकमत करनेके लिए कठिन परिश्रम किया गया था तथापि उसमें सफलता नहीं हुई और जो रिपोर्ट प्रकाशित हुई सर्व-सम्मतिसे नहीं बल्कि बहुमतसे हुई। उस रिपोर्टको इंग्लैण्डके महामंत्री मि० लाइड जार्जके पास भेजते हुए उन्होंने साथमें एक पत्र भी भेजा था जिसमें उन्होंने उस रिपोर्टकी मुख्य मुख्य बातें दे दी थीं। उस रिपोर्ट तथा पत्रको देखनेसे ज्ञात होता है कि कनवेनशनमें बहुमतसे यह तो निश्चय हो गया कि आयर्लैण्डमें ६४ सदस्योंका एक सिनेट तथा २०० सदस्योंका एक हाउस आफ कामन्स हो, और नेशनलिस्ट अथवा जातीय दलके लोगोंने यह बात भी कह दी थी कि यदि आवश्यकता हो और यूनियनिस्ट दलके लोग चाहें तो वे हाउस आफ कामन्सके लिए ४० प्रति सैकड़े अर्थात् २०० में से ८० सभासद स्वयं मनोनीत कर सकते हैं। अलस्टरवालोंने अपने प्रान्तसे सभासदोंको मनोनीत करना भी अस्वीकृत किया और अपने दलकी ओरसे एक अलग रिपोर्ट लिखकर उसमें इस बात पर जोर दिया कि यदि आयर्लैण्डको स्वराज्य दिया भी जाय तो हमारा प्रान्त अलस्टर उससे बिलकुल अलग और स्वतंत्र रक्खा जाय। उनमेंसे कुछ लोगोंका मत था कि यदि आयर्लैण्डको यूनाइटेड किंगडम (United kingdom) से अलग हो जानेका अधिकार है तो अलस्टरको भी शेष आयर्लैण्डसे अलग हो जानेका अधिकार है! थोड़ेसे नेशनलिस्ट भी ऐसे निकले, स्वराज्य-सम्बन्धी बातोंमें जिनका मत और लोगोंसे भिन्न था। शेष सब नेशनलिस्ट, समस्त दाक्षिणी यूनियनिस्ट और मजदूर-दलके सात प्रतिनिधियोंमेंसे पाँच प्रातिनिधि होमरूल या स्वराज्यके पूरे पक्षपाती थे और इन्हीं लोगोंकी संख्याकी अधिकताके कारण बहुमतसे यह रिपोर्ट भी प्रकाशित हो सकी जो होमरूल या स्वराज्यके पक्षमें है। यदि अलस्टरवाले यूनियनिस्ट भी इन लोगोंका साथ देते तो कहा जा सकता

था कि यह रिपोर्ट सर्वसम्मतिसे प्रकाशित हुई है । अलस्टरवालोंको मिला-नेके लिए नेशनलिस्ट लोगोंने उनकी और कई बातें मान ली थीं, पर फिर भी स्वराज्यके सम्बन्धमें नेशनलिस्ट लोगोंकी बातें अलस्टरवालोंने नहीं मानीं और एक विवादात्मक प्रश्न उपस्थित कर ही दिया । तथापि कनवेनशनने बहुमतसे यही निश्चित किया कि सारे आयर्लैण्डके लिए एक पार्लमेण्ट हो जिसे देशके सब प्रकारके आन्तरिक प्रबन्ध आदिके लिए पूरा पूरा अधिकार हो, वह अपने देशके लिए कानून बना सके, उसका शासन कर सके और लोगों पर स्वयं ही टैक्स आदि लगा सके । साधारणतः आयरिश लोग चाहते हैं कि हमें वैसा ही स्वराज्य मिले जैसा कि उपनिवेशों आदिको प्राप्त है । उपनिवेशोंमें अपने यहाँकी जल तथा स्थल-सेनाका प्रबन्ध स्वयं ही किया जाता है, साम्राज्य-सरकार उससे कोई सम्बन्ध नहीं रखती । परन्तु आयर्लैण्डकी भौगोलिक स्थिति ऐसी नहीं है—वह इंग्लैण्डके इतना पास है, कि वहाँ जल तथा स्थल-सेनाका स्वतंत्र प्रबन्ध नहीं हो सकता । इस लिए कनवेनशनने भी यही निश्चित किया कि जल तथा स्थल-सेनासम्बन्धी सब अधिकार ब्रिटिश सरकार और ब्रिटिश पार्लमेण्टके ही हाथमें रहे ।

स्वराज्यका दूसरा महत्त्वपूर्ण अंग अर्थ-प्रबन्ध है । यदि स्वराज्य मिल जाने पर भी किसी देशको अपने यहाँका आर्थिक प्रबन्ध करनेका अधिकार न हो तो वह स्वराज्य अधूरा ही ठहरेगा, उससे लोगोंकी उच्चाकांक्षाओंकी पूर्ति नहीं हो सकती । लेकिन मि० लाइड जार्जने पहले ही एक अवसर पर बतला दिया था कि कमसे कम जबतक युद्ध समाप्त न हो जाय तब तक आयर्लैण्डको आर्थिक स्वतंत्रता मिलना सम्भव नहीं है और ब्रिटिश सरकार चाहती है कि ग्रेटब्रिटेन तथा आयर्लैण्डमें इस समय जो आर्थिक सम्बन्ध है वह ज्योंका त्यों बना रहे, उसमें किसी प्रकारका व्यत्यय न हो । और यह बात बहुतसे अंशोंमें ठीक भी थी ।

गवर्नमेण्टका यह भी विचार था कि युद्धके दो वर्ष बाद तक आयर्लैण्डके आयात-सम्बन्धी करों तथा आबकारी पर ब्रिटिश पार्लमेण्टका पूरा पूरा अधिकार रहे और ज्यों ही आयरिश पार्लमेण्ट स्थापित हो त्यों ही एक संयुक्त एक्सचेकर बोर्ड इस बातका निश्चय करनेके लिए स्थापित हो कि आयर्लैण्डकी वास्तविक आय क्या होनी चाहिए; और तब इस बातकी जाँचके लिए एक रायल कमीशन नियुक्त हो कि आयर्लैण्ड कितना धन प्रतिवर्ष साम्राज्य सरकारको साम्राज्यसम्बन्धी व्ययके लिए दिया करे और दोनोंका आर्थिक तथा व्यापारिक सम्बन्ध किस प्रकारका हो। पुलिस और डाक-विभागको भी सरकार युद्ध-कालतक अपने ही अधिकारमें रखना चाहती थी। इन बातों पर कनवेनशनमें बहुत कुछ वादविवाद हुआ था और कुछ लोगोंने अपनी अपनी सम्मतिके अनुसार इस सम्बन्धमें भिन्न भिन्न प्रस्ताव उपस्थित किये थे। पर उनमेंसे लार्ड मेकडानलका प्रस्ताव कनवेनशनको अधिक पसन्द आया, क्योंकि उसमें मि० लाइड जार्ज तथा सरकारकी मुख्य मुख्य बातोंका समावेश होगया था। तदनुसार कनवेनशनने निश्चित किया कि आबकारी और बाहरसे आनेवाले माल पर महसूल लगानेका अधिकार अभी तो साम्राज्य सरकारको ही रहे, पर उनके सम्बन्धकी सब बातोंका अन्तिम निर्णय युद्ध समाप्त होनेके सात वर्षके अन्दर ही हो जाय; ग्रेटब्रिटेनके व्यापारमें किसी प्रकारकी बाधा न हो इसके लिए दोनों देशोंमें मुक्तद्वार या स्वच्छन्द वाणिज्य होता रहे; युद्धकालमें पुलिस और डाक-विभाग पर आयरिश तथा साम्राज्य दोनों सरकारोंका संयुक्त अधिकार रहे; और संयुक्त एक्सचेकर बोर्ड तो बने पर रायल कमीशनकी नियुक्त न हो। अलस्टर यूनियनिस्टोंने इस सम्बन्धकी अनेक बातोंको अस्वीकृत किया और उनके विषयमें अपनी स्वतंत्र रिपोर्ट दी। कुछ नेशनलिस्टोंका कहना था कि इम्पीरियल पार्लमेण्टको

इस बातका अधिकार नहीं होना चाहिए कि वह आयर्लैण्डके लिए अनि-वार्य्य सैनिक सेवाका विधान करे। पर कुछ नेशनलिस्टोंने कहा कि नहीं, इस कठिन समयमें हमें साम्राज्य-सरकारकी धन और जनसे कुछ सहायता करनी चाहिए। देश-रक्षा और पुलिस-सम्बन्धी जो सब-कमेटी नियुक्त हुई थी उसने अपनी रिपोर्टमें कहा था कि यदि आयर्लैण्डको स्वराज्य मिल जाय तो उस दशामें बिना आयरिश पार्लमेण्टकी स्वीकृति और सहा-यताके आयर्लैण्डमें जबरदस्ती भर्त्तीका कानून जारी न हो सकेगा। आगे बढ़नेसे पहले इस अवसरपर इस रिपोर्टके सम्बन्धमें हम केवल दो बातें बतला देना चाहते हैं। एक तो यह कि कनवेनशनकी बैठक आरम्भ होनेसे पहले आयरिश लोगोंमें जो मत-भेद था, वह मत-भेद कनवे-नशनकी रिपोर्टतकमें बना रहा। और दूसरी बात यह कि कुछ तो युद्धके कारण और कुछ इस मत-भेदके कारण कनवेनशनकी स्वराज्य-सम्बन्धी अधिकारोंकी माँगें अनेक अंशोंमें घट गईं। जैसा कि हम पहले कह चुके हैं इस रिपोर्टके आधार पर आयर्लैण्डको मिलनेवाला स्वराज्य प्रायः अधूरा ही ठहरेगा—उससे नेशनलिस्टोंकी उच्चाकांक्षाओंकी पूर्त्ति नहीं होगी। इसी बीचमें (अप्रैल १९१८ के आरम्भमें) हाउस आफ कामन्समें जन-बल सम्बन्धी बिल पर विचार हो रहा था। विचार क्या हो रहा था; उस बिलको जल्दी जल्दी रस्म अदा करके पास करनेकी चिन्तामें लोग लगे हुए थे। युद्धके लिए सैनिकोंकी आवश्यकता दिन पर दिन बढ़ती जाती थी। सरकार चाहती थी कि अट्ठारहसे पचास वर्ष तककी अवस्थाके सब लोग और पचपन वर्षतककी अवस्थाके कुछ विशिष्ट योग्यता तथा शिक्षाप्राप्त लोग सैनिक सेवामें लिये जा सकें; पहले कुछ विशिष्ट नियमोंके अनुसार जो लोग सैनिक सेवा करनेसे मुक्त हो सकते थे, वे आगे मुक्त न हो सकें और सम्राट्को इस बातका अधिकार प्राप्त हो जाय कि वे इस आज्ञ-

यकी एक घोषणा प्रचारित कर दें कि इस जातीय संकटके समय कोई मनुष्य सैनिक सेवासे मुक्त न हो सकेगा—सबके लिए सैनिक सेवा अनिवार्य्य हो जाय। ९ अप्रैलको मि० लाइड जार्जने हाउस आफ कामन्समें युद्धकी तत्कालीन स्थिति तथा अन्यान्य अनेक बातोंके सम्बन्धमें एक बहुत बड़ा व्याख्यान दिया था जिसमें उक्त जन-बल-सम्बन्धी बिल पर भी कुछ बातें कही थीं और उनके स्वीकृत होनेकी आवश्यकता तथा लाभ बतलाये थे। जिस समय आयर्लैण्डका जिक्र आया और उन्होंने कहा कि ऐसे अवसर पर आयर्लैण्डको अलग छोड़ देना और उससे जन-बलकी सहायता न लेना न्याय-संगत न होगा उस समय पार्लमेण्टके आयरिश सदस्योंने अपना असन्तोष और अस्वीकृति प्रकट की थी। मि० लाइड जार्जने कहा था कि—"हाउस आफ कामन्समें आजतक होमरूलसम्बन्धी कोई ऐसा प्रस्ताव उपस्थित नहीं हुआ, जिसमें जल तथा स्थल-सेनासम्बन्धी पूर्ण अधिकारोंसे साम्राज्यकी पार्लमेण्टको वंचित रखनेकी बात कही गई हो; इसलिए इस नये बिलसे जातीय अधिकारों पर किसी प्रकारका आक्रमण नहीं होता। इस युद्धके साथ इंग्लैण्डका जितना सम्बन्ध है आयर्लैण्डका भी उसके साथ उतना ही बल्कि उससे भी कुछ बढ़कर सम्बन्ध है। युद्धके आरम्भमें आयर्लैण्डने अपनी पूरी सहानुभूति प्रकट की थी। अमेरिका भी युद्धमें सम्मिलित है और आयर्लैण्डकी अपेक्षा अमेरिकाके संयुक्त राज्योंमें अधिक आयरिश निवास करते हैं, जो सबके सब वहाँ सैनिक सेवा करनेके लिए बाध्य हैं। इसी प्रकार ग्रेटब्रिटेन और कनाडामें रहनेवाले आयरिश लोग भी सैनिक सेवाके लिए बाध्य हैं। एक छोटेसे कैथोलिक देश (बेलजियम) की स्वतंत्रताकी रक्षाके लिए इंग्लैण्ड, वेल्स और स्काटलैण्डके १८ से ५० वर्ष तकके ब्याहे और बालबच्चेवाले लोग तो सेनामें ले लिये जायँ और २० से २५ वर्ष तकके आयरिश सेनामें भर्त्ती होनेसे बच जायँ,

यह अनुचित और अन्याय ही है।" आदि आदि बातें कहकर मि० लाइड जार्जने कहा कि इसी लिए आयर्लैण्डमें भी उन्हीं शर्तों पर मिलिटरी सरविस एक्ट (Military Service act) का व्यवहार करनेका प्रस्ताव किया जाता है जिन शर्तों पर ब्रिटेनमें उसके व्यवहृत होनेकी बात है। साथ ही आयर्लैण्डवालोंको सन्तुष्ट करनेके लिए उन्होंने यह भी बतला दिया कि सरकार चाहती है कि पार्लमेण्टसे तुरन्त आयरिश होमरूल बिल पास करनेके लिए कह दिया जाय। इस पर आयरिश मेम्बरोंने बहुत शोर मचाया और कहा—'रहने दीजिए'। मि० लाइड जार्जने यह भी कह दिया कि होमरूल और अनिवार्य्य सैनिक सेवाको एक दूसरे पर निर्भर नहीं रहना चाहिए। दोनों पर अलग अलग और उनके महत्त्वके अनुसार विचार होना चाहिए। पर आयरिश लोग चिल्लाते ही जाते थे और कुछ तो यहाँतक कहते थे कि—'दोनोंको रहने दीजिए।' कनवेनशनकी रिपोर्टके सम्बन्धमें उन्होंने यह भी बतला दिया था कि यद्यपि वह रिपोर्ट बहुमतसे तैयार हुई है तथापि उससे भली भाँति यह सिद्ध नहीं होता कि सब दलोंमें पूरा समझौता हो गया है, इसी लिए उन्होंने यह भी बतला दिया कि इस सम्बन्धमें भविष्यमें क्या होना चाहिए। उन्होंने कहा कि कनवेनशनकी रिपोर्टके आधार पर पार्लमेण्टके सामने स्वयं सरकारको ऐसे प्रस्ताव उपस्थित करने चाहिए जो कि बिना किसी भारी विरोध या आपत्तिके स्वीकृत हो जायँ। सरकार शीघ्र ही ऐसा मसौदा पार्लमेण्टमें उपस्थित करेगी और उसको शीघ्र पास कर देनेकी सम्मति भी उसे देगी। जिस समय बहुतसे आयरिश युवक रणक्षेत्रमें लड़ते हों उस समय उनके मनमें यह भाव उत्पन्न होना चाहिए कि वे अपने देशके बाहर उस सिद्धान्तकी स्थापनाके लिए नहीं लड़ रहे हैं जो स्वयं उन पर प्रयुक्त नहीं हुआ है। इस पर आयरिश दलने खूब तालियाँ पीटकर अपनी प्रसन्नता प्रकट की थी।

उसी अवसरपर मि० डिलनने जो स्वर्गीय मि० जान रेडमडकी +मृत्युके उपरान्त आयरिश दलके नेता हुए है, खड़े होकर भरी पार्लमेण्टमें कह डाला कि आयर्लैण्डमें सरकारका जबरदस्ती भर्त्तीका कानून जारी करना पागलपनका काम है। उसी समय उन्होंने यह भी प्रस्ताव किया था कि यह जन-बलसम्बन्धी बिल अभी स्थगित कर दिया जाय, परन्तु उनके पक्षमें केवल ८५ मत आये और विपक्षमें २०१ मत रहे, जिससे वह स्थगित न हो सका। तात्पर्य यह कि बिना स्वराज्यका निपटारा हुए आयरिश लोग जबरदस्ती भर्त्तीका बिल स्वीकृत करनेके लिए तैयार नहीं थे। मजदूर दलने भी स्पष्ट कह दिया था कि आयर्लैण्डको बिना स्वराज्य दिये वहाँ कभी जबरदस्ती भर्त्तीका कानून जारी नहीं करना चाहिए। जिस समय पार्लमेण्टमें जन-बल-बिल पर वादविवाद हो रहा था, उस समय मि० डिलनने यह भी प्रस्ताव किया था कि इस बिलमेंसे आयर्लैण्ड शब्द निकाल दिया जाय; परन्तु प्रधान मंत्री मि० लाइड जार्जने इसके उत्तरमें कहा था कि आयर्लैण्डमें जबरदस्ती भर्त्तीका कानून जारी करनेसे पहले ही होमरूल बिल पास कर दिया जायगा। इसपर मि० हीलीने प्रश्न किया कि हाउस आफ लार्ड्सने आयरिश होमरूल बिल अस्वीकृत कर दिया तो क्या उस दशामें मंत्रिमंडल इस्तीफा दे देगा? उत्तरमें मि० बार्नेसने

+ मि० जान रेडमड ब्रिटिश पार्लमेण्टमें आयरिश नेशनलिस्ट दलके प्रधान नेता थे। सन् १९१२ वाला आयरिश होमरूल बिल पार्लमेण्टमें उन्हींके अविश्रांत परिश्रम और प्रयत्नसे पास हुआ था। आयरिश कनवेनशनमें सब दलोंको मिलाने और भावी होमरूलकी स्कीम तैयार करनेमें भी ये ही अग्रगण्य थे। ये स्वराज्यके कट्टर पक्षपाती होनेके अतिरिक्त साम्राज्यके भी कट्टर भक्त थे और आयर्लैण्डको साम्राज्यसे कभी अलग नहीं करना चाहते थे। इनकी मृत्युसे जो ६ मार्च १९१८ को हुई, आयर्लैण्डकी बहुत बड़ी जातीय और राजकीय हानि हुई है।

कहा कि हाँ यदि हाउस आफ लार्ड्सने होमरूल बिल अस्वीकृत कर दिया तो हम लोग इस्तीफा दे देंगे। इसी अवसर पर प्रधान मंत्री मि० लाइड जार्जने और भी कई महत्त्वपूर्ण बातें कही थीं, जिनसे सिद्ध होता था कि विशेषतः अमेरिकाकी प्रसन्नताके लिए आयर्लैण्डको होम-रूल देना और भी आवश्यक था। उन्होंने कहा था कि अमेरिकामें जबरदस्ती भर्त्तीका कानून जारी हो गया है और अमेरिकन सेना हम लोगोंकी सहायताके लिए आ रही है। ऐसी दशामें यदि हम भी अपने देशमें जबरदस्ती भर्त्तीका कानून जारी न करें तो यह बात ठीक न होगी। साथ ही अमेरिकाका भी यह मत है कि आयर्लैण्डमें जबरदस्ती भर्त्तीका कानून जारी करनेसे पहले उसे स्वराज्य दे देना चाहिए। यद्यपि अपने देशके आन्तरिक शासन और प्रबन्धके सम्बन्धमें अमेरिका-को हम पर आज्ञा चलानेका अधिकार नहीं है, तथापि राष्ट्रपति विल-सनका मत है कि यदि इस समय आयर्लैण्डको स्वराज्य दे दिया गया तो अमेरिकन लोग सन्तुष्ट हो जायँगे और हमारे युद्ध-सम्बन्धी कार्योंमें सुगमता हो जायगी। इसी लिए हम लोग होमरूल बिलको युद्धकी समाप्तिका एक साधन समझते हैं और आयर्लैण्डको होमरूल देना चाहते हैं। यदि इस समय आयरिश लोग यह होमरूल बिल स्वीकृत न करेंगे तो उसके कारण जो खराबी होगी उसकी जवाबदेही उन्हीं लोगों पर रहेगी। बिना स्वराज्य दिये आयर्लैण्डमें जबरदस्ती भर्त्तीका कानून जारी करना अन्याय ही है। सब लोगोंको सन्तुष्ट करनेके लिए हम आयर्लै-ण्डको स्वराज्य भी देंगे और वहाँ जबरदस्ती भर्त्तीका कानून भी जारी करेंगे।

तात्पर्य यह कि उस समय इंग्लैण्डको महासमरके लिए जन-बलकी बहुत बड़ी आवश्यकता थी; इस लिए उसने आठ दस दिनके अन्दर ही कामन्स तथा लार्ड्स दोनों सभाओंमें जन-बल-बिल पास कर डाला

और सम्राट्की स्वीकृतिसे वह कानून भी बन गया। उस समय आयर्लैण्डके सम्बन्धमें दो कठिनाइयाँ उपस्थित थीं। एक तो यह कि यदि उसे स्वराज्य न दिया जायगा तो उससे जबरदस्ती जन-बलकी भी सहायता न ली जा सकेगी; और दूसरी यह कि उसे स्वराज्य न देनेसे अमेरिका भी असन्तुष्ट होगा और युद्धमें यथेष्ट सहायता न देगा। यहाँ तक कि मंत्रिमण्डलकी ओरसे कामन्स सभामें कह दिया गया था कि यदि आयर्लैण्डको स्वराज्य न दिया जायगा तो अमेरिकासे यथेष्ट सहायता नहीं मिलेगी। इसके अतिरिक्त स्वयं ब्रिटिश मंत्रिमण्डल अनेक बार कह चुका था कि यह महासमर छोटे बड़े देशों तथा जातियोंकी स्वाधीनताकी रक्षा और वृद्धि आदिके लिए हो रहा है। ऐसे समयमें यदि इंग्लैण्ड अपने घरमें ही आयर्लैण्डको स्वराज्य न देता तो बहुत सम्भव था कि अमेरिका समझ लेता कि इंग्लैण्ड हमें धोखेमें डालकर अपना काम निकाल रहा है। इसी लिए प्रधान मंत्री मि० लाइड जार्जने निश्चित किया कि जहाँ तक शीघ्र हो सके, आयर्लैण्डको स्वराज्य दे ही देना चाहिए। ऐसे अवसर पर अलस्टरवालोंके नेता सर एडवर्ड कारसन भी यह समझकर स्वराज्यके पक्षमें हो गये कि स्वराज्यसे हमारा चाहे उतना अधिक हित न हो, पर तो भी उससे साम्राज्यका बहुत कुछ हित होगा और साथ ही आयर्लैण्ड पर जर्मनीका कोई चक्र नहीं चल सकेगा। आदि आदि कई कारणोंसे इस समय इंग्लैण्डके राजनीतिज्ञ जहाँ तक शीघ्र हो सके, आयर्लैण्डको स्वराज्य दे डालना चाहते हैं। कनवेनशनकी रिपोर्टके आधार पर होमरूल-बिलका मसौदा तैयार करनेके लिए एक कमेटी बनाई गई है, जिसमें निम्नलिखित सज्जन सम्मिलित हैं:—मि० वाल्टर लाग, मि० चेम्बरलैन, मि० ड्यूक, सर जार्ज केव, लार्ड कर्जन, डा० एडिसन, मि० फिशर, मि० गार्डन, मि० ह्यूवर्ट, मि० बार्नेस और जनरल स्मट्स। यह कमेटी बहुत शीघ्रता और तत्प-

रतासे अपना काम कर रही है और आशा है कि दस–पाँच दिनके अन्दर ही पार्लमेण्टमें भी आयरिश होमरूल बिल उपस्थित होगा। आशा है यह बिल किसी न किसी प्रकार पास हो ही जायगा और उसके अनुसार शीघ्र ही आयर्लैण्डको स्वराज्य भी मिल जायगा। यह भी प्रायः निश्चय हो चुका है कि जब तक आयर्लैण्डको स्वराज्य न दे दिया जाय तब तक वहाँ जबरदस्ती भर्तीका कानून भी जारी न किया जाय।

अब अपने देश भारतवर्षको भी लीजिए। भारत-मंत्री मि० मांटेगू भारत आये और कई महीने तक यहाँ रहकर यहाँके भिन्न भिन्न वर्गोंकी बातें सुनकर और भारतसरकारसे परामर्श करके इंग्लैण्ड लौट गये। यहाँ उन्होंने अपने श्रीमुखसे एक भी शब्द नहीं निकाला, जिससे भारतवासियोंका थोड़ा बहुत सन्तोष होता। उलटे भारतवर्षसे स्वराज्यका जो डेपुटेशन विलायत जा रहा था उसे अँगरेजी समर-मंत्रीमण्डलने मार्गमेंसे ही लौटा दिया। केवल इतना ही नहीं जिस विलायती कम्यूनिकमें उक्त समर-मंत्रिमण्डलकी भारतीय स्वराज्य-डेपुटेशनके विलायत आनेके सम्बन्धमें मनाहीकी आज्ञा छपी थी, उसका स्वर इतना कर्कश और सहानुभूतिरहित था कि उसके सम्बन्धमें इस देशके समझदार निवासियोंको अपना असन्तोष और दुःख प्रकट करने की आवश्यकता पड़ी। गत अप्रैल मास (१९१८) के अन्तमें दिल्लीमें जो युद्ध-महासभा हुई थी उसमें श्रीयुक्त खापर्डेने स्वराज्य-सम्बन्धी जो प्रस्ताव उपस्थित करना चाहा था उसे भारतीय स्वराज्यके बहुत बड़े पक्षपाती बड़े लाट लार्ड चेम्सफोर्ड तकने अस्वीकृत कर दिया। तात्पर्य्य यह कि अभीतक भारतवासी अपनी भावी स्वतंत्रताके सम्बन्धमें बिलकुल अन्धकारमें ही पड़े हुए हैं। अभीतक उन्हें कोई विशेष सन्तोषजनक और उत्साहवर्द्धक बात दिखाई या सुनाई नहीं दी है। बहुतसे भारतवासी

अभी आयरिश स्वराज्यकी ओर टक लगाये हैं। वे समझते हैं कि उसके निपटारेके उपरान्त बेचारे भारत पर भी इंग्लैण्डकी कृपादृष्टि होगी। मि० बैप्टिस्टाने विलायतसे लिखा है कि जान पड़ता है कि शीघ्र ही भारतवर्षके बहुत अच्छे दिन आनेवाले हैं। मि० मांटेगू भी लंदन पहुँच गये हैं और भविष्यमें भारतमें होनेवाले राजनीतिक सुधारोंका मसौदा जल्दी जल्दी तैयार कर रहे हैं। सर सुब्रह्मण्य ऐयरने एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण प्रार्थनापत्र अमेरिकाके राष्ट्रपति विलसनकी सेवामें भेजकर उनका ध्यान इस देशकी दशाकी ओर आकृष्ट किया है। वह पत्र अमेरिकाके प्रायः सभी पत्रोंमें और यहाँके भी कई पत्रोंमें प्रकाशित हो गया है। आशा है, उस पत्रसे अमेरिकावालोंके मनमें भारतवासियोंके प्रति भी कुछ सहानुभूति उत्पन्न होगी। अभी हालमें भारत सरकारने भारतीय जनबलका भी अधिक मानमें उपयोग करना विचारा है। उसने निश्चय किया है कि इस वर्ष भारतसे पाँच लाख मनुष्य सैनिक सेवाके लिए लिये जायँगे। आयर्लैण्डवालोंकी तरह भारतवासियोंके मनमें भी यह भाव जागृत करनेकी आवश्यकता है कि हम लोग विदेशमें उन तत्त्वोंके लिए नहीं लड़ रहे हैं जो हमारे देशमें प्रयुक्त नहीं हो रहे हैं; उन्हें भी यह समझानेकी आवश्यकता है कि जिस स्वतंत्रताकी स्थापनाके लिए हम लोग अपना रक्त बहा रहे हैं वह स्वतंत्रता हमें कमसे कम अपने देशमें प्राप्त है। आदि आदि प्रायः सभी संयोग अच्छे और स्वराज्यके अनुकूल हैं। परन्तु फिर भी निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि भारतको शीघ्र आयर्लैण्डकी ही तरह बहुत बड़े बड़े अधिकार मिल जायँगे। क्योंकि स्वयं आयर्लैण्डके इतिहाससे ही यह बात सिद्ध है कि प्रायः सब बातोंके बिलकुल ठीक हो जाने पर भी ठीक समय पर कभी कभी स्वराज्य-प्राप्तिमें भारी बाधा पड़ जाती है। भारतके सौभाग्य-सूर्य्यके उदय होनेका यह ठीक अवसर आया है। यदि इस समय वह सूर्य्य उदय हो

जायगा—भारतको यथेष्ट राजकीय अधिकार मिल जायँगे—तो उसमें भारतका जो हित होगा वह तो होगा ही; साथ ही उससे इस समय भी और भविष्यमें भी, स्वयं इंग्लैण्ड तथा साम्राज्यका भी बहुत बड़ा हित होगा। भारत-सरीखे विशाल देशसे और नहीं तो कमसे कम जन-बलकी कितनी अधिक सहायता मिल सकती है, यह हर समझदार आदमी खुद समझ सकता है। गत बड़े दिनोंके अवसर पर श्रीमती बीसेन्टने इंग्लैण्डके मजदूर-दलको जो संदेसा भेजा था उसमें उन्होंने कहा था कि यदि भारतको अधिकार मिल जायँगे तो वह स्वयं अपनी ही रक्षा नहीं करेगा, बल्कि आस्ट्रेलियाँके तटोंकी भी रक्षा कर सकेगा। सर सुब्रह्मण्य ऐयरने राष्ट्रपति विलसनको जो सन्देसा भेजा है उसमें उन्होंने बतलाया है कि यदि भारतवर्षको अधिकार मिल जायँ तो थोड़े ही समयमें भारतमें दसलाख सैनिक तैयार हो सकते हैं। और ये दोनों ही बातें बहुतसे अंशोंमें ठीक भी हैं। कौन कह सकता है कि बड़े बड़े अँगरेज राजनीतिज्ञ इन बातोंको मन ही मन न समझते हों और अपनी पुरानी संकुचित नीतिके लिए न पछताते हों? और साथ ही यह भी कौन कह सकता है कि फिर सौ-पचास वर्ष बाद ब्रिटिश साम्राज्य पर इसी प्रकारका और कोई भारी संकट न आ पड़ेगा? और फिर सौ-पचास वर्षोंकी बात जाने दीजिए। भारतमें वर्त्तमान महासमरके लिए सैनिक भर्त्ती करनेका जिन लोगोंको थोड़ा बहुत अनुभव है उनमेंसे कितने आदमी ऐसे समझदार हैं जो यह कह सकते हों कि भारतवासी बिना यथेष्ट अधिकार प्राप्त किये ही कितनी अधिक संख्यामें और वह भी हार्दिक सहानुभूति तथा दृढ़तापूर्वक मित्रोंका साथ देने और अपना खून बहानेके लिए तैयार हो जायँगे? गत चार पाँच वर्षोंका अनुभव सारे संसारको बतला चुका है कि भारतवासियोंका अविश्वास करना और

उनकी साम्राज्य-निष्ठामें सन्देह करना बिलकुल निरर्थक और मूर्खता-पूर्ण है। आशा है, इस कठिन समयमें अँगरेज राजनीतिज्ञ बुद्धिमत्ता तथा उदारतासे काम लेकर भारतको सदाके लिए ब्रिटिश साम्राज्यका परम प्रिय, सच्चा और विश्वासपात्र साथी तथा सहायक बना लेंगे और अपने स्वराज्य-वादी होनेका संसारको एक और उत्कट तथा ज्वलन्त प्रमाण दिखला देंगे। इन दोनों कामोंके लिए इससे अच्छा अवसर जल्दी हाथ न आवेगा। २३-५-१९१८।

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर-सीरीज ।

हमारे यहाँसे उक्त नामकी एक ग्रन्थमाला निकलती है जिसमें बहुत ही उच्च श्रेणीके उत्तमोत्तम ग्रन्थ निकलते हैं। स्थायी ग्राहकोंको सीरीजके तमाम ग्रन्थ पौनी कीमतमें दिये जाते हैं । स्थायी ग्राहक बननेकी प्रवेश फीस आठ आने है जो पहिले जमा करानी पड़ती है। अबतक नीचे लिखे ग्रन्थ निकल चुके हैं:—

१–२ स्वाधीनता ... ... २)
३ प्रतिभा ... ... १)
४ फूलोंका गुच्छा ... ॥-)
५ आँखकी किरकिरी ... १॥)
६ चौबेका चिट्ठा ... ।॥)
७ मितव्ययता ... ।॥=)
८ स्वदेश ... ... ॥=)
९ चरित्रगठन और मनोबल ≡)
१० आत्मोद्धार ... १)
११ शान्तिकुटीर ... ।॥)
१२ सफलता ... ... ॥=)
१३ अन्नपूर्णाका मन्दिर ... ।॥)
१४ स्वावलम्बन ... ... १।)
१५ उपवासचिकित्सा ... ।॥)
१६ सूमके घर धूम ... ≡)
१७ दुर्गादास ... ... ।॥=)
१८ बंकिम-निबन्धावली ... ।॥)
१९ छत्रसाल ... ... १॥)
२० प्रायश्चित्त ... ... ।)
२१ अब्राहम लिंकन ... ॥=)
२२ मेवाड़पतन ... ... ।॥)
२३ शाहजहाँ ... ... ।॥=)
२४ मानव-जीवन ... ... १।=)
२५ उस पार (नाटक) ... १)
२६ ताराबाई (पद्य नाटक) १)
२७ देशदर्शन ... ... ३)
२८ हृदयकी परख (उपन्यास) ।॥=)
२९ नव-निधि (गल्पगुच्छ)... ।॥=)
३० नूरजहाँ ... ... १)
३१ आयर्लैण्डका इतिहास १॥=)
३२ शिक्षा (निबन्धावली) ॥=)